विज्ञानियोंका है बहुतसे लोग तत्वोंके जाननेके बडे ही अभिलाषी हैं, पर वे संस्कृत प्राकृत भाषाओंके जानकार नहीं इससे उनकी आकांक्षाएं हृदयमें ही लीन रह जाती हैं। अब तो जैन तत्वोंका उल्लेख वर्तमानकी प्रचलित भाषाओंमें ही किया जाना चाहिऐ। आधुनिक विद्वानोंमें धार्मिक पक्षपात उठ जानेके साथ २ तत्वजिज्ञासा बढ़ती जाती है, इसीसे वे भी तात्त्विक ज्ञानके बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील हैं। जैन फिलाशफी विज्ञानसे भरी हुई है उसका उल्लेख अब हिन्दी आदि मातृभाषाओंमें ही होना जरूरी है। महाराजश्रीने हिंदीभाषामें ही इस पुस्तकको लिखकर इसके द्वारा सामान्य ज्ञानियोंके लिये बड़ा लाभ दिया है।

(१) संसारमें उलझनोंके मार्ग बतलाने वाले अनेक ग्रंथ हैं जो जीवोंको सांसारिक विषयोंमें उलझाते हैं; दूसरे जीवोंकी कुछ स्वाभाविक कृतियां भी ऐसी हैं जिनसे जीव संसारसे निकल नहीं सकते। परंतु संसारसे निकलनेके मार्ग (उपाय) बतलाने वाले ऐसे ग्रंथ भी हैं जो जीवमात्रको संसारसे निकलनेका मार्ग बतलाते हैं। ऐसे ग्रंथोंके स्वाध्याय करनेसे ही हरएक तत्वजिज्ञासुओंको यथार्थ आध्यात्मिक ज्ञानके साथ तत्वज्ञान हो सकता है। तत्वज्ञानसे ही परमार्थ भूत सुखका साधन हो सकता है। जैनाचार्योंने संसारके कारण दो तत्व बतलाये हैं (१) आस्त्रव (२) बंध। मोक्षके कारण दो तत्व बतलाये हैं (१) संवर (२) निर्जरा। आस्त्रव और बंध शुभाशुभोपयोगसे होते हैं जिनसे संसार ही फलता है। संवर और निर्जरा शुद्धोपयोगसे होते हैं, जिनसे संसार त्याग और मुक्तिकी प्राप्ति होती है। महाराजश्रीका प्रयास

इसीलिये है कि यह जीव संसारमें तो अनादि कालसे रह रहा है और कर्मोंके संबंधसे नाना प्रकारके दुख भोग रहा है सो भी अपनी अज्ञानतासे ही भोग रहा है, इसको संसारसे निकलनेका मार्ग मालूम नहीं है अतएव जिस तरह यह जीव संसारसे निकलकर शांतिमय सच्चे सुखको प्राप्त कर सके ऐसा प्रयास किया जाय तो जीवमात्रका भला हो। इसीसे इस ग्रंथमें निर्जरातत्वका वर्णन किया गया है।

आशा है भव्य आत्माएं इस ग्रंथके स्वाध्याय द्वारा कर्मकी प्रक्रियाको अच्छी तरह समझ कर संसारसे निकलनेके प्रयासमें जरूर सफलता प्राप्त करेंगे। ग्रंथमें कहीं २ पर भाषाकी त्रुटियां वा सैद्धान्तिक त्रुटियां भी रह गई होंगी, क्योंकि मेरी अज्ञानता और प्रमादसे तथा प्रेसकी भी असावधानीसे त्रुटियोंका रह जाना संभव है। उनका सुधार करतेहुए ही स्वाध्याय प्रेमी स्वाध्याय करें जिससे तत्व रुचिमें विपरीतता न हो सके।

कार्तिक सुदी १५ वी. नि. २४७४ — समाजानुचर-

इन्दौर — मुन्नालाल जैन काव्यतीर्थ.

विषयानुक्रमणिका—

शुद्धयशुद्धि पत्रक—

पृष्ठ सं.	लाइन	अशुद्धि	शुद्धि
१२	११	न—दे	न होने दे।
३६	१०	३ हाथ	३॥ हाथ
१२३	११	भाव २७	भाव २८
१२३	१८	लेश्या नहीं लिखी गई	पीत लेश्या चाहिये
१२५	२	उपशमचारित्र	क्षायिकसम्यक्त्व
१२९	१	४३ आश्रव	४६ आश्रव
१२९	२	अव्रत ११	अव्रत १२
१२९	५	कषाय २३	२५ कषाय
१३१	४	भाव १०१—१९	भाव—१०४—१६
१३१	१०	मनुष्यगति	देवगति
१३१	१०	मनुष्यगत्यानुपूर्वी	देवायु
१३१	११	मनुष्यायु	नरकगति।
१३१	११	उच्चगोत्र	नरकगत्यानुपूर्वी
१३२	२	७२ प्रकृति	७६ प्रकृति
१३४	५	१२० प्रकृति सत्व	१४८ प्रकृति सत्व
१४९	१२	सूक्ष्म पर्याप्त साधारण	सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण
१४९	१४	बादर पर्याप्त साधा०	बादर अपर्याप्त साधा०
१४९	१५	बादर पर्याप्त प्रत्येक	बादर अपर्याप्त प्रत्येक
१५०	६	बादर पर्याप्त प्रत्येक	बादर पर्याप्त प्रत्येक, एकेन्द्री आतप स्थावर का

१७०	११	मनुष्यगत्यानुपूर्वी	नरकगत्यानुपूर्वी
१७४	२०	भाव १०	भाव ११
१७५	१	औदयिक २१	औदयिक भाव २०
१७५	२	भाव १०	भाव ११
१७५	४	नहीं लिखा गया	अवधि दर्शन चाहिये
२१४	१२	मनुष्यायु	नरकायु
२४२	१०	तिर्यचायु	नरकायु
२९३	७	भय नहीं लिखा	अनरक्षा भय चाहिये
२९६	११	२२ सागर	३१ सागर
३०५		ज्योतिपि	ज्योतिपिणी
३०५	३	विद्याधर	ज्योतिषी

॥ नमःसिद्धेभ्यः ॥

श्री दि. जैनाचार्य पूज्यपाद १०८ श्रीसूर्यसागरजी महाराज द्वारा विरचित-

निर्जरासार

वृषभआदि वीरांतकूं प्रणमूं वारंवार।
भव्यजीव प्रतिबोधने रचूं निर्जरासार॥

मंगलाचरणम्-

नमः श्रीजिनवीराय घातिकर्मविनाशिने।
वक्ष्येऽहं निर्जरासारं मंदबुद्धिप्रबोधकम्॥

अर्थः—ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंके नाश करने वाले श्रीवीरजिनेन्द्रको वारंवार नमस्कारकर "मेरेसे मंदबुद्धिवाले भव्यजीवोंको निर्जरातत्वका ठीक २ प्रबोध हो" इस बुद्धिसे इस ग्रंथमें साररूप निर्जरातत्वका मैं वर्णन करता हूं।

भावार्थः—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मोंका नाशकर तीनलोक में सारभूत केवलज्ञानको प्राप्त करनेवाले श्रीवीर जिनेन्द्रको शुद्ध मनवचनकायसे वारंवार नमस्कार

कर जिस प्रवचनके स्वाध्यायसे कर्मोंका आस्रव रुके तथा पूर्वसंचित कर्मोंकी निर्जरा हो, ऐसे निर्जरासार नामा ग्रंथका मैं वर्णन करता हूं जिससे कि मंदबुद्धि वाले शिष्यगण निर्जरातत्त्वको अच्छी तरह समझकर अपने आत्माका कल्याण कर सकें। इस ग्रंथका नाम निर्जरासार है. ऐसे ग्रंथके स्वाध्याय किये विना संसारी भव्यजीवोंका मन स्थिर नहीं हो सकता, विना मन स्थिर हुए इन्द्रियोंका विजय भी नहीं हो सकता, मन की चंचलताके रोकनेसे ही इन्द्रियां अपने विषयों से प्रतिकूल हो सकती हैं, मन और इन्द्रियोंके वशीकरणसे कषाय मंद होती हैं, और कषायके मंद होने से ही मोक्ष प्राप्तिके उपायरूप सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-की यथोचित पूर्णता होने लगती है। सम्यग्दर्शन ही तीन लोकमें श्रेष्ठ है, व्यवहारदृष्टिसे जीवादि सात तत्त्वोंके श्रद्धान करनेसे ही सम्यग्दर्शनकी उद्भूति होती है, जीवादि सात तत्त्वोंमें आश्रव और बंध संसारके कारण तथा संवर और निर्जरा ये दोनों मोक्ष के कारण हैं। ऐसे मोक्षके उपायभूत निर्जरातत्वका वर्णन करना श्रेष्ठ जान इस ग्रंथमें उसीका वर्णन किया जाता है।

इस ग्रंथमें नीचे लिखे विषयोंका वर्णन है:—

[१] जीवके मूल पांच भाव व उनके ५३ उत्तर भेद।

[२] संसारीजीवके साथ ५७ तरह का आश्रवका संबन्ध

[३] जीव और कर्मका अनादिकालसे संबन्ध तथा मूल ८ कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियां १४८ होती हैं, उनके बंध, उदय, सत्वादिका कथन।

इस प्रकार जीव और कर्मके संबन्धका विवेचन गुणस्थानोंकी परिपाटीसे किया जावेगा। अर्थात् कौन गुणस्थानमें कौन २ सी प्रकृतियोंका किस २ तरह बंध, उदय, सत्व रहता है, यह स्पष्ट किया जावेगा। प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद उमास्वामी आचार्यने तत्वार्थ-सूत्र अध्याय २ सूत्र नं. १ में—

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य
स्वतत्वमौदयिकपारिणामिकौ च॥

अर्थात्:--जीवके निजभाव औपशमिक-क्षायिक-मिश्र [क्षायोपशमिक] औदयिक और पारिणामिक ऐसे ५ भाव होते हैं। उनके उत्तर भेदः—

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्।

अर्थात्:--औपशमिकभावके दो भेद-उपशम सम्यक्त्व, उपशमचारित्र। क्षायिकभावके ९ भेदः-क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिक-लाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र। मिश्र अर्थात्

क्षायोपशमिकभावके १८ भेद होते हैं:--४ ज्ञान-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान; ३ अज्ञान-कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान। ३ दर्शन-चक्षु अचक्षु और अवधिदर्शन। ५ लब्धियां:—दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य। क्षयोपशमसम्यक्त्व क्षयोपशम-चारित्र और संयमासंयम। २१ औदयिक भाव:--४ गतियां-नारक-तिर्यंच-मनुष्य और देव, ४ कषाय-क्रोध-मान-माया-लोभ, ३ लिंग- स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और नपुंसकलिंग। मिथ्यादर्शन १, अज्ञान १, असंयत १, असिद्धत्व १, लेश्या ६:--कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, और शुक्ल। पारिणामिक ३:--जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। ऐसे सब मिलकर ५३ भाव बतलाये हैं। अब संक्षेपमें मूलभावोंका अर्थ लिखा जाता है:--

औपशमिकभाव:--किसी कर्मके उपशमसे होने वाले भाव।

क्षायिकभाव:--किसी कर्मके क्षय होनेपर होने वाले भाव।

क्षायोपशमिकभाव:--किसी कर्मके क्षयोपशमसे होने वाले भाव।

औदयिकभाव:- किसी कर्मके उदयहोने पर होने वाले भाव।

पारिणामिकभाव:--किसी भी कर्मके उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदयके बिना स्वाभाविक होनेवाले भाव।

उपशमः--कर्ममें फल देनेकी शक्तिके उदयका नहीं होना।

क्षयः--प्रतिपक्षी कर्मका अत्यन्त अभाव हो जाना।

क्षयोपशमः--प्रतिपक्षी कर्मकी सर्वघाती स्पर्धकोंका उदय नहीं होना सो उदयभावी क्षय, और उपरितन निषेकोंका सत्तामें उपशमरूप रहना तथा देशघाति स्पर्धकोंका उदय होना।

उदयः--द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्ममें फलदेने की शक्तिका प्रकट होना।

परिणामः--जहां कर्मकी किसी प्रकारकी अपेक्षा न हो किंतु आत्माका परिणाम ही निमित्त हो।

क्षायिकज्ञानः--ज्ञानावरण कर्मके अत्यन्त क्षय होनेसे जो ज्ञान हो उसे क्षायिकज्ञान कहते हैं।

क्षायिकदर्शनः--दर्शनावरणी कर्मके क्षयसे जो दर्शन हो उसे चायिकदर्शन कहते हैं।

क्षायिकदानः--दानांतराय कर्मके क्षयसे अनंत प्राणियों का उपकार करने वाला दिव्यध्वनिको आदि ले क्षायिक अभयदानका होना क्षायिकदान है।

क्षायिकलाभ-लाभांतराय कर्मके अभावसे होने वाला भाव चायिकलाभ कहलाता है। इस भावके होनेपर कवलाहारक्रियासे रहित भगवान केवलीके

शरीरमें बलाधानके कारण, अत्यंत शुभ, सूक्ष्म, नोकर्म पुद्गलपरमाणु समय २ संबंधको प्राप्त होते हैं।

क्षायिकभोगः-भोगांतरायकर्मके अत्यंत अभावसे होने वाला भाव क्षायिकभाव कहलाता है। इस भावके होनेसे पांच वर्णके अत्यंत सुगंधित पुष्पोंकी वरसा, तथा चरणारविंद के नीचे २२५ कमलोंकी रचना, सुगंधित धूप तथा सुगंधित मंदवायुका चलना आदि क्रियायें होती हैं।

क्षायिक-उपभोगः—उपभोगांतरायकर्मके अभावसे होने वाला भाव क्षायिक उपभोग कहलाता है। इस भावके होनेपर सिंहासन, छत्र, चँवर; अशोकवृक्ष, भामंडल, देवदुंदु भी इत्यादि विभूति प्रकट होती हैं।

क्षायिकवीर्यः—वीर्यांतरायकर्मके क्षयसे होनेवाला भाव क्षायिकवीर्य कहलाता है। इस भावके होनेपर आत्माके अनंतवीर्य (शक्ति) प्रकट होता है।

क्षायिकसम्यक्त्वः-मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियोंके

अत्यंत क्षयसे होने वाला सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व कहलाता है।

क्षायिकचारित्रः—चारित्रमोहनीय कर्मकी शेष २१ प्रकृतियों के अत्यंत अभावसे होनेवाला चारित्र क्षायिकचारित्र कहलाता है।

५७ प्रकारके आस्रवका विवरण—

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाः बंधहेतवः। तत्वार्थसूत्र अ० ८ सूत्र १।

अर्थः—मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कषाय २५ और योग १५ इस तरह प्रमाद सहित आस्रव के ५७ भेद होते हैं। मिथ्यात्व के भेद पांचः—

एकांतमिथ्यात्वः—यह ऐसा ही है दूसरी तरह नहीं. ऐसे अभिप्रायको एकांतमिथ्यात्व कहते हैं। जैसे-पदार्थ सर्वथा क्षणिक ही है ऐसा मानना।

विपरीतमिथ्यात्वः—परिग्रह सहितको निर्ग्रंथ कहना तथा केवलीको कवलाहारी कहना, विपरीत मिथ्यात्व कहलाता है।

वैनयिकमिथ्यात्वः—सब देवोंको तथा सब धर्मोंको समान समझना। सबकी एकसी विनय-करना।

सांशयिकमिथ्यात्वः—धर्म अहिंसा रूप है या नहीं ? तीर्थंकर सर्वज्ञ थे या नहीं ? ऐसी रुचि करना।

आज्ञानिकमिथ्यात्वः—जहां हित और अहितका कुछ भी भान न हो। जैसे पशुवधको धर्म समझना।

१२ अव्रतोंका खुलासा—

हिंसादि पापोंमें तथा पांचों इन्द्रियों और मनके विषयोंमें प्रवृत्ति करनेको अविरति कहते हैं। अथवा पांच स्थावर एक त्रस इनकी दया नहीं करना, और पांच इन्द्रियों तथा मनको वशमें नहीं करना, ऐसे १२ प्रकार की अविरति होती है। इनका पृथक् २ खुलासा निम्न प्रकार है:-

स्थावर जीव पांच प्रकारके होते हैं (१) पृथ्वी ही जिनका शरीर है ऐसे पृथ्वीकायिक जीव सूक्ष्म-बादर (२) जल ही जिनका शरीर होता है ऐसे जलकायिक जीव, सूक्ष्म-बादर (३) अग्नि ही जिनका शरीर होता है ऐसे अग्नि-कायिक जीव सूक्ष्म-बादर, इनको तेजकायिक भी कहते हैं (४) जिनका शरीर वायु ही है ऐसे वायुकायिक जीव सूक्ष्म-बादर (५) वनस्पति ही जिनका शरीर होता है ऐसे वनस्पतिकायिक जीव साधारण और प्रत्येक ऐसे

दो प्रकारके हैं। व सप्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठित ऐसे दो प्रकार प्रत्येक जीव, इस प्रकारके तो स्थावर, तथा छटवां भेद त्रस, ऐसे छह कायके ६ प्रकार जीव. इनमें भी त्रस के ५ भेद द्वीन्द्रिय - त्रीन्द्रिय - चतुरिन्द्रिय - असैनी (मन रहित) पंचेन्द्रिय व मनसहित सैनीपंचेन्द्रिय, इस तरह छह कायके १० भेद. तथा पांच इन्द्रियां (१) स्पर्शने-न्द्रिय-जिसके द्वारा हलका, भारी, चिकना, रूखा, ठंडा, गर्म आदिका ज्ञान होता है (२) रसना अथवा जिह्वा इन्द्रिय-जिसके द्वारा खट्टा, मीठा आदि ५ प्रकारके रसका ज्ञान होता है (३) घ्राण इन्द्रिय अर्थात नासिका-जिसके द्वारा सुगंध दुर्गंधका ज्ञान होता है (४) नेत्र इन्द्रिय-जिसके द्वारा हरा पीला लाल आदि वर्णोंका ज्ञान होता है (५) कर्णेन्द्रिय अर्थात कान-जिसके द्वारा आवाज का ज्ञान होता है। छट्ठा मन जिसके द्वारा सोचने सम-झनेका कार्य होता है, इस प्रकार सब मिलकर १२ प्रकारकी अविरति होती है। अर्थात् ऊपर कहे गये ६ कायके जीवों की दया नहीं करना और ५ इन्द्रियां तथा मनको अपने २ विषयोंसे पराङ्मुख नहीं करना सो १२ अविरति हैं।

अब २५ कषायों का वर्णन करते हैं:-

मोहनीय कर्म के २ भेद हैं (१) दर्शनमोहनीय

(२) चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयके ३ भेद जिनका वर्णन ऊपर आ चुका है:- मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्व-सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व। चारित्र मोहनीय के दो भेद:-कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। कषायवेदनीयके १६ भेद:- अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ। अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, नोकषायवेदनीयके नव भेद हैं- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद। इस तरह चारित्रमोहनीयके २५ भेद कषायशब्दसे कहे जाते हैं। जो कषै अर्थात् आत्माको दुख दे उसको कषाय कहते हैं।

अब १५ योगोंको कहते हैं—

मनयोग ४ प्रकारका होता है (१) सत्यमनोयोग (२) असत्य मनोयोग (३) उभयमनोयोग (४) अनुभयमनोयोग। वचनयोग के ४ भेद होते हैं:- (१) सत्यवचनयोग (२) असत्यवचनयोग (३) उभयवचनयोग (४) अनुभयवचनयोग। काययोग ७ प्रकारका होता है:- (१) औदारिककाययोग (२) औदारिकमिश्रकाययोग (३) वैक्रियिककाययोग (४) वैक्रियिकमिश्रकाययोग (५) आहारककाययोग (६) आहारकमिश्रकाययोग और (७) कार्माण

काययोग । इस प्रकार ५ मिथ्यात्व १२ अविरति २५ कषाय और १५ योग सब मिलकर ५७ भेद आस्रवके होते हैं इनके निमित्तसे आत्मामें कर्मोंका आना होता है।

अब कर्मोंके भेद प्रभेदोंको बतलाते हैं:-

कर्मत्वकी अपेक्षा कर्म एक प्रकार है । सत्ता और उदय की अपेक्षा दो प्रकार हैं, अथवा द्रव्य और भावकी अपेक्षा दो प्रकार हैं, अथवा मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति की अपेक्षा दो प्रकार है । द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मकी अपेक्षा तीन भेद हैं ।

तदुक्त गोमट्टसारकर्मकांडे-

कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥५॥

अर्थः- कर्म सामान्य भावरूप कर्मत्व करके एक प्रकार है, वह ही कर्म द्रव्य और भाव भेदसे दो प्रकार होता है (ज्ञानावरणादि रूप तो द्रव्यकर्म होता है और उस पुद्गलपिंडमें फल देनेकी शक्तिरूप भावकर्म होता है अथवा कार्यमें कारणके उपचारसे उस सक्तिसे उत्पन्न हुवा अज्ञानादि व क्रोधादि भी भावकर्म कहे जाते हैं)

तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा ।
ताणं पुण घादित्ति अघादित्ति य होंति सण्णाओ ॥७॥ कर्मकांडे

अर्थः- सामान्यतया कर्म आठ प्रकार हैं; उन्हींके उत्तर भेद एकसौ अड़तालीस होते हैं। तथा असंख्यात लोक प्रमाण भी होते हैं। उनकी अलग २ घातिया व अघातिया ऐसी संज्ञा है। आठ प्रकारके कर्मोंके नाम निम्न लिखित हैं:- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय।

ज्ञानावरण-जो आत्माके ज्ञान गुणका आच्छादन करे।

दर्शनावरण- जो आत्माके दर्शनगुणको व्यक्त न होने दे।

वेदनीय- जो आत्माके अव्याबाध गुणको प्रकट न दे। अथवा जो सुख-दुखकी सामग्री मिलावे।

मोहनीयकर्मः-जो आत्माको भुलावा देवे अर्थात् आत्माको पर द्रव्यमें ममत्व बुद्धि उत्पन्न करावे, आत्माके सम्यक्त्व व चारित्र गुणका आच्छादन करनेवाला कर्म।

आयुः-जो आत्माको चारों गतियोंमें रोक रक्खे, इस कर्मके संबंधसे आत्माको नियत समय तक नाम कर्मके उदयसे प्राप्त शरीरमें रहना पड़ता है यह कर्म आत्माके अवगाहन गुणका घात करता है।

नामः-जो आत्माके आश्रय रूप नाना प्रकारके शरीर की रचना करे। यह कर्म आत्माके सूक्ष्मत्व गुण का घातक होता है।

गोत्रः-जो आत्माको परंपरासे चले आये आचरणरूप ऊँच नीच कुलमें जन्म दे। अर्थात् जिस कर्मके उदयसे यह जीव ऊँच नीच शब्दसे पुकारा जाता है। यह कर्म आत्माके अगुरुलघुत्व गुणका घात करता है।

अंतरायः-जो दानादिक उत्तम कार्योंमें विघ्न डाले। यह कर्म आत्माके अनंतवीर्य गुणका घात करने वाला है।

इन कर्मोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार कर्म घातिया कहे जाते हैं क्योंकि ये चारों कर्म आत्माके ज्ञानादिक अनुजीवी गुणोंका सर्वथा आच्छादन करते हैं। बाकीके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार कर्म अघातिया कहे जाते हैं क्योंकि ये चारों कर्म आत्माके अनुजीवीगुणोंका एक देश घात करते हैं।

आठों कर्मोंके उत्तर भेद नीचे लिखे अनुसार हैं:-

ज्ञानावरणके ५ भेद होते हैं (१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरणा, (४) मनःपर्यय-ज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण।

दर्शनावरण के ९ भेद होते हैं:-(१) चक्षुदर्शनावरण (२) अचक्षुदर्शनावरण, (३) अवधिदर्शनावरण, (४) केवलदर्शनावरण, (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचलाप्रचला और (९) स्त्यान्य-गृद्धि।

वेदनीयके दो भेदः-(१) असातावेदनीय, (२) सातावेद-नीय।

मोहनीयकर्म के २८ भेद होते हैं:-दर्शनमोहनीयके तीन भेद-(१) मिथ्यात्व, (२) सम्यङ्मिथ्यात्व, (३) सम्य-क्प्रकृतिमिथ्यात्व। चारित्रमोहनीयके दो भेद होते हैं (१) कषायवेदनीय (२) अकषायवेदनीय। कषाय-वेदनीयके १६ भेद होते हैं। (१) अनंतानुबंधी क्रोध, (२) मान, (३) माया और (४) लोभ ऐसे चार भेद इसी प्रकार अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान और संज्वलन के भी ऊपर लिखे अनुसार चार २ भेद होते हैं, सब मिलाकर १६ भेद कषायवेदनीयके होते हैं। अकषायवेदनीयके ९ भेद होते हैं-(१) हास्य (२) रति, (३) अरति, (४) शोक, (५) भय, (६) जुगुप्सा (७) स्त्रीवेद (८) पुंवेद और (९) नपुं-सकवेद।

दर्शनमोहः--जो आत्माके दर्शनगुणका घात करे। दर्शन शब्दसे सम्यग्दर्शन समझना चाहिये।

चारित्रमोहनीयः--जो आत्माके चारित्र गुणको न होने दे। चारित्र ४ तरहका होता है। स्वरूपाचरण-चारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र।

स्वरूपाचरणचारित्रः--शुद्ध आत्माके अनुभव करनेसे होने वाले, अविनाभावी चारित्र विशेषको कहते हैं।

देशचारित्रः--श्रावकके व्रतोंको देशचारित्र कहते हैं।

सकलचारित्रः-मुनियों के व्रतोंको सकलचारित्र कहते हैं। श्रावकके व्रतोंमें हिंसादि पापोंका मोटे रूप से त्याग होता है। किंतु मुनियोंके व्रतोंमें हिंसादि पापोंका त्याग मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदनासे सर्वथा होता है।

यथाख्यातचरित्र- कषायोंके बिलकुल नाश होनेसे उत्पन्न आत्माकी निर्मलताको यथाख्यातचारित्र कहते हैं। स्वरूपाचरणचारित्र, अनंतानुबंधी क्रोध मानमाया और लोभके अभावसे चतुर्थगुणस्थानमें होता है। देशचरित्र अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभके अभावसे पंचम गुणास्थमें होता है। सकलचरित्र प्रत्याख्यानवरण क्रोध

मान माया लोभके अभावसे छट्ठे गुण-
स्थानसे १० वें गुणस्थान तक होता है।
यथाख्यातचारित्र-संज्वलन कषायरूप
क्रोध मान माया लोभके अभावसे ११
वें गुणास्थानसे १४ वें गुणास्थान तक
होता है। पूर्ण यथाख्यातचरित्र मोह और
योगके सर्वथा अभाव होने पर १४ वें गुण-
स्थानके अंतमें ही होता है। इस चारित्रकी
पूर्णताके अनंतर ही उर्ध्वगमन स्वभाव
वाला आत्मा सिद्धालयमें विराजमान
हो जाता है।

इस प्रकार दर्शनमोहकी ३ और चारित्रमोहकी २५ मिलाकर २८ प्रकृतियां मोहनीयकी होती हैं।

आयुकर्मके चार भेद होते हैं- नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायु।

नामकर्म की ९३ प्रकृतियां होती हैं इनका खुलासा आगे
करेंगे। इतना यहां जानना जरूरी है कि मूल
प्रकृतियां ४२ हैं जिनमें १४ प्रकृतियां तो पिंड-
रूप होती हैं, और २८ प्रकृतियां अपिंड रूप होती
है। इन्हीं के भेद ९३ होते हैं।

गोत्रकर्म दो प्रकारका होता है (१) उच्चगोत्र (२) नीचगोत्र

अंतरायकर्म के ५ भेद हैं- दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यान्तराय। इस प्रकार सब मिलकर १४८ भेद होते हैं।

१४८ प्रकृतियों का बटवारा-

१४८ प्रकृतियोंमें ४७ प्रकृतियां तो घातिया कर्मकी होती हैं और १०१ अघातियाकर्मकी।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि आठों कर्मोंमें ४ घातियाकी प्रकृतियां और शेष अघातियाकी प्रकृतियां हैं। इनका व्योरा पृथक् पृथक् बतलाया जाता है। घातिया कर्मके दो भेद हैं १ सर्वघाति २ देशघाति। सर्वघातिका मतलब आत्माके ज्ञानादि अनुजीवी गुणोंकी सर्वथा नाश करने वाली प्रकृतियां। देशघाति अर्थात् जो आत्माके ज्ञानादि गुणों का नाश न करें, जैसे जली जेवरी कुछ भी बंधनादि क्रिया करनेमें असमर्थ होती हैं, उसी तरह अघाति कर्मकी प्रकृतियां आत्माके गुणोंके नाश करनेमें समर्थ नहीं होतीं। ४७ प्रकृतियोंमें २१ प्रकृतियां तो सर्वघातिया व २६ प्रकृतियां देशघातिया हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

सर्वघाति प्र.—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और पांचनिद्रा इस प्रकार दर्शनावरणके ६ भेद, अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानके क्रोध मान माया और लोभ, मिथ्यात्व,

सम्यङ्मिथ्यात्व सब मिलकर २१ प्रकृतियां सर्वघातीकी हैं।

देशघातीः—ज्ञानावरणके ४ भेद (केवलावरण को छोड़कर) दर्शनावरणके ३ भेद (ऊपर लिखी हुई ६ प्रकृतियोंको छोड़कर) सम्यक्प्रकृति, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद, अंतराय की ५ प्रकृतियां इस प्रकार २६ भेद देशघातीके हैं। क्योंकि इनके उदय होनेपर जीवके ज्ञानादि गुण व्यक्त रहते हैं।

अब इन आठों कर्मोंके स्वभावका दृष्टांत बतलाते हैं:—

पडपडिहारसिमज्जाहालिचित्तकुलालभंडयारीणं
जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥

देवताके मुख ऊपर वस्त्र, राजद्वारपर खड़ा हुवा दीवान, शहत लपेटी तलवारकी धार, शराब, काठ का यंत्र, चतेरा, कुंभकार, भंडारी, (खजांनची) इन आठोंके जैसे कार्य करनेके भाव होते हैं, उसी तरह कर्मोंके स्वभावको क्रमसे समझना चाहिये।

अब शब्दार्थ द्वारा संक्षेपमें आठों कर्मोंका अर्थ दृष्टांत द्वारा समझाते हैं:—

ज्ञानावरणः-जो ज्ञानको ढके सो ज्ञानावरण है। इसका दृष्टांत-देवताके मुखपर वस्त्र होना कहा है। वह इस प्रकार कि प्रतिमाके मुखपर ढंका हुवा कपड़ा जैसे देवताके ज्ञानको नहीं होने देता उसी प्रकार ज्ञानावरण आत्माको ज्ञान नहीं होने देता। इस कर्मके ऊपर बतलाये अनुसार ५ भेद होते हैं—

मतिज्ञान व मतिज्ञानावरण कर्मः-पांचों इन्द्रियों और छट्टे मनके द्वारा होने वाले पदार्थके ज्ञानको मतिज्ञान कहते हैं। ऐसे ज्ञानको आवरण करने वाले कर्म को मतिज्ञानावरणी कर्म कहते हैं।

श्रुतज्ञान व श्रुतज्ञानावरणी कर्मः-मतिज्ञानके द्वारा निश्चय किये हुए पदार्थको अवलंबन कर उस ही पदार्थके सबंधको लिये कोई अन्य पदार्थको जाने सो श्रुतज्ञान है, जैसे इन्द्रिय और मनसे निश्चित घटमें यह छोटा है, यह बडा है, अमुक देशका है, अमुक धातुका है, इस प्रकार, नहीं देखा, नहीं सुना, ऐसे अपूर्व अनेक प्रकारके घटोंको देखत ही जान लेना कि ये घट है ऐसे एक घड़े को देख उसके समान अथवा विलक्षण अनेक घटोंको जानना, सो श्रुतज्ञान है। ऐसे ज्ञानका आवरण करनेवाला कर्म श्रुतज्ञानावरण कहलाता है। श्रुतज्ञानके अंगबाह्य, वा अंगप्रविष्ट और इनके भी अंग पूर्व आदि अनेक भेद होते हैं। विस्तार से जाननेके

इच्छुक सर्वार्थसिद्धि आदि सिद्धान्त ग्रंथोंका स्वाध्याय करें।

अवधिज्ञान व उसका अवरणीकर्मः- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये हुए जो रूपी पदार्थको बिना इन्द्रियादिककी सहायताके आत्मामात्रसे स्पष्ट जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं। सामान्यतया अवधिज्ञानके दो भेद होते हैं। (१) भवप्रत्ययाव-धिज्ञान (२) क्षयोपशमनिमित्तावधिज्ञान। व्रत तपश्चरणादिके बिना केवल भव ही जिनके क्षयोपशम होनेमें निमित्त कारण हो, ऐसे देव नारकियोंके ज्ञान को भवप्रत्ययावधिज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान देशा-वधि ही होता है। देव नारकियों को ये ज्ञान समान दर्जेका नहीं होता। किंतु जिसको जैसा क्षयोपशम होता है उसको उतने प्रमाणमें ज्ञान होता है। ये ज्ञान सम्यग्दृष्टियोंको ही होता है, मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान को विभंगज्ञान कहते हैं। अवधिज्ञानावरणी कर्मके क्षयोपशमसे जो ज्ञान होता है उसको क्षयोपशम-निमित्तावधिज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान छह प्रकार का होता है। (१) अनुगामी (२) अननुगामी (३) वर्धमान (४) हीयमान (५) अवस्थित (६) अनवस्थित। इनका विशेष अर्थ राजवार्तिक आदि भाष्योंसे जानना चाहिये। ये भेद देशावधिज्ञानमें ही गर्भित हैं। दूसरी तरहसे अवधिज्ञानके ३ भेद

बतलाये गये हैं। (१) देशावधि (२) परमावधि और (३) सर्वावधि। देशावधि होकर छूट सकता है लेकिन परमावधि वा सर्वावधि केवलज्ञान उपजने तक अनुगामी ही रहते हैं। इन दोनों ज्ञान वाले, जीव अन्य भव धारण नहीं करते, नियमसे केवल ज्ञान उपजाकर उसी भवमे मोक्ष जाते हैं। क्योंकि ये दोनों ज्ञान चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी संयमी मुनिहीको होते हैं। अन्य तीर्थंकरादि गृहस्थ मनुष्य, तिर्यंच, देव, नारकियोंको नहीं होते। ऐसे ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मको अवधिज्ञानावरण कहते हैं।

मनःपर्ययज्ञान व तदावरणकर्म-मनुष्यक्षेत्र प्रमाण ४५ लाख योजन घनप्रतरक्षेत्रमें रहनेवाले जीवोंके मनमें सरल अथवा वक्ररूप चिंतवन किये हुए रूपी पदार्थको सर्वावधि ज्ञानसे जाने हुए पदार्थके अनंतवा भाग सूक्ष्मता लिये जाने, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। यों तो इसके भेद प्रभेद बहुत से हैं पर मोटे रूपसे इसके भी दो भेद कहे गये हैं [१] ऋजुमतिमनःपर्यय [२] विपुलमतिमनःपर्यय।

ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान—मन वचन कायकी सरलतासे मनमें तिष्ठे हुए रूपी पदार्थको वा अन्यके मनमें तिष्ठे रूपी पदार्थको जो जाने उसे ऋजुमतिमनःपर्यय कहते हैं।

विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान—सरल तथा वक्ररूप दूसरेके मनमें तिष्ठे हुए रूपी पदार्थको जाने उसे विपुलमतिमनःपर्यय कहते हैं। इन दोनों ज्ञानमें विशुद्धि और अप्रतिपातसे विशेषता है। मनःपर्ययज्ञानावरणीकर्मके क्षयोपशमसे जो आत्माकी निर्मलता होती है उसको विशुद्धि कहते हैं। संयम परिणामके हीनपनेको प्रतिपात कहते हैं। प्रतिपात नहीं सो अप्रतिपात कहलाता है। ऋजुमतिसे विपुलमतिमें परिणामोंकी निर्मलता ज्यादा होती है। तथा ऋजुमतीवाला हीयमान चारित्रवाला होनेसे संयमकी शिखरसे गिर जाता है। लेकिन विपुलमतिवाला वर्धमान चारित्र वाला होनेसे. कभी भी संयमसे गिरता नहीं, प्रत्युत केवलज्ञान उत्पन्न होने तक बराबर बना रहता है। सर्वावधि ज्ञानके द्वारा जोकि कार्माण द्रव्यके अनंतमें भागको जानता है, उसके अनंतवें भागको ऋजुमति ज्ञान वाला जानता है। उसके अनतवें भाग को विपुलमति वाला जानता है। ऋजमति वाला अन्य व्यक्ति द्वारा प्रगट रूप चिंतित रूपी पदार्थको जानता है, किंतु विपुलमतिज्ञान वाला चिंतित, चिंत्यमान और आगे चिन्तनमें आवेगा ऐसे रूपी पदार्थ को प्रकट अथवा अप्रकट रूप पदार्थको प्रत्यक्ष जानता है। ऋजुमतिवला ज्यादासे ज्यादा अपने

व दूसरेके ७-८ भव तक की बात जान सकता है। पर विपुलमती वाला असंख्यात भव तककी बतला सकता व जान सकता है। ऐसे ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मको मनःपर्यय ज्ञानावरण कहते हैं।

केवलज्ञान व तदावरणकर्मः-तीन लोक व तीनकालवर्ती समस्त गुण पर्याय विशिष्ट द्रव्योंको, चाहे वे द्रव्य रूपी हों या अरूपी, उनको हस्तकी रेखाकी तरह किसीकी सहायताके बिना आत्ममात्रसे एक साथ प्रत्यक्ष जाने, उसे केवलज्ञान कहते हैं। ये ज्ञान चार घातिया कर्मोंके अभाव होनेपर होता है। तथा तेरहवें गुणस्थानमें प्रादुर्भूत होता है। व्यक्त हो जाने बाद इसका काल अनंत होता है। ऐसे ज्ञान को आवरण करनेवाले कर्मको केवलज्ञानावरणी कर्म कहते हैं।

दर्शनावरणी कर्मः-जो आत्माके दर्शनगुणका आवरण करे, जैसे-कोई आदमी राज-भवन पर राजाके दर्शन करने गया राजभवनके दरवाजे पर ड्योढ़ीवान का पहिरा था उसने दर्शकको राजभवनमें जानेसे मने कर दिया जिससे राजाके दर्शन न हो सके। उसी तरह दर्शनावरणी कर्मके उदयसे पदार्थका दर्शन नहीं हो सकता। इस कर्मके ९ भेद हैं- (१) चक्षुदर्शन

(२) अचक्षुदर्शन (३) अवधिदर्शन (४) केवलदर्शन (५) निद्रा (६) निद्रानिद्रा (७) प्रचला (८) प्रचला-प्रचला (९) स्त्यान्यगृद्धि।

(१) चक्षुज्ञानके पहिले जो सामान्यज्ञान होता है उसको चक्षुदर्शन कहते हैं।

(२) चक्षुके सिवाय बाकी इन्द्रियोंसे होने वाले ज्ञानके पहिले जो अनाकार (सामान्य) ज्ञान होता है उसको अचक्षुदर्शन कहते हैं।

(३) अवधिज्ञानके पहिले होने वाले सामान्यज्ञानको अवधिदर्शन कहते हैं।

(४) केवलज्ञानके साथ २ होनेवाले सामान्यज्ञानको केवलदर्शन कहते हैं। जिस दर्शनका जो आवरण कर्म हो, उसको उसी नामसे समझना चाहिये।

(५) जिसके उदयसे मदखेद आदिके दूर करनेके लिये सोवना हो उसको निद्रादर्शनावरण कहते हैं।

(६) जिसके उदयसे निद्रापर निद्रा आवे, आंखके पलक भी न उघाड़ सके, उसको निद्रानिद्राकर्म कहते हैं।

(७) जिसके उदयसे कुत्तेकी तरह अल्प निद्रा हो, निद्रामें कुछ काम कर लेवे और उसकी कुछ याद भी रह जावे उसे प्रचलाकर्म कहते हैं।

(८) जिस कर्मके उदयसे क्रिया आत्माको बार २ चलावे, अर्थात्-शोक, खेद या नशा आदिसे हुई जो निद्राकी अवस्था उसमें बैठते हुए भी शरीरके अंग बहुत चलायमान होवें, पर कुछ भी सावधानी न रहे, उसको प्रचलाप्रचला कर्म कहते हैं।

(९) जिसके उदय होने से यह जीव नींदमें ही उठकर बड़ा पराक्रमका कार्य कर लेवे, पीछे कुछ भी भान न रहे, कि मैंने क्या किया था, उसे स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण कहते हैं।

(१) जिसके उदयसे देव मनुष्यादि गतियोंमें सुखकी सामग्री मिले उसे सातावेदनीय कहते हैं।

(२) जिसके उदयसे शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट उत्पन्न हो, उसे असातावेदनीय कहते हैं।

दर्शनमोहनीयकर्म बंधकी अपेक्षा एक प्रकार है तो भी उदय अथवा सत्वकी अपेक्षा ३ भेद रूप है।

(१) जिस कर्मके उदयसे सर्वज्ञ कथित तत्वोंमें रुचि पैदा न हो. अथवा उल्टा विश्वास हो जाय, या हिताहित का विवेक ही न रहे, उसको मिथ्यात्व कर्म कहते हैं।

(२) जिस कर्मके उदयसे जिन भगवानके कहे तत्वोंमें यथार्थ श्रद्धानपना और अयथार्थ श्रद्धानपना दोनों

ही दही और गुड़के मिले हुए स्वादकी तरह हों उसे सम्यङ्मिथ्यात्व दर्शनमोह कहते हैं।

(३) जिस कर्मके उदयसे सम्यक्त्व गुणका मूल घात तो न हो, किंतु परिणामोंमें चल मल अगाढ़पना हो जैसे—यह मंदिर मेरा है, यह दूसरे का है, शांतिनाथ तीर्थंकर ही शांति करने वाले हैं, पार्श्वनाथ ही सबकी रक्षा करने वाले हैं, इत्यादि मलिनपनाका परिणामोंमें होना ही सम्यक्त्वप्रकृति मिथ्यात्व कर्म है।

चारित्रमोहनीयके भेद ऊपर लिखे जा चुके हैं। उनके विषयमें विशेष जानने के लिये अर्थप्रकाश आदि ग्रंथ देखना चाहिये। सिर्फ नोकषायके ९ भेद संक्षेपमें समझाये जाते हैं। नो- थोड़ा जो कषाय सो नोकषाय कहलाता है (प्रबलता रहित कषाय)

(१) हास्य-जिस कर्मके उदयसे हास्य व्यक्त हो उसको हस्यकर्म कहते हैं।

(२) जिस कर्मके उदयसे स्त्री, पुत्र, धनादिसे प्रेम हो उसको रतिकर्म कहते हैं।

(३) जिस कर्मके उदयसे स्त्री, पुत्रादिसे प्रेम न हो उसको अरति कहते हैं।

(४) जिस कर्मके उदयसे प्रिय वस्तुके वियोग होनेपर रंज हो, उसको शोक कहते हैं।

(५) जिस कर्मके उदयसे निमित्त मिलने पर हृदय में घबराहट हो उसको भय कहते हैं।

(६) जिस कर्मके उदयसे अपने दोष ढांककर दूसरेके दोष प्रकटकर उससे (दोषोंसे) ग्लानि करना जुगुप्साकर्म है।

(७) जिस कर्मके उदयसे स्त्री संबंधी भाव हो (कोमल स्वभावका न होना, मायाचारीकी अधिकता, नेत्र-विभ्रम आदि द्वारा पुरुषके साथ रमनेके भाव हों) उसको स्त्रीवेद कहते हैं।

(८) जिस कर्मके उदयसे स्त्रीसे रमनेके भाव हों उसको पुंवेद कहते हैं।

(९) जिस कर्मके उदयसे स्त्री और पुरुष दोनोंसे रमनेकी इच्छा हो, उसको नपुंसकवेद कहते हैं।

कषाय ही जीवको अपने स्वरूपका अनुभव नहीं करने देता:--जैसे अनंतानुबंधी कषायके उदय होने पर जीव सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरणचारित्रको प्राप्त नहीं कर सकता है। इसके क्रोधादिके उदय होते ही जीव सम्यक्त्वसे गिरकर मिथ्यात्वमें जा पहुंचता है। मिथ्यात्व कर्मके

उदय होनेपर ये जीव अतत्वका श्रद्धानी होकर मिथ्या-
दृष्टि हो जाता है। मिथ्यादृष्टि जीव दो तरहके होते हैं
(१) अनादि मिथ्यादृष्टि-जिनका मिथ्यात्व कभी छूटा
नहीं है, जिसकी वजहसे ये जीव सच्चे देव शास्त्र गुरुमें
रुचि न रखता हुआ अनंत दुःखोंका पात्र बन रहा है।
(२) सादि मिथ्यादृष्टि जीव-जिसने मिथ्यात्वको छोड़कर
सम्यक्त्वको ग्रहणकर बादमें फिर मिथ्यात्व ग्रहण किया
हो, उसको सादि मिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं। फिर भी ये
मिथ्यादृष्टि जीव दो प्रकारके होते हैं. (१) अनाद्यनंत
(२) अनादि सांत। ऐसे भी मिथ्यादृष्टि जीव हैं जिनका
कभी भी मिथ्यात्व छूटा नहीं और न आगे कभी छूटेगा
वह अनाद्यनंत मिथ्यादृष्टि है। जिसका अनादि कालसे
लेकर आज तक मिथ्यात्व छूटा नहीं है पर आगे काल-
लब्ध्यादिके निमित्त मिलनेपर, देव शास्त्र गुरुकी सहायता
मे छूट जायगा, उसको अनादि सांत मिथ्यादृष्टि कहते हैं।
मिथ्यात्व सरीखा इस जीवका वैरी तीन लोक और तीन
कालमें न है और न होगा। बहुत समय तक इस जीवको
नरक निगोदादिक अशुभ गतियोंके जो दुख भोगने पड़ते
हैं, उसका खास कारण मिथ्यात्व ही है। भव्यात्माओं को
इस मिथ्यात्वसे अपनी रक्षा करनी चाहिये। हमेशा इससे
दूर रहना चाहिये। बाकी अप्रत्याख्यानादिक कषायें
जीवके कौनसे २ गुणका घात करती हैं ये प्रकरण हम

पहिले वर्णन कर चुके हैं। इसलिये अब उनके कार्यका वर्णन यहां नहीं किया जाता है।

जब यह जीव मिथ्यात्वके साथ अनंतानुबंधी कषाय का उपशम क्षय अथवा क्षयोपशम करता है, उसी वक्त उसके सम्यग्दर्शनके साथ २ स्वरूपाचरणचारित्र भी हो जाता है। जिस जीवको उपशम सम्यक्त्व होता है उसके उपशम सम्यक्त्वके समयके अंत होने में जब कमसे कम एक समय और ज्यादासे ज्यादा छह आवली काल (असंख्यात समयकी एक आवली होती है) बाकी रहता है उस समय किसी एक अनंतानुबंधी कषायके उदय होनेपर ये जीव सासादन नामक दूसरे गुणस्थानमें अवस्थित रहकर बादमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें नियमसे पहुंच जाता है। यह अनंतानुबंधी कषाय दर्शनमोहनीयकी पूर्ण सहकारिणी प्रकृति है।

कषायके विषयमें और भी खुलासा करते हैः—

क्रोधः—अनंतानुबंधी क्रोध पत्थरकी रेखाकी तरह महान कठोर होता है, अप्रत्याख्यान क्रोध पृथ्वीकी रेखाके समान, प्रत्याख्यानक्रोध धूलकी रेखाके समान, संज्वलनक्रोध जलकी रेखाके समान होता है।

मान–

अनंतानुबंधी मान शैल (पत्थर) के समान, अप्रत्याख्यान मान हड्डीके समान, प्रत्याख्यान मान काठके समान, संज्वलनमान बेंतके समान होता है।

माया–

अनंतानुबंधी माया बांसकी जड़के समान, अप्रत्याख्यान माया मेढ़ेके सींगके समान, प्रत्याख्यान माया गोमूत्रके समान, संज्वलनमाया खुरपाके समान होती है। मायाके ये चार भेद कुटिलताकी अपेक्षासे हैं।

लोभ–

अनंतानुबंधी लोभ कृमिरागके समान, अप्रत्याख्यानलोभ रथादिके चाकके भीतर रहने वाले ओंगनके समान, प्रत्याख्यानलोभ शरीरके मैलके समान, संज्वलनलोभ हल्दीके रंगके समान होता है। ये चारों कषाय उत्तरोत्तर हीन २ होती हैं, अर्थात् इनका संबंध जीवके साथ समयकी अपेक्षा हीन २ होता जाता है। पूर्व २ में कठोर और उत्तरोत्तर कोमल होते जाते हैं।

अनंतानुबंधी-क्रोध, मान, माया, लोभ नरकगतिके कारण होते हैं।

अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ तिर्यंचगति के कारण होते हैं।

प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ-मनुष्यगतिके कारण होते हैं।

संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ-देवगतिके कारण होते हैं।

नरकगतिमें उत्पन्न होने वाले नारकीको उत्पन्न होने के प्रथम समयमें क्रोध उदय होता है। पर किसी २ आचार्यके मतसे ऐसा नियम नहीं भी माना गया है। इसी तरह तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होने वाले जीवके प्रथम समयमें मानका उदय होता है। इस विषयमें भी आचार्य का मतभेद है। मनुष्यगतिमें उत्पन्न होने वाले जीवके प्रथम समयमें माया का उदय होता है। इसी प्रकार देवगतिमें उत्पन्न होने वाले जीवके प्रथम समयमें लोभ का उदय होता है।

लेश्या–

कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या–कषायके उदय से रंगी हुई मन वचन कायकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। अथवा-जिसके द्वारा जीव अपने आपको पुण्य पापसे लिप्त करे-अधीन करे, उसको भी लेश्या कहते हैं। कषाय और योग इन दोनोंके जोड़को लेश्या कहते हैं। इसीलिये

आचार्योंने लेश्याका कार्य बंधचतुष्क बतलाया है। क्योंकि चार प्रकारके बंधमेंसे प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योगसे होते हैं, स्थितिबंध और अनुभागबंध कषायसे होते हैं, ऐसा कहा गया है। जहां कषाय नहीं है, वहां केवल योगको ही लेश्या कहा गया है।

लेश्या दो प्रकारकी होती हैं, एक द्रव्यलेश्या, दूसरी भावलेश्या।

वर्ण नाम कर्मके उदयसे जो शरीरका रंग होता है, उस को द्रव्यलेश्या कहते हैं। और कषायके उदयानुसार होने वाली भावकी परिणतिको भाव लेश्या कहते हैं।

दूसरी तरहसे लेश्या के छह भेद होते हैं—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। ये छहों लेश्याएं द्रव्य रूप भी होती हैं, और भाव रूप भी। द्रव्य रूप तो पर्यायान्त तक रहती हैं, बहुत कम परिवर्तित होती हैं, किंतु भावलेश्याएं समय २ परिवर्तनशील होती हैं। संपूर्ण नारकी कृष्णलेश्या वाले होते हैं। कल्पवासी देवोंकी लेश्या द्रव्य और भाव दोनों एकसी होती हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, मनुष्य और तिर्यंच इनके छहों लेश्याएं होती हैं. तथा विक्रिया के द्वारा उत्पन्न होने वाले शरीरकी लेश्या छहों लेश्याओं मेंसे कोई एक होती हैं। अनंतानुबंधी कषायमें छहों लेश्याएं होती हैं। एवं अप्रत्याख्यान कषायमें भी छहों

लेश्याएं होती हैं, प्रत्याख्यानकषायमें-पीत, पद्म और शुक्ल ऐसी तीन लेश्याएं होती हैं। संज्वलन कषायमें तीन व एक ही शुक्ल लेश्या होती है।

आयु-कर्म

जो इस जीवको चारों गतियोंमें नियत समय तक रोक रक्खे, उसको आयु कर्म कहते हैं। जैसे जेलखानेमें काष्ठके यंत्रमें जब किसी चोरका पैर फांस दिया जाता है। और उस फँसे रखने की दी गई हो अवधि, तो वह चोर जब तक उस अवधिको पूर्ण न कर लेता, तब तक उस स्थानसे कहीं स्थानान्तर नहीं जा सकता, पराधीन होने से वहीं सुख दुख का अनुभव करता है। उसी प्रकार संसारी प्राणी चारों गतियोंमें प्राप्त शरीरमें आयुकर्मके उदयसे नियत समय तक रहता है। और शुभाशुभ कर्मके उदयानुसार सुख दुख भोगता है।

आयुकर्म चार प्रकारका होता है। (१) नरकायु (२) तिर्यंचायु (३) मनुष्यायु और (४) देवायु। इन चारों प्रकारकी आयुको चारों गतियोंके जीव भोगते हैं इस लिये यहां गतियोंका वर्णन किया जाता है।

नरक गति का वर्णन

जो स्वयं तथा परस्परमें प्रीतिको प्राप्त न हों उन्हें नारकी कहते हैं। इनकी गति नरकगति कहलाती है।

ये नारकी पूर्व संचित महापाप कर्मके उदयसे एक क्षण भी सुखका अनुभव नहीं करते। जो लोग मनुष्य पर्याय पाकर खोटे काम-जैसे शराब पीना, मास खाना, परस्त्री सेवन करना, वेश्यागमन करना, बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह रखना, आदि करते हैं, वे मरकर नरकगतिमें जाते हैं। और वहां स्वाभाविक, शारीरिक, मानसिक आगंतुक और क्षेत्रजन्य ऐसे पांचप्रकारके कष्ट उठाते हैं। पाप सेवन करते अच्छा लगता, लेकिन उसका परिपाक बहुत खोटा होता है। नरकके ये भयंकर दुःख कमसे कम १०००० वर्ष और ज्यादासे ज्यादा ३३ सागर पर्यंत भोगने पड़ते हैं।

तिर्यंच गतिका वर्णन—

जो मन वचन कायकी कुटिलताको प्राप्त हों, और जिनकी आहारादि संज्ञाएँ दूसरे मनुष्यादिको अच्छी तरह साफ २ मालूम होती हों, तथा जिनमें प्रचुर अज्ञानता हो, जिनमें लेशमात्र भी धर्म न हो, परस्पर एक दूसरेको देखते ही जिनमें कषायकी बहुलता होती हो, उन्हें तिर्यंच कहते हैं। ऐसोंकी गतिको तिर्यंच गति कहते हैं। तिर्यंचों में कुटिलता होती है, और मायाचारी या कुटिलता करने वाले मनुष्य मरकर तिर्यंच होते हैं। इनमें कुटिलता की बहुत अधिकता होती है, क्योंकि प्रायः सभी तिर्यंच

जो उनके मनमें होता है, उसको वचनसे नहीं कहते, क्योंकि उनमें उस प्रकारकी वचनशक्ति नहीं होती, और जो कुछ वचनसे कहते उसको कायसे नहीं करते, ऐसे व्यवहारको ही कुटिलता कहते हैं। तिर्यंचगतिके दुःख प्रगट हैं। अंगोंका छेदन भेदन होना, समयानुसार भूख प्यास लगने पर खाना पीना नहीं मिलना, शक्तिसे बाहर वजनका ढोना, सर्दी गर्मी आदिके कष्ट सहना, निर्बल होनेपर बलवानोंके द्वारा कायरतापूर्वक खाया जाना आदि नाना प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते हैं। एकेन्द्रीसे पंचेन्द्री तकके जीव इसी गतिमें होते हैं। ये जलचर थलचर, नभचर, कर्मभूमिज, कुभोगभूमिज व भोगभूमिज आदि कई तरहके होते हैं। इनकी आयु कमसे कम अंतर्मुहूर्त और ज्यादासे ज्यादा ३ पल्य तक होती है।

मनुष्य गति का वर्णन—

मनुष्यगति— जो नित्य विवेकवान हों— अच्छे बुरेमें हेय उपादेयका ख्याल करते हों, तत्व-कुतत्व, धर्म अधर्म आदिकी परीक्षाकर उससे अपने भले करनेकी भावना रखते हों, युगके आदिमें जो मनुओंसे उत्पन्न हुए हों, उन्हें मनुष्य कहते हैं। और उनकी गतिको मनुष्य गति कहते हैं। तात्पर्य ये है कि जिनके मनका विषय तीव्र होनेसे गुण दोषादिका विचार स्मरण आदि उत्कट रूपसे हों, चतुर्थ

कालकी शुरुआतमें जिन्हें मनुओं तथा आदिब्रह्मा तीर्थंकर देवके द्वारा व्यवहारका मार्ग बतलाया गयाहो, इस लिये जो आदीश्वर भगवान तथा कुलकरोंकी संतान कहे जाते हों उन्हें मनुष्य कहते हैं। आर्य और मलेच्छके भेदसे मनुष्य दो प्रकारके होते हैं। फिर आर्य दो प्रकारके होते हैं-ऋद्धिप्राप्तार्य और अनृद्धिप्राप्तार्य, म्लेच्छ भी शक यवन पुरंदर आदि नाना प्रकारके होते हैं। चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, नारद, रुद्र, तीर्थंकर आदि पुण्यात्मा जीव इसी गतिके जीव होते हैं। ५२५ धनुष्यसे लेकर २ हाथकी अवगाहना वाले होते हैं। भोगभूमि और कर्मभूमिमें उत्पन्न होते हैं, इनकी भी आयु कमसे कम अंतर्मुहूर्त और ज्यादासे ज्यादा तीन पल्यकी होती है।

देवगति का वर्णन-

देवगति-जो देवगतिमें होनेवाले परिणामोंसे सदा सुखी रहते हैं। और अणिमा-महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व इन आठ प्रकारकी ऋद्धियों से युक्त होकर विहार करते हैं, तथा अपने रूप, लावण्य, यौवन आदिसे निरंतर देदीप्यमान रहते हैं उन्हें देव कहते हैं और उनकी गतिको देवगति कहते हैं। देव चार प्रकारके होते हैं, इनमें मानसिक वेदना होती है

इनमें कोई २ देव सम्यग्दृष्टि भी होते हैं। कोई २ देव एक दो मनुष्यके भव धारण कर मुक्ति प्राप्त करते हैं। इनका अमृताहार होता है। इनकी भी आयु कमसे कम दस हजार वर्षकी और ज्यादासे ज्यादा ३३ सागर तक की होती है।

ऊपर कहा गया है कि देव चार प्रकारके होते हैं– (१) भवनवासी (२) व्यंतर (३) ज्योतिष्क (४) वैमानिक। पहिले नरकके तीन खन बतलाये गये हैं (१) खरभाग (२) पंकभाग (३) अब्बहुलभाग।

खर भाग १६ हजार योजन मोटा है। पंकभाग ८४ हजार योजनका मोटा है। और अब्बहुल भाग ८० हजार योजन मोटा है। उनमें खरभागमें ऊपर नीचे १-१ हजार योजन छोडकर मध्यकी १४ हजार योजन मोटी और एक राजू प्रमाण चौडी लंबी पृथ्वीमें तो व्यंतरोंके किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, भूत और पिशाच रहते हैं, तथा भवनवासियोंके नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार रहते हैं। और पंक भागमें भवनवासियोंके असुर कुमार और व्यतरोंके राक्षस रहते हैं, तीसरे भागमें नारकी रहते हैं। व्यंतर देव मध्यलोकमें भी रहते हैं। असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें इनके निवासस्थान पाये जाते हैं।

समान भूमि भागसे ७९० योजन ऊपरसे लेकर १०० योजन अर्थात् ११० योजनमें ५ प्रकार ज्योतिष्क देवों के विमान हैं। सूर्य, चन्द्रमा, गृह, नक्षत्र और प्रकीर्णकतारे ऐसे पांच प्रकारके ज्योतिष्क देव होते हैं। वैमानिक देव दो प्रकारके होते हैं- (१) कल्पोपपन्न और (२) कल्पातीत जिनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंस, पारिषत्क, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य, और किल्विष्क ऐसे दस प्रकारकी कल्पना होती है, उन्हें कल्पोपपन्न देव कहते हैं। और ये १६ स्वर्गोंके नामसे १६ प्रकारके हैं। जिनमें दश प्रकारकी कल्पना नहीं है, वे कल्पातीत देव कहलाते हैं, और वे- ९ ग्रैवेयिक ९ अनुदिश तथा ५ अनुत्तरवासी ऐसे २३ भेद रूप होते हैं। इनके स्थान, आयु, शरीरोत्सेध आदिकी विशेष जानकारी जाननेके इच्छुक राजवार्तिक आदि भाष्योंका स्वाध्याय करें। यहां संक्षेप रूपसे दिग्दर्शन कराया गया है।

नामकर्म-

नामकर्म चित्रकार ज्यों करे अनंते रंग।
ऐसे जीव पदार्थके हुए चतुर्गति भंग॥

नामकर्मका स्वभाव चित्रकार (चित्र बनाने वाले) की तरहका होता है। जैसे-चित्र-कार नाना प्रकारके छोटे बड़े चित्र बनाता है, उसी प्रकार नामकर्म चारों गतियोंमें

जीवके आश्रयके लिये नाना प्रकारके शरीर बनाता है। इस कर्मके उत्तर भेदोंका वर्णन सिद्धांतके अनुसार नीचे किया जाता है।

जिस कर्मके उदयसे यह जीव एक पर्यायसे दूसरी पर्यायको प्राप्त हो, वह गतिनाम कर्म है। उसके ४ भेद हैं—नरकगति-तिर्यंचगति-मनुष्यगति और देवगति।

उन ४ गतियोंमें अव्यभिचारी और सादृश्यपनेसे जीव इकट्ठे किये जांय उसको जाति कहते हैं। अर्थात् एकेन्द्रियादि जीव समान रूप हैं, तो भी परस्परमें आकृतिसे एक दूसरेसे मिलते नहीं. यह तो अव्यभिचारीपना, और नहीं मिलते हुए भी एकेन्द्रियादिपना सबमें समान है, यह हुआ सादृश्यपना, ये दोनों एकेन्द्रियादि जीवोंमें हैं यही जाति है। वह जाति ५ प्रकारकी है।

जिसके उदयसे जीव एकेन्द्रियादि कहा जाय उसको एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय जाति आदि जानना चाहिये।

जिसके उदयसे शरीर बने उसको शरीरनामकर्म कहते हैं। इसके औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, और कार्माण ऐसे ५ भेद होते हैं।

शरीर नामकर्मके उदयके वशसे ग्रहण किये! ऐसे आहारवर्गणा रूप पुद्गलस्कंधोंके प्रदेशोंका परस्परमें मिलना

सो बंधनाम कर्म है। उसके भी ५ भेद हैं—औदारिकबंधान, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माणबंधान।

जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंके परमाणु परस्परमें मिलकर छिद्र रहित एक हो जायं, उसको संघात नामकर्म कहते हैं। इसके ५ भेद ऊपर कहे अनुसार हैं। अर्थात् औदारिकसंघात, वैक्रियिकसंघात आदि।

जिसकर्मके उदयसे शरीरका आकार देव-मनुष्य आदि रूप बने उसे संस्थान नामकर्म कहते हैं इसके ६ भेद होते हैं- (१) समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुंडकसंस्थान।

जिस कर्मके उदयसे अंग उपांगोंकी रचना हो उसको आंगोपांग नामकर्म कहते हैं। उसके तीन भेद हैं- औदारिकांगोपांग-वैक्रियिक-आहारक।

जिस कर्मके उदयसे हाडोंका बंधनविशेष हो उसे संहनन कहते हैं। ऋषभ (वेठन) नाराच (कील) संहनन (हाडोंका समूह) ये तीनों वज्रके समान हों अर्थात इन तीनोंका किसीभी अस्त्र-शस्त्रसे छेदन भेदन न होसके उसको वज्रर्षभनाराच, संहनन नामकर्म कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाथ और वज्रकी कीली हों, पर वेठन वज्रके न हों, उसे वज्रनाराच कहते हैं।

जिसके उदयसे हाडोंकी संधियां अर्धकीलित हों, उसे अर्धनाराच कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे हाड परस्परमें कीलित हों उसे कीलक संहनन कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे जुदे २ हाड़नसों नसें बंधे हो उसे असंप्राप्तस्फाटिक संहनन कहते हैं।

जिसके उदयसे शरीरमें रंग हो उसको वर्ण नामकर्म कहते हैं। ये ५ प्रकारके होते हैं- कृष्ण, नील, लाल, पीत- सफेद।

जिसके उदयसे शरीरमें गंधहो उसे गंध नामकर्म कहते हैं। वह दो प्रकारका है १ सुगंध २ दुर्गंध।

जिसके उदयसे शरीरमें रसहो उसे रस नामकर्म कहते हैं। उसके ५ भेद हैं तीखा-कडुआ, कषायला, खट्टा और मीठा।

जिससे उदयसे शरीरमें स्पर्श हो उसे स्पर्श नामकर्म कहते हैं। उसके ८ भेद हैं- कठोर, कोमल, भारी, हलका, ठंडा, गरम, चिकना, रूखा।

जिस कर्मके उदयसे मरणके पीछे और जन्मके पहिले अर्थात् विग्रहगतिमें मरणसे पहिलेके शरीरके आकार आत्माके प्रदेश हों, उसे आनुपूर्वी कर्म कहते हैं। वह चार

प्रकार का है। नरकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी।

जिस कर्मके उदयसे लोहेके गोलेकी तरह भारी और आकडेके तूलकी तरह हलका शरीर न हो, उसको अगु-रुलघु नामकर्म कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे अपनेही अंगोंसे अपना घात हो उसे उपघात नामकर्म कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे दूसरेका घात हो उसे परघात कर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे स्वासोच्छ्वास हो उसको श्वोसाच्छ्-वास कर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे परको आताप करने वाला शरीर हो उसको आतपकर्म कहते हैं। इसका उदय सूर्यके प्रतिबिंब में उत्पन्न हुए पृथ्वीकायिक जीवोंके होता है।

जिसके उदयसे प्रकाश रूप शरीर हो उसे उद्योतकर्म कहते हैं। इसका उदय चंद्रमाके बिंबमें और जुगनु जीव के होता है।

जिस कर्मके उदयसे आकाशमें गमन हो उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं १ आकाश में गमन शुभ कामके लिये हो उसे प्रशस्तविहायोगति कहते

हैं। और २ पशु पक्षियोंके गमनको अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदयमे द्वीन्द्रियादिमें जन्म हो उसे त्रसनाम कर्म कहते हैं।

जिसके उदय से ऐसा शरीर हो कि जो दूसरेको रोके व खुद दूसरे से रुके उसे बादर नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे अपने २ योग्य आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियों को पूर्ण करे उसे पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे एक शरीरका एकही जीव स्वामीहो उसे प्रत्येक नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे शरीरके रसादिक धातु और वातादि उपधातु अपने २ ठिकाने रहें उसे स्थिर नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे मस्तक वगैरह शरीरके अवयव सुंदर हों उसे शुभ कर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे दूसरे जीव अपनेसे प्रीति करें उसे सुभगकर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे आवाज मीठी हो उसे सुस्वर कर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे कांति सहित शरीर हो, उसे आदेय कर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे अपना पुण्यगुण संसारमें प्रकट हो उसे यशः कीर्ति कर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे शरीरके आगोंपांगकी रचना ठीक २ हो उसे निर्माणकर्म कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं।

जिसके उदयसे ठीक २ मापके आंगोपांग बने उसे प्रमाण निर्माण कहते हैं। जो कर्म इन्द्रियादिकी जहां जैसी रचना होनी चाहिये वहां वैसी रचना करे उसे स्थान निर्माण कहते हैं। अर्हंतपदकी कारण भूत कर्म प्रकृतिको तीर्थंकरप्रकृति कहते हैं।

जिसके उदयसे एकेन्द्रियमें जन्म हो उसको स्थावर कहते हैं। स्थावर ५ प्रकारके होते हैं:— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। इन सभी जीवों के स्थावर नामकर्मका उदय होता है। इस स्थावर नामकर्म के उदयसे ही ये जीव स्थावर कहे जाते हैं। ऐसा नहीं है कि जो चल फिर नहीं सकते उन्हें स्थावर कहते हैं, जो चलते फिरते हैं उन्हें त्रस कहते हैं। क्योंकि जल, अग्नि, और वायु कायके जीव बराबर चलते हैं, एक स्थानसे स्थानांतर जाते हैं, पर त्रस नहीं कहलाते। इन पृथ्वी वगैरहके चार-चार भेद होते हैं।

पृथ्वी-जो अचेतन हो, काठिन्यादि गुण विशिष्ट हो उसे पृथ्वी कहते हैं। पृथ्वीजीव-अन्यगतिसे चयकर पृथ्वीमें उपजनेके संमुख विग्रहगतिमें हो उसे पृथ्वीजीव कहते हैं।

पृथ्वीकायिक-जिसका शरीर ही पृथ्वी हो उसको पृथ्वीकायिक कहते हैं।

पृथ्वीकाय-जिस पृथ्वीमेंसे जीव निकल गया हो उसे पृथ्वीजीव कहते हैं। कोई २ आचार्य इनमें ३ ही भेद बतलाते हैं। ये भेद पांचों स्थावरों में जानना चाहिये। पृथ्वीकायिक जीवोंका आकार मसूरके समान होता है। जलकायिक जीवोंका आकार जलबिंदुके समान होता है। अग्निकायिक जीवोंका आकार सुइयोंके समूह के आकार होता है। वायुकायिक जीवोंका आकार ध्वजाके समान त्रिकोणरूप होता है। वनस्पतिकायिक जीवोंका आकार अनेक प्रकारका होता है।

त्रसकाय जीवोंके ५ भेद होते हैं- द्वीन्द्रियजीव, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनीपंचन्द्रिय और सेनीपंचेन्द्रिय। इनमें एकेन्द्रियसे लेकर असैनीपंचेन्द्रिय तक ९ प्रकार के जीव तो असैनी ही होते हैं, इनमें सोचने समझनेकी शक्ति नहीं होती, सिर्फ सैनी पंचेन्द्रिय ही ऐसे जीव हैं, जो सोच समझ सकते हैं, शिक्षा उपदेश ग्रहण कर सकते हैं।

असैनी तक ९ प्रकारके जीव तिर्यंच गतिके ही होते हैं। सैनी चार प्रकारके होते हैं। नारकी-मनुष्य-देव और तिर्यंच। मनुष्य और तिर्यंच, तो-गर्भज और संमूर्च्छन दोनों प्रकारके होते हैं, बाकी देव और नारकी औपपादिक होते हैं। एकेन्द्रिय जीव बादर और सूक्ष्म दो प्रकारके होते हैं। बादरकी परिभाषा ऊपर लिखी जा चुकी है।

सूक्ष्म उन्हे कहते हैं जो न तो किसीसे रुकैं और न किसीको रोकैं।

जिस कर्मके उदयसे कोई भी पर्याप्ति पूर्ण न हो उसे अपर्याप्ति कर्म कहते हैं।

जिसके उदयसे एक शरीरके अनेक स्वामी हों उसे साधारण कहते हैं। साधारण नाम कर्मके उदयसे इस प्रकारका जीवोंका शरीर होता है जो अनंतानंत जीवोंको आश्रय दे सकता है। इस शरीरका एक मुख्य जीव नहीं होता, किंतु अनंतानंत जीव समान-रूपसे रहते हैं। इसीलिये इनका नाम साधारण है। साधारणके दो भेद होते हैं (१) बादर (२) सूक्ष्म। साधारण जीवोंका समान ही तो आहार होता है, और समान ही स्वासोच्छ्वास ग्रहण होता है। साधारण जीवोंका लक्षण शास्त्रोंमें समान ही बतलाया गया है। इनमें जहां एक जीव मरण करता है वहां अनंत जीवोंका

मरण होता है। और जहां एक जीव उत्पन्न होता वहां अनंत जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इहां इतना विशेष जानना चाहिये कि-एक बादर निगोद शरीरमें या सूक्ष्म निगोद शरीरमें साथ २ उत्पन्न होने वाले अनंतानंत साधारण जीव या तो पर्याप्तक ही होते हैं, या अपर्याप्तक ही होते हैं। किंतु मिश्र रूप नहीं होते हैं। क्योंकि उनके समान कर्मोदयका नियम है।

जिस कर्मके उदयसे धातु उपधातु अपने २ ठिकाने न रहें किंतु चलायमान रहें, और शरीरको रोगी बना रक्खें उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं। छोटी २ अवस्थामें कृशपना, धातुक्षय, राजयक्ष्मा आदि रोग होकर अकाल मरण इसी कर्मके उदयसे होते हैं।

जिस कर्मके उदयसे शरीरके अवयव सुन्दर न बनें उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं। कुरूपका बनना, शरीरका देखने लायक नहीं बन सकना जिसको देखकर लोग घृणा करने लग जाते हैं। इन सब का कारण इसी कर्मका उदय है।

जिसके उदयसे रूपादिककी सुन्दरता होनेपर भी दूसरे लोग प्रेम न करें प्रत्युत वैर करने लग जाँय उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे अच्छा स्वर न हो, ऐसा स्वर हो जो सुननेमें कानोंको कडुआ लगे, अथवा जिसको

सुनकर सुननेवालेको चिढ़ पैदा हो जाय, उसको दुस्वर नामकर्म कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे कांति रहित शरीर हो उसको अनादेय कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे उत्तम २ कार्य करने पर भी लोकमें तारीफ न हो किंतु लोग दोषोंका ही उद्भावन करें उसे अयशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

इस प्रकार सब मिलकर ९३ भेद होते हैं इन ९३ प्रकृतियोंमें ६५ प्रकृतियां तो सपिंड रूप होती हैं और २८ प्रकृतियां अपिंड रूप होती हैं। ऊपर शरीर-पर्याप्ति और संस्थान के भेदोंके नाम लिखे गये हैं। यहां पर उनका संक्षेपमें अर्थ लिखा जाता है। क्योंकि आत्माका अधिष्ठान शरीर ही है। वह पांच प्रकार का होता है:—

औदारिकशरीर—मनुष्य और तिर्यंचोंके शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। उदार माने स्थूल-जो इन्द्रियों से ग्रहण करनेमें आवे। उदारमें जो होय उसको औदारिक कहते हैं।

देव और नारकियोंके शरीरको वैक्रियिक शरीर कहते हैं। इस शरीरको एक अनेक छोटा बड़ा आदि रूप करना इसको विक्रिया कहते हैं। और विक्रियासे जो हो उसको वैक्रियिक कहते हैं। विक्रिया-दो तरहकी होती है

(१) पृथक्विक्रिया-मूल शरीरके सिवा उसी तरहके व उससे भिन्न तरहके अनेक शरीर बनाना, पृथक् विक्रिया कहलाती है। ये पृथक् विक्रिया देवोंमें हुआ करती है। औदारिक शरीरके साथ पृथक् विक्रिया चक्रवर्ती व भोगभूमिज मनुष्य तिर्यंचोंके भी हुआ करती है। ऐसे शरीरको औदारिक वैक्रियिक शरीर कहते हैं। नारकियोंके अपृथक् विक्रिया होती है, तथा औदारिक शरीरके साथ अपृथक् विक्रिया बादर तेजस्कायिक और वायुकायिक तथा संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रियके भी हुआ करती है।

आहारकशरीर-असंयमके परिहार तथा संदेहको दूर करनेके लिये, छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनिकें आहारक शरीर नामकर्मके उदयसे आहारक शरीर होता है। अपने क्षेत्रमें केवली या श्रुतकेवलीकें अभाव होनेपर, तथा दूसरे क्षेत्रमें जहां पर औदारिक शरीरसे उस समय पहुँच नहीं सकते तपकल्यानक आदि होने पर, और जिनगृह (चैत्यालय) की वंदना करनेके लिये भी, आहारक ऋद्धिको प्राप्त छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनिकें आहारक शरीर होता है। यह आहारक शरीर रसादिक धातुओं और संहननसे रहित, समचतरस्र संस्थान सहित, चन्द्रकांत मणिके समान सफेद, एक हाथ प्रमाणवाला उत्तम शरीरमें पुतलेकी तरह का होता है। इस शरीरके द्वारा न तो किसी दूसरे पदार्थ

का, और न किसी दूसरे पदार्थ द्वारा इस शरीरका, व्याघात होता है। इसकी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी होती है। आहार व शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होने पर कदाचित् आहारक ऋद्धिवाले मुनिका मरण भी हो सकता है।

तैजसशरीर-औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन शरीरोंको कांति देने वाले शरीरको तैजस शरीर कहते हैं। यह शरीर भी दो प्रकार का होता है (१) शुभतैजस (२) अशुभतैजस।

शुभतैजस-विशेष चरित्रवान मुनिके दहिने कंधे से निकलने वाला, एक हाथ प्रमाण पिंड जो चन्द्रकांत मणिके समान होता है, निकल कर उस देश के तमाम जीवोंको उपद्रव रहित कर देता है, जिसके निकलनेसे दुर्भिक्षादि तमाम उपद्रव दूर हो जाते हैं। जैसे-मथुरामें चमरेन्द्र द्वारा किया गया उपद्रव सप्तऋषियोंके निमित्तसे शांत हुआ, उसको शुभतैजस कहते हैं। इस तैजस शरीरकी रचना तब होती है, जब किसी ऋद्धि धारी मुनिको किसी देशमें दुर्भिक्ष मरी आदि उपद्रवोंसे पीडित जनताको देखकर करुणाभाव उत्पन्न होजावे। क्योंकि ये शरीर कषायकी उपशमता होने पर शुभ भावोंसे होता है।

अशुभतैजस-किसी कारणको पाकर जब कोई मुनिको क्रोध उत्पन्न हो जाता है, उस वक्त उनके बायें कंधेसे

सिंदूरके समान वर्णवाला पुतला निकलकर कई योजनके जीवों को भस्मकर, उस नगरीको भी भस्मकर मुनिको भी भस्मकर देता है। मुनि मरकर नरक जाते हैं। जैसे, द्वीपायन मुनिने द्वारकाको, सात्यकी मुनिने दंडकवनको भस्म किया था। जैसे बिजली सब जगह अपना प्रकाश फेंककर सब पदार्थोंको तेजयुक्त करती है। उसी तरह यह तैजस शरीर अन्य तीन प्रकारके शरीरोंमें कांति उत्पन्न करता है। बिना इस शरीरके उन शरीरोंमें कांति नहीं होती।

कार्माणशरीर-ज्ञानावरणादिक आठ कर्मोंके समूहको कार्माण शरीर कहते हैं। अथवा-कार्माण शरीर नामकर्मके उदयसे होने वाली कायको कार्माण शरीर कहते हैं। यह शरीर संसारी जीवोंके साथ अनादि कालसे संबंध करता आया है, इसीके निमित्तसे इस जीवको ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करना पड़ता है। जब तक इस शरीरका संबंध रहेगा, कोई भी आत्मा जन्म मरणके दुखसे दूर नहीं हो सकता। इस प्रकार इस जीवके साथ रहने वाले पांच शरीरोंका वर्णन किया।

अब छह पर्याप्तियोंका वर्णन किया जाता है।

पर्याप्ति-ग्रहण किये हुए आहारवर्गणाके परमाणुओं को खल रसादि रूप परिणमावनेको कारण भूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते हैं। ऐसी पर्याप्तियां

छह प्रकारकी होती हैं। (१) आहार (२) शरीर (३) इन्द्रिय (४) स्वासोच्छ्वास (५) भाषा और (६) मन।

जिन जीवोंके अपने २ योग्य पर्याप्ती पूर्ण हो जाती हैं, उन्हें पर्याप्त कहते हैं।

जिनकी कोई पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो उन्हे अपर्याप्त कहते हैं। जिस प्रकार घट-वस्त्र आदि पदार्थ बन चुकने पर पूर्ण और जब तक न बन चुकें तब तक अपूर्ण कहे जाते हैं। इसी प्रकार पर्याप्ति सहितको पर्याप्त और पर्याप्ति रहित को *अपर्याप्त कहते हैं। छह पर्याप्तियोंमें* एकेन्द्रियके चार पर्याप्ति, द्वि इन्द्रियसे असैनीपंचेन्द्री तकके पांच पर्याप्ति और सैनी पंचेंद्रीके छहों पर्याप्तियां होती हैं।

आहार पर्याप्ति-एक शरीर को छोड़कर नवीन शरीर का कारण भूत जिस नोकर्मवर्गणाको जीव ग्रहण करता है उसको खल रस भागरूप परिणमावनेके लिये जीवको शक्तिके पूर्ण हो जानेको आहार पर्याप्ति कहते हैं।

शरीर पर्याप्ति-आहारवर्गणाके जिन परमाणुओंको खल रूप परिणमाया था उनके तो हड्डी आदि कठोर अवयवरूप तथा जिन्हें रसभाग रूप परिणमाया था उनके खून आदि द्रव अवयवरूप परिणमावनेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण होनेको शरीरपर्याप्ति कहते हैं।

इन्द्रियपर्याप्ति-आहारवर्गणाके स्कंधमेंसे कुछ वर्ग-णाओंको अपनी २ इन्द्रियके स्थानपर उस द्रव्येन्द्रियके आकार परिणमावनेको कारणभूत जीवकी शक्तिके पूर्ण हो जानेको इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

स्वासोच्छ्वासपर्याप्ति- उसी प्रकार आहारवर्गणाके स्कंधमेंसे कुछ वर्गणाओंको स्वासोच्छ्वासरूप परिणमावने को कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

भाषा पर्याप्ति-भाषावर्गणाके परमाणुओंको वचन रूप परिणमावनेको कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते हैं।

मनःपर्याप्ति-तथा द्रव्यमनरूप होनेको योग्य मनोवर्ग-णाके परिमाणुओंका द्रव्यमनके आकार परिणमावनेकी शक्तिके पूर्ण होनेको मनःपर्याप्ति कहते हैं।

जिन जीवोंकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होतीं ऐसे अ-पर्याप्त जीवोंके दो भेद होते हैं—(१) निर्वृत्यपर्याप्त (२) लब्ध्यपर्याप्त।

निर्वृत्यपर्याप्त—जिन जीवोंकी पर्याप्ति अभी पूर्ण नहीं हुई हों किंतु अंतर्मुहूर्तके बाद नियमसे पूर्ण हो जायगीं उनको निर्वृत्यपर्याप्त कहते हैं।

लब्ध्यपर्याप्त-जिन जीवोंकी अभी तक एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई हो, किंतु पूर्ण होनेके पहिलेही जिसका मरण हो जाय उसको लब्ध्यपर्याप्त कहते हैं।

संपूर्ण पर्याप्तियोंके एक साथ प्रारंभ होनेके बाद अंतर्मुहूर्त कालमें आहार पर्याप्ति पूर्ण होती है। इसही प्रकार उसके असंख्यात भाग प्रमाण अधिक कालमें शरीर पर्याप्ति पूर्ण होती है। इसी प्रकार आगे आगेकी पर्याप्ति के पूर्ण होनेमें पूर्व पूर्वकी अपेक्षा कुछ कुछ अधिक काल लगता है, तथापि वह अंतर्मुहूर्तमात्र ही है। क्योंकि असंख्यात समय प्रमाण अंतर्मुहूर्तके भी असंख्यातही भेद होते हैं। क्योंकि असंख्यातके भेद भी असंख्यातही होते हैं। इसलिये संपूर्ण पर्याप्तियोंका समुदाय रूप काल भी अंतर्मुहूर्तमात्र ही है।

पर्याप्ति नाम कर्मके उदयसे जीव अपनी अपनी पर्याप्तियोंसे पूर्ण होता है, तथापि जब तक उसकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, तब तक उसको पर्याप्तक न कह-कर निर्वृत्यपर्याप्तक कहते हैं। मतलब ये है, कि इन्द्रिय, स्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन पर्याप्तियोंके पूर्ण न होने पर भी यदि शरीर पर्याप्ति पूर्ण होगई है, तो वह जीव पर्याप्त ही है, किंतु उससे पूर्व निर्वृत्यपर्याप्त ही कहा जाता है।

अपर्याप्त नाम कर्मके उदयसे जो जीव अपने अपने योग्य पर्याप्तियोंको पूर्ण न करके अंतर्मुहूर्त कालमें ही मरण को प्राप्त हो जाता है, उसको लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। तात्पर्य ऐसा है कि जो जीव अपर्याप्त नाम कर्मके उदयसे अपने अपने योग्य पर्याप्तियोंको पूर्ण न करके अंतर्मुहूर्त कालमें ही मरणको प्राप्त हो जाँय, उनको लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। ऐसे जीवोंका मरण अंतर्मुहूर्तमें ही होता है। इन जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार की आयु अंतर्मुहूर्तमात्र ही होती है, ऐसा समझना चाहिये। यह अंतर्मुहूर्त एक स्वासके १८ वें भाग प्रमाण ही होता है।

इस प्रकारके लब्ध्यपर्याप्तक जीव एकेन्द्रीसे पंचेन्द्री पर्यंत तकके सब जीवोंमें पाये जाते हैं।

प्रश्न ऐसा जीव एक अंतर्मुहूर्तमें ज्यादासे ज्यादा कितने भव धारण कर सकता है?

इस शंकाके समाधानमें आचार्योंने बतलाया है, कि एक लब्ध्यपर्याप्तक जीव एक अंतर्मुहूर्तमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्म और मरण धारण करता है। याने इतने ही जन्म और इतने ही मरण धारण कर सकता है। इससे अधिक नहीं।

प्रश्न—ऊपर बतलाए हुए भवोंमें एकेन्द्रियादिकमें से किसके कितने भव होते हैं?

समाधान—विकलेन्द्रियोंमें द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके ८० भव, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके ६० भव, चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवके ४०, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवके २४, तथा एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवके ६६१३२ भव होते हैं अधिक नहीं।

एकेन्द्रियके ६६१३२ भवों का क्रम इस प्रकार है—सूक्ष्म पृथ्वी, स्थूल पृथ्वी, सूक्ष्मजल, स्थूलजल, सूक्ष्मतेज, स्थूलतेज, सूक्ष्मवायु स्थूलवायु, सूक्ष्म साधारण और स्थूल साधारण, और प्रत्येक इस तरह एकेन्द्रियके ११ भेद होते हैं। और हर एकके ६०१२ भव होते हैं। इस तरह ६०१२ को ११ से गुणा करने पर ६६१३२ भव एकेन्द्रिय के होते हैं।

छह प्रकारके संस्थानोंका खुलासा इस प्रकार है। नाम तो ऊपर बतला दिये गये हैं यहां हर एक की परिभाषा लिखी जाती हैः—

समचतरस्रसंस्थान—जिस कर्मके उदयसे शरीरकी शकल केलेके थमकी तरह ऊपर नीचे और बीचमें सम-भागसे बने। जैसे केलेका थंम ऊपरसे नीचे तक ऊँचा नीचा कूबड़ आदि रूप न होकर एकसा होता है, उसी तरह जिनके शरीरकी शकल एकसी सुडौल होती है, उनके संस्थानको समचतरस्र संस्थान कहते हैं। ये

संस्थान तीर्थंकर सरीखे पुण्यात्माओंके ही होता है, सामान्य व्यक्तियोंके नहीं होता।

न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान–जिस कर्मके उदयसे जीव का शरीर वड़के वृक्षकी तरह हो, अर्थात् नाभिसे नीचेके अंग छोटे और ऊपरके बड़े हों।

स्वातिसंस्थान-ऊपर वाले जवाबसे बिलकुल उल्टा हो अर्थात् नाभिसे नीचेके अंग तो बड़े और ऊपरके छोटे हों। जैसे सांपकी बाँमी होती है। इसको स्वातिसंस्थान कहते हैं।

कुब्जकसंस्थान-जिस कर्मके उदयसे कुबड़ा शरीर हो, उसको कुब्जकसंस्थान कहते हैं।

वामनसंस्थान-जिस कर्मके उदयसे ठिगना शरीर हो, उसको वामनसंस्थान कहते हैं।

हुंडकसंस्थान-जिस कर्मके उदयसे शरीरके आंगोपांग किसी खास शकलके न हों, उसको हुंडकसंस्थान कहते हैं।

इस प्रकार नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोंका वर्णनकर अब गोत्रकर्मका वर्णन किया जाता है।

गोत्रकर्म–

जिस कर्मके उदयसे संतान क्रमसे चले आये जीवके आचरण रूप उच्च नीच कुलमें जन्म हो, उसे गोत्रकर्म

कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं। (१) उच्चगोत्र (२) नीचगोत्र।

जिस कर्मके उदयसे लोक मान्य कुलमें जन्म हो, उसे उच्चगोत्र कहते हैं।

जिस कर्मके उदयसे लोकमें निंदित ऐसे कुलमें जन्म हो, उसे नीचगोत्र कहते हैं।

दूसरेकी निंदा और अपनी प्रशंसा करना, दूसरेमें न होने वाले दोषोंको कहना और अपनेमें जो गुण नहीं हैं, उनका सद्भाव बतलाना, इससे नीचगोत्रका बंध होता है। अर्थात् ऐसे काम करनेसे परभवमें नीच कुलमें जन्म होता है।

ऊपर कहे हुए व्यवहारसे उल्टा व्यवहार करना अर्थात्-हमेशा ऐसी आदत होना कि दूसरेमें कितनी ही बुराइयां क्यों न हों, उनको न कहकर उनके गुणोंका कथन करना, तथा अपनेमें कैसे ही गुण क्यों न हों, पर उनको न कहकर, अपनेको लघु मानना, अपने दुर्गुणोंको ही दूसरोंके सामने कहना, हर एकके सामने नम्रता दिखलाना, किसी बातका घमंड नहीं करना, इससे उच्च गोत्रकर्मका बंध होता है। अर्थात् ऐसे काम करने वाला जीव मरकर परभवमें लोकप्रतिष्ठित कुलमें जन्म लेता है।

अंतरायकर्म—

जो दानादिक उत्तम कार्योंमें विघ्न डाले उसको अंतराय कर्म कहते हैं।

यद्यपि ये कर्म वास्तवमें घातिया कर्म हैं, परंतु ये कर्म अघातिया कर्मोंकी तरह आत्मिक गुणोंको सर्वथा नहीं घातता, इसीलिये इस कर्मको अघातिया कर्मोंके अंतमें कहा है। इसके ५ भेद होते हैं (१) दानांतराय (२) लाभांतराय (३) भोगांतराय (४) उपभोगांतराय और (५) वीर्यान्तराय।

जिस कर्मके उदयसे दान देनेके भाव होने पर भी तथा दान देनेकी तत्परता दिखलाने पर भी दान न दे सके, दान देनेमें विघ्न आजाय, उसे दानांतराय कर्म कहते हैं। जैसे- किसी एक राजाने एक भिक्षुकको १०० रुपया देनेका हुक्म दिया, जब वह भिक्षुक खजानचीके पास गया तो खजानचीने कोई कारण बतलाकर मने कर दिया तो समझना चाहिये कि मिलने वालेको लाभांतरायका और देने वालेको दानांतराय कर्मका उदय आ गया। इसी वजह उसको रुपया न मिल सके और राजा दे न सका।

जिस कर्मके उदयसे किसी वस्तुका लाभ न हो सके उसको लाभांतराय कर्म कहते हैं। जैसे-कोई मनुष्य एक

व्यापारमें पांच सौ रुपया पैदा कर सकता था, लेकिन दूसरे व्यापारी ने भांज मार दी, जिससे उसे लाभ न हो सका, तो समझना चाहिये, उसके लाभान्तराय कर्मका उदय है, जिससे लाभ न हो सका।

जिसके उदयसे भोगोंमें विघ्न पड़े उसको भोगांतराय कर्म कहते हैं। जैसे- किसीने रसोई बनाकर तैयारकी कि इकदम कुत्तेने आकर भ्रष्ट कर दी, तो समझना चाहिये उसके भोगान्तराय कर्मका उदय आगया जिससे वह रसोईको न भोग सका।

जिसके उदयसे उपभोगोंमें विघ्न पड़े उसे उपभोगांतराय कर्म कहते हैं। जैसे किसी मनुष्यने बड़े शोकसे पहिननेके लिये सुन्दर कपड़े सिलाए और लाकर एक खूंटी पर टांग दिये, समय पाकर चोरने चुरा लिये, तो समझना चाहिये कि उसके उपभोगान्तराय कर्मका उदय है जिससे मनोभिलषित कपड़े न पहिन सका।

जिस कर्मके उदयसे वीर्य (शक्ति) में बाधा आवे उसे वीर्यान्तराय कर्म कहते हैं। जैसे-कोई दो मनुष्य परस्पर भद्दी हँसीमें भण्ड वचन बोलकर मनकी वासना बिगाड़ कर अपने ब्रह्मचर्य को बिगाड़ रहे हों, तो समझना चाहिये कि उनके वीर्यान्तराय कर्मका उदय है।

यहां तक आठों कर्मोंकी व्याख्याकी। मूल प्रकृति ८ और उत्तर प्रकृतियां १४८ होती हैं। आठों कर्म २ प्रकारमें विभक्त हैं (१) घातिया (२) अघातिया। अथवा (शुभ) और अशुभ। अथवा पुण्यरूप और पापरूप।

घातिया, अघातियां कर्मोंका वर्णन पहिले किया जा चुका है। यहां प्रकरण पाकर पुण्य पाप रूप प्रकृतियोंके नाम बतलाये जाते हैं।

जो कर्म जीवको अनिष्ट सामग्रीका संयोग व इष्ट सामग्रीका वियोग करावे, उसे पाप कर्म कहते हैं। इसके उदयमें जीव दुखी होता है। जैसे- किसी मनुष्यके घर चोरी हो जाय, शिरमें भयंकर पीड़ा हो जाय, तो समझना चाहिये, उस मनुष्यके पापकर्मका तीव्र उदय है।

पापकर्म की प्रकृतियां १०० होती हैं--घातियाकी ४७, असातावेदनीय १, नीचगोत्र १, नरकायु १, और नामकर्मकी ५० (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ऐसी ४ जाति, अंतके ५ संस्थान, अंतके ५ संहनन, स्पर्शादिक २०, उपघात १, अप्रशस्तविहायोगति १, स्थावर १, सूक्ष्म १, अपर्याप्ति १, अनादेय १, अयशःकीर्ति १, अशुभ १, दुर्भग १, दुस्वर १, अस्थिर १, साधारण १। सब मिलाकर १०० प्रकृतियां पापकी होती हैं।

जिस कर्मके उदयसे जीवको इष्टकी प्राप्ति और अनिष्ट का वियोग हो उसको पुण्यकर्म कहते हैं। जैसे- एक मनुष्यको व्यापारमें २ लाख रुपया मुनाफा हुआ, पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई, सुसंगतिकी टेव पड़ी, और शरीरसे बीमारी दूर होगई, तथा जनतामें भारी कदर होने लगी, समझना चाहिये इस जीवके तीव्र पुण्यकर्मका उदय है।

पुण्य प्रकृतियां ६८ होती हैं और वे निम्नलिखित हैं-

कर्मकी सारी प्रकृतियां १४८ होती हैं। उनमेंसे नाम-कर्मकी स्पर्शादि २० प्रकृतियां पुण्य और पाप दोनोंमें गिनी जाती हैं, क्योंकि-वीसों ही स्पर्शादिक प्रकृतियां किसीको भली और किसीको बुरी होती हैं। इसलिये ऊपर बतलाई हुई १०० प्रकृतियोंमेसे भिन्न ४८ प्रकृतियोंमें २० स्पर्शादिक मिलानेसे ६८ प्रकृतियां पुण्यरूप होती हैं।

इनहीं प्रकृतियोंको फिर चार विभागोंमें विभक्त किया गया है:—

(१) जीवविपाकी- पुद्गलविपाकी, भवविपाकी और क्षेत्रविपाकी।

जिनका फल जीवमें हो अर्थात् ऐसी प्रकृतियां जिनका सुख दुख रूप फल जीवमें पाया जाय, उन प्रकृतियोंको जीवविपाकी कर्म कहते हैं। वे प्रकृतियां ७८ होती हैं—घातियाकी ४७, गोत्रकी २, वेदनीयकी २,

और नामकर्मकी २७ (तीर्थंकर प्रकृति, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्त-विहायोगति, सुभग, दुर्भग, त्रस, स्थावर, गति ४, जाति ५) सब मिल ७८।

जिसका फल पुद्गल (शरीर) में हो अर्थात् जिनका उदय पुद्गलमें हो उसको पुद्गल विपाकी कहते हैं। पुद्गलविपाकी प्रकृतियां ६२ होती हैं। संपूर्ण १४८ प्रकृतियोंमेंसे क्षेत्रविपाकी ४, भवविपाकी ४, जीवविपाकी ७८ ऐसे सब मिलकर ८६ प्रकृति घटानेसे शेष रही ६२ प्रकृतियां पुद्गल विपाकी हैं।

भवविपाकी-जिसके फलसे जीव संसारमें रुके, उसको भवविपाकी कहते हैं। इसके चार भेद हैंः—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु।

क्षेत्रविपाकी-जिसके फलसे विग्रहगतिमें जीवका आकार पहिलासा बना रहे, उसे क्षेत्रविपाकी प्रकृति कहते हैं। ये भी ४ प्रकारकी होती हैंः-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी। आनुपूर्वीका अर्थ पहिले ही लिखा जा चुका है, अर्थात् मरणके पीछे और जन्म लेनेसे पहिले विग्रह गतिमें जीवका आकार पूर्व शरीरवत रहे, उसको आनुपूर्वी कहते हैं। ये अर्थ प्रत्येक आनुपूर्वीमें लगा लेना चाहिये।

अब यहां पर मध्यम रुचि वाले श्रोताओंको विशेष समझानेके लिये, नामादिक चार निक्षेपोंका स्वरूप कहते हैं। विना इनके जाने वस्तुका स्वरूप यथार्थ समझमें नहीं आता
णामं ठवणा दवियं भावोत्ति चउव्विहं हवे कम्मं
पयडी पावं कम्मं मलंति सण्णा हु णाम मलं ॥ कर्मकाण्डे ॥ ५२ ॥०

नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे निक्षेप चार तरहका होता है। इसीको चार निक्षेपके नामसे भी कहते हैं। निक्षेपका अर्थ है-युक्तिसे सुयुक्त मार्ग होते हुए कार्यके वशसे नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूपसे पदार्थका व्यवहार करना, अर्थात् संव्यवहार विशेषमें कोई व्यभिचार न आवे ऐसा व्यवहार करना, इसीको निक्षेप कहते हैं। वह निक्षेप चार प्रकारका होता है। (१) नामनिक्षेप, (२) स्थापनानिक्षेप, (३) द्रव्यनिक्षेप और (४) भावनिक्षेप।

नामनिक्षेप-

यहां नाम शब्दकी निरुक्ति (व्युत्पत्ति) दो तरहसे की गई है-"नीयते अर्थो येन इति नाम" जिसके द्वारा पदार्थ संमुख किया जाय उसको नाम कहते अथवा जिसके द्वारा पदार्थको प्राप्त हुआ जाय सो नाम कहते हैं। अथवा पदार्थको संमुख करे सो नाम है, जिसको सुनते ही

उसका अर्थ संमुख हो जाय उसे ही नाम कहते हैं। गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया रहित वस्तुमें अपने पुरुषार्थ से दूसरेकी अपेक्षा रहित वस्तुका अपनी इच्छासे ही संज्ञा करना सो नामनिक्षेप है। किसी कारणसे नामनिक्षेप नहीं होता।

जिस वस्तुमें नाम, रूप, गुण, जाति, द्रव्य, क्रिया तो नहीं होय, परंतु लोकमें प्रवृत्ति करनेके लिये अपनी इच्छा से संज्ञाकरण करना सो नामनिक्षेप है। जैसे किसी पुरुष का नाम इन्द्रराज है परन्तु उसमें इन्द्र सरीखी न तो जाति है, न गुण है और न क्रिया है, किंतु लोक व्यवहार चलाने के लिये मा बापने इन्द्रराज ऐसा नाम रख दिया, सो ये नामनिक्षेप है। ऐसेही जाति द्रव्य गुण क्रियाके विना किसी का नाम जोरावरसिंह, पार्श्वनाथ, जिनदत्त, धनपाल आदि रखना सो ये सब नाम निक्षेपही हैं। धवल गुण सहित को धवल कहना, गुणकी अपेक्षा नाम है। देव, गाय, हाथी घोडा आदि जातिसे नाम हैं। कुंडल पहिनने वाले को, कुंडली, दंड लेने वाले को दंडी, धनवालेको धनी कहना ये सब क्रिया द्वारा नाम है। इन सबको नामनिक्षेप नहीं कहते।

स्थापनानिक्षेप—

काष्ठ, पाषाण, मिट्टी, चित्रामादिमें तथा सतरंजके

गोटनमें हाथी घोडा आदि तदाकार अतदाकार पदार्थोंमें वह ये है, ऐसी बुद्धि करनेको स्थापना निक्षेप कहते हैं। जैसे धातु अथवा पत्थर आदिकी बनी हुई पार्श्वनाथ भगवान की मूर्तिको देखकर कहना " ये पार्श्वनाथ भगवान हैं." एवं अक्षत पुष्पादिमें ये, "नेमिनाथ स्वामी हैं" ऐसी बुद्धि करना सो अतदाकार स्थापना है।

शंका- इस तरहसे तो नामनिक्षेप और स्थापना निक्षेपमें कोई भेद नहीं रहा। जैसे नामके अनुकूल गुण रहितका नाम करना सो नामनिक्षेप है, उसी प्रकार काष्ठ पाषाणादिके तदाकार अथवा अतदाकार पदार्थमें ये इन्द्र है ऐसा नाम करना सो स्थापना है। जिसमें नाम न किया हो उसमें स्थापना भी नहीं की जा सकती। इसलिये नाम और स्थापना दोनों एकही वस्तु कहलाई इनमें कुछभी विशेपता मालूम नहीं होती ?

समाधान—इस प्रकार है कि- नाममें और स्थापना में बहुत अंतर है-किसीका नाम इन्द्र व जिन रक्खा उसमें जैसा इन्द्र व जिनका आदर होता है वैसा आदर नहीं होता, और न उससे किसी प्रकारके अनुग्रहकी इच्छाही होती है। परंतु जिसकी स्थापना धातु पाषाणादिकमें की जाती है उसको इन्द्र अथवा जिन रूप ही मानकर उसमें अर्चना, नमस्करण आदि रूप आदर सत्कार प्रवृत्ति होती

है। उसमें हमारे उपकार होनेकी भावना रहती है। स्थापनानिक्षेपमें तो साक्षातवे ही हैं ऐसी बुद्धि होनेसे सत्कारादिकी प्रवृति होती है परंतु नामनिक्षेपमें ये बात नहीं होती। जिसका नाम पार्श्वनाथ रख लिया जाता है उसमें पार्श्वनाथ सरीखी भावना न होनेसे उसकी पार्श्वनाथ सरीखी पूजा भक्ति नहीं की जाती, इतना भेद है।

जिसकी स्थापना करनी होय उसकी उसी आकार रूप स्थापना करना सो तदाकार स्थापना है। इसका दूसरा नाम सद्भावस्थापना भी है।

जिसका मूल आकार न होते हुए भी स्थापना की जाय, उसको अतदाकार या असद्भाव रूप स्थापना कहते हैं।

यहां पर ऐसी शंका हो सकती है कि इस पंचम कालमें अतदाकार रूप स्थापना करनी चाहिये या नहीं?

इस शंकाका समाधान इस प्रकार है कि— इस काल में अतदाकार स्थापना नहीं करनी चाहिये— कारण कि हम किसी भी पदार्थ में "यह अर्हंत हैं" ऐसी कल्पनाकर उसकी अर्चना भक्ति आदि करने लग जाँयगे, तो जैसा दूसरे लोग मिट्टी पत्थरमें किसी देवकी कल्पनाकर उसकी पूजा भक्ति करते हैं, वैसेही भोले अज्ञानी जैनीभी चाहे जिस पदार्थमें अर्हंतकी कल्पना कर उसमें पूजादि

रूप प्रवृत्ति करने लग जाँयगे, तो बड़ा अनर्थ खड़ा हो जायगा, तीव्र मिथ्यात्वका बंध होने लग जायगा। क्यों कि जो वस्तु जैसी हो उसकी अन्यथा रूप कल्पना करना ही मिथ्यात्व है। इसलिये इस कालमें अतदाकार स्थापना नहीं करनी चाहिये। अतदाकार स्थापना करनेसे सुमार्ग भ्रष्ट होजाता व धर्म मार्गमें व्यभिचार आजाता है। इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखकर विद्वानोंने इस कालमें तदाकार स्थापना करनेका ही विधान किय है।

यहांपर फिर कोई ऐसी शंका करै कि—अर्हंत प्रतिमा की पूजा क्यों कीजाती है? अर्हंत भगवान तो मोक्ष गये सिद्धालय में विराजमान हैं वे धातु पाषाणकी मूर्तिमें आते नहीं, पूजा भक्ति आदिको चाहते नहीं, किसीका उपकार अपकार करते नहीं, जो कोई उनका अभिषेक व पूजन करते हैं उनमें रागभाव करते नहीं, फिर किसलिये उनकी पूजन की जाती है? उसका समाधान—

गृहस्थ आरंभी होता है उसका मन शुद्ध आत्माके स्वरूपके अवलंबन करनेमें तो लगता नहीं और चित्त निरालंब रहता नहीं, ऐसी हालतमें अपने परमात्मभावके अवलंबन करनेके लिये, वा वीतरागतासे परिणाम जोड़नेके लिये, प्रतिमाको साक्षात अर्हंत रूपही मानकर ध्यान, स्तवन, पूजनादि करता है। उस अर्हंत के स्वरूपमें अपने

परिणाम जोड़नेसे सांसारिक तमाम रागद्वेषोत्पादक संकल्प विकल्प रुक जातेहैं, और परमात्माका अनुभव होने लगता है। वीतरागभावके प्रसादसे असाता वेदनीय आदि संपूर्ण अप्रशस्त प्रकृतियां जो पहिले बांधी थी और इस समय सत्तामें मौजूद हैं उनका रस नष्ट होजाता है, और पुण्य प्रकृतियोंमें रस बढ़ जाता है। मंद कषायके प्रभावसे शुभायु कर्मके बिना संपूर्ण कर्म प्रकृतियोंकी स्थिति घट जाती है। इसलिये गृहस्थोंको अर्हत प्रतिमाका पूजन स्तवन करनाही चाहिये।

द्रव्यनिक्षेप—

अनागत परिणामके प्रति सन्मुखपना अर्थात् आगामी किसी अन्य रूप होनेकी योग्यता रखनेवाले पदार्थको वर्तमानमें उसी रूप कहना सो द्रव्यनिक्षेप है। जैस इन्द्र बनानेके लिये अथवा अर्हतकी मूर्ति बनानेके लिये लाये गये पाषाणको, इन्द्र अथवा जिनेन्द्रकी प्रतिमाकी पर्याय प्रति सन्मुखपना है इसलिये उस पाषाणको इन्द्र अथवा जिनेन्द्र कहना तथा मनुष्य पर्यायके सन्मुख जीवको द्रव्य मनुष्यजीव कहना, वा सम्यग्दर्शनादि परिणति प्रति जो सन्मुख हुआ हो, उसको द्रव्यसम्यग्दर्शन कहना, सो द्रव्यनिक्षेप है। द्रव्यनिक्षेपके दो भेद हैं— (१) आगमद्रव्यनिक्षेप (२) नो-आगमद्रव्यनिक्षेप।

कोई मनुष्य जिसका निक्षेप करना हो, उस वस्तुके कथनके आगम (शास्त्र) का जाननेवाला हो, परंतु जिस समय उस शास्त्रका चिंतवनादिमें उपयोग रहित हो, उस समय उसको आगमद्रव्यनिक्षेप कहते हैं। जैसे कोई मनुष्य सम्यग्दर्शन व सामायिकके कथन व जीवादितत्वोंके कथनके शास्त्रका जानकार है, परंतु जिस कालमें उस कथनके शास्त्रके चिंतवनादि व्यापारसे रहित हो, अन्य व्यवहारमें लग रहा हो उस कालमें उस मनुष्यको आगम द्रव्यसम्यग्दर्शनादि द्रव्यनिक्षेपरूप कहना सो आगमद्रव्य-निक्षेप है।

नोआगमद्रव्यनिक्षेप तीन प्रकार है (१) ज्ञायकशरीर (२) भावी (३) तद्व्यतिरिक्त। इनमें ज्ञायकशरीर तीन प्रकार है-भूत, भावी, वर्तमान। उनमेंसे किसी ज्ञाताका शरीर पूर्व पर्यायमें था उसको छोड़कर आया सो भूतज्ञायकशरीर है।

जिस शरीरसे सम्यग्दर्शनादि व जीवादि व सामायिकादिके आगमको जानता है वह वर्तमानज्ञायकशरीर है।

जिस शरीरको आगे धारण करेगा सो भावीज्ञायक-शरीर है।

भूतज्ञायकशरीर के भी ३ भेद हैं (१) च्युत (२) च्यावित (३) त्यक्त।

जो शरीर अपनी आयु के अंत होने पर अपने परि-

पाकसे छूटता है उसको च्युत कहते हैं।

जो कदली (केले के थंभ) के घात की तरह विषभक्षण व ताडन, मारण, त्रासनादिक वेदना द्वारा तथा शरीरसे खूनके निकालनेसे, तथा भयसे, विपशस्त्रादि से, संक्लेश होनेसे, श्वासके[1] रोध होजानेसे, आहारके रोक देनेसे आयुकर्मके निषेकोंके इकट्ठे छूटनेसे जो मरण हो जाता है उसको च्यावित कहते हैं।

जो सन्यास धारणकर, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप आराधनाओंकी आराधनाकर त्याग व्रत संयम द्वारा

नोट १— अधिक दौड़ने से जो अधिक श्वास चलती है उससे काय की क्रिया वमनके होनेसे संक्लेश रूप परिणाम होता है। उससे अधिक श्वासका चलना अकाल मरणका निमित्तकारण है। इस एक दृष्टांत को देखकर अज्ञानी लोग एकांतसे श्वासके ऊपर आयुके कमती बढ़ती होनेका अनुमान कर उसीको मरणका कारण श्रद्धान कर लेते हैं। उनके भ्रमको दूर करनेके लिये अन्य कारण गिनाये हैं। यदि एक परही निर्भर रहा जाय तो शस्त्रके लगते ही श्वास तो अधिक नहीं चलते फिर मरण क्यो हो जाता है।

कई लोग ऐसा मानते हैं कि समाधि लगानेसे श्वास कम चलते है उससे आयु बढ़ जाती है सो ऐसा मानना भी भ्रमही है क्योंकि भुज्यमान आयु कभी बढ़ती नहीं है।

शरीरका त्यागना सो त्यक्त कहलाता है।

ज्ञायक शरीर संबंधी त्यक्त शरीरके विषयमें कुछ विशेष वर्णन—

त्यक्त शरीर तीन प्रकारका होता है (१) भक्तप्रतिज्ञा (२) इंगिनी और (३) प्रायोग्यविधि। उनमें भक्तप्रतिज्ञा जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारकी है। भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजनकी प्रतिज्ञाकर जो सन्यासमरण हो उसके कालका जघन्य प्रमाण (कम से कम) अंतर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट (ज्यादा से ज्यादा) बारह वर्ष प्रमाण है। तथा मध्यके भेदोंका काल एक २ समय बढ़ता हुआ अंतर्मुहूर्तसे लेकर २ वर्षके बीचके जितने भेद हैं उस प्रमाण जानना चाहिये।

इंगिनी और प्रायोपगमन मरणका स्वरूप-गोमटसार कर्मकांडमें—

अप्पो वयारवेक्खं परोवयारूणमिंगिणी मरणं।
सपरोवयारहीणं मरणं पाओवगमणमिदि॥

अर्थात्—अपने शरीरकी टहल आप ही अपने अंगों से करे किसी दूसरेसे रोगादिका उपचार न करावे ऐसे विधानसे जो सन्यास धारणकर मरणकरना उस मरणको इंगिनी मरण सन्यास कहते हैं।

जिसमें अपना तथा दूसरेका भी उपचार (सेवा) न होवे अर्थात् अपनी टहल न तो आप करे और न दूसरोंसे करावे ऐसे सन्यासमरणको प्रायोपगमन मरण कहते हैं।

इस प्रकार ज्ञायकशरीरका लक्षण कहा।

अब नोआगमके दूसरे भेद भावीको कहते हैंः—
सम्यग्दर्शनादिके आगमका जानने वाला शरीर आगे होवेगा सो भाविनोआगम द्रव्य निक्षेप है।

तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य निक्षेपके दो भेद होते हैं (१) कर्मतद्व्यातिरिक्त (२) नोकर्मतद्व्यतिरिक्त।

उनमें सम्यग्दर्शनके ऊपर, सामायिकके ऊपर अथवा कर्मके ऊपर लगाया जाय तो दर्शनमोहका उपशम क्षय क्षयोपशमरूप जो दर्शनमोहके द्रव्यरूप नोकर्मवर्गणा सो नोआगम द्रव्यसम्यग्दर्शनका कर्म नाम भेद हैं।

एवं चारित्रमोहका मंद अनुभाग रूप द्रव्यकर्म सो सामायिकका कर्मनाम भेद हैं। तथा ज्ञानावरणादि मूल प्रकृतिरूप व उनके भेद मतिज्ञानावरणादि उत्तर प्रकृति स्वरूप परिणमता हुआ जो कार्माणवर्गणा रूप पुद्गलद्रव्य, वह कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य कर्म नियमसे होता है, ऐसा जानना चाहिये।

सम्यग्दर्शनादिके होनेके बाह्य उपदेशादिक तथा

समता होनेके कारण बाह्य द्रव्य ही तद्व्यतिरिक्तका नोकर्म नाम भेद है। इस प्रकार द्रव्यनिक्षेपका वर्णन किया।

भावनिक्षेप—

भावनिक्षेपके दो भेद होते हैं (१) आगमभावनिक्षेप (२) नोआगमभावनिक्षेप।

जिस वस्तुका निक्षेप करना हो उसके कथनके शास्त्र को जाननेवाले पुरुषका उपयोग जिस समय उसमें लग रहा हो उस समय उस पुरुषको आगमभावनिक्षेप कहते हैं।

जिस वस्तुका निक्षेप करना हो वह वस्तु उस पर्याय रूप उस कालमें वर्तमान होय तो नोआगमभावनिक्षेप है। इस प्रकार चार निक्षेप कहे गये हैं। यहां प्रयोजन ऐसा समझना चाहिये, कि लोक व्यवहारमें कोई नामहीको भाव समझ जाय तथा नाम स्थापनाको द्रव्य भाव समझ जाय तो बड़ा अनर्थ या दोष पैदा होजाय. उस दोषको दूरकर यथार्थ समझानेके लिये यह निक्षेपविधि कही गई है।

अब कर्मके विशेष भेद— जो मूल प्रकृति तथा उत्तर प्रकृतिरूप हैं उनमें नामादि चार भेद दिखाते हैं—

कर्मकी मूल प्रकृति ८ तथा उत्तर प्रकृति १४८ इन दोनोंके जो नामादि चार निक्षेप हैं उनका स्वरूप सामान्य-कर्मकी तरह समझना चाहिये। परंतु इतनी विशेषता है

कि-जिस प्रकृतिका जो नामादि हो उसी अपने नाम आदिकी अपेक्षासे नाम, स्थापना, द्रव्य और भावनिक्षेप होते हैं ऐसा जानना चाहिये। अब कुछ और भी विशेपता बतलाते हैं—

मूलप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतियोंके नामादिक चार भेदोंका स्वरूप समझना किसी अपेक्षा सरल है परंतु द्रव्य तथा भावनिक्षेपके भेदोंमे से नोकर्म तथा नोआगम भाव-कर्मका स्वरूप समझना कठिन है।

अब उन दोनों नोकर्म और नोआगमभावकर्मको मूल व उत्तर दोनों प्रकृतियोंमें घटित करते हुए पहिले नोकर्मको मूल प्रकृतियोंमें जोड़ते हैं-

द्रव्यनिक्षेपकर्मका जो एक भेद 'नोकर्मतद्व्यतिरिक्त' नोआगमभावकर्म है उसीको यहां नोकर्म शब्दसे समझना चाहिये। और जिस प्रकृतिके फल देनेमें जो निमित्त कारण अथवा सहायक हो वही उस प्रकृतिका नोकर्म जानना चाहिये, इसी अभिप्रायको लेकर कहते हैं-

ज्ञानावरणादि ८ मूल प्रकृतियोंके नोकर्म द्रव्यकर्म क्रमसे वस्तुके चारों तरफ लगा हुआ कनातका कपड़ा १ द्वारपाल २ शहत लपेटी तलवारकी धार ३ शराव ४ अन्नादि आहार ५ शरीर ६ ऊंचा नीचा कुल ७ भंडारी ८ ये आठ जानना।

वस्त्र आदि वस्तुको ढकनेवाले, मतिज्ञानावरणके नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। और इन्द्रियोंके रूपादि विषय श्रुतज्ञान (शास्त्रज्ञान व एक पदार्थसे दूसरे पदार्थका ज्ञान) को नहीं होने देते इस कारण श्रुतज्ञानावरणकर्मके नोकर्म हैं- अर्थात् जो विषयोंमें मग्न रहता है उसे शास्त्रके विचार करनेमें रुचि नहीं रहती, इसलिये (शास्त्रज्ञान अथवा अपने आत्माके स्वरूपका विचार करनेमें बाधा करनेवाले होनेसे) इन्द्रियके विषयोंको नोकर्म कहा है।

अवधिज्ञानावरण तथा मनःपर्ययज्ञानावरणके नोकर्म-

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन दोनोंके घात करनेका निमित्त कारण जो खेदरूप परिणाम उसको करने वाली जो कोई बाह्य वस्तु वह अवधिज्ञानावरण तथा मनःपर्ययज्ञानावरणका नोकर्म है। तथा केवलज्ञानावरण का नोकर्म द्रव्यकर्म कोई चीज नहीं है। क्योंकि केवल ज्ञान अपने प्रतिपक्षी कर्मके क्षयसे होता है इसलिये केवलज्ञानके घात करनेवाले क्लेश रूप परिणामोंको कोईभी वस्तु उत्पन्न नहीं कर सकती।

अब दर्शनावरणके नोकर्मके भेद बतलाते हैं—

पांच निद्राओंका नोकर्म भैंसका दही, लहसुन, खली इत्यादिक निद्राकी अधिकता करनेवाली वस्तुए हैं। तथा-

चक्षु तथा अचक्षुदर्शनके रोकनेवाले वस्त्र वगैरह द्रव्य

चक्षुदर्शनावरण तथा अचक्षुदर्शनावरणकर्मके नोकर्म द्रव्य कर्म हैं।

अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरणकर्मके नोकर्म अवधिज्ञानावरण तथा केवलज्ञानावरणका जो नोकर्म कहा गया है वही जानना। और सातावेदनीय तथा असातावेदनीयका नोकर्म अपनेको अच्छी लगनेवाली खाने पीने की सामग्री तथा अपनेको नहीं रुचनेवाली ऐसी चीज क्रमसे जानना।

अब मोहनीयकर्मके भेदोंके नोकर्म दिखाते हैं—

छहप्रकारके आयतन (जिनसे धर्म होता हो) अर्थात् १ जिन प्रतिमा, जिन मंदिर २ जिनागम ३ जिनागमके धारण करने वाले ४ तप ५ तपके धारक ये ६ सम्यक्त्व प्रकृतिके नोकर्म हैं।

और ६ अनायतन अर्थात्-कुदेव १ कुदेवका मंदिर २ कुशास्त्र ३ कुशास्त्रके धारक ४ खोटी तपस्या ५ खोटी तपस्याके करने वाले ६ ये मिथ्यात्व प्रकृतिके नोकर्म हैं। उसी प्रकार—

आयतन और अनायतन दोनों मिले हुए सम्यङ्-मिथ्यात्व दर्शनमोहनीयके नोकर्म हैं। अनंतानुबंधी कषाय के नोकर्म मिथ्याआयतन अर्थात् कुदेवादिकछह अनायतन हैं और बाकी बची हुई बारह प्रकृतियोंके नोकर्म देशचारित्र

सकलचारित्र और यथाख्यात चारित्रके घातने वाले-काव्य शास्त्र, नाटक, कोकशास्त्र वगैरह और जार (कुशीली) पुरुषोंकी सहायता इत्यादिक नियमसे होते हैं। इन काव्यादिक के पढ़नेसे मनमें विकार भाव पैदा होते हैं और उससे चारित्रभाव नष्ट हो जाता है।

स्त्रीवेदका नोकर्म स्त्रीका शरीर ही होता है।

पुरुषवेदका नोकर्म पुरुषका शरीर होता है। और

नपुंसक वेदका नोकर्म द्रव्यकर्म, उन दोनोंका कुछ २ चिन्ह रूप नपुंसकका शरीर होता है।

हास्य कर्मके नोकर्म विदूषक, भांड, बहूरूपिया आदिक जो हँसी ठट्ठा करने वाले हैं वे हैं।

रतिकर्मका नोकर्म-अच्छा गुणी पुत्र है क्योंकि गुणी पुत्र पर बहुत प्रेम होता है।

अरतिकर्मका नोकर्मद्रव्य प्रिय वस्तुका वियोग होना और अप्रिय वस्तुका संयोग होना है।

शोकका नोकर्मद्रव्य-स्त्री पुत्र मा बाप आदिका मरण है।

भयकर्मका नोकर्मद्रव्य-भयको पैदा करने वाले सिंह व्याघ्रादिक हैं।

जुगुप्सा कर्मका नोकर्मद्रव्य निंदित वस्तु है। क्योंकि

निंदित वस्तुसे ग्लानि आती है।

आयुकर्म और नामकर्मके भेदोंके नोकर्मद्रव्य—

अनिष्ट आहार अर्थात् नरककी विषरूप मिट्टी आदि नरकायुका नोकर्म द्रव्य है।

तिर्यंच आदि तीन आयुका नोकर्मद्रव्य इन्द्रियोंको प्यारा लगने वाला अन्न पानी वगैरह है।

गति नामकर्मका नोकर्मद्रव्य चारों गतियोंका क्षेत्र है।

नरकादि चारों गतियोंका नोकर्म द्रव्य नियमसे नरकादि गतियोंका अपना अपना क्षेत्र ही है।

जातिकर्मका नोकर्मद्रव्य द्रव्येन्द्रियकी रचना रूप पुद्गलकर्म है।

एकेन्द्रियादिक पांच जातियोंका नोकर्मद्रव्य अपनी २ द्रव्येन्द्रियां हैं।

शरीर नामकर्मका नोकर्म द्रव्य अपने २ उदयसे उत्पन्न हुए शरीरके स्कंध रूप पुद्गल जानना चाहिये।

औदारिक-वैक्रियिक-आहारक और तैजस नामकर्मका नोकर्म द्रव्य अपने २ उदयसे प्राप्त हुई शरीर वर्गणा हैं। क्योंकि उन वर्गणाओंसे ही शरीर बनता है।

कार्माणशरीरका नोकर्म द्रव्य विस्रसोपचय (स्वभाव से कर्मरूप होने योग्य उम्मीदवार) परमाणु हैं।

शरीरबंधन नामकर्मसे लेकर जो पुद्गलविपाकी प्रकृति और पहिले कही हुई प्रकृतियोंसे बाकी बची हुई जीव-विपाकी प्रकृतियां हैं उन सबका नोकर्म द्रव्य शरीरही है। क्योंकि उन प्रकृतियोंसे उत्पन्न हुए सुखादिरूप कार्यका कारण शरीर है। परंतु क्षेत्रविपाकी चार आनुपूर्वी प्रकृतियोंका नोकर्म द्रव्य अपना २ क्षेत्रही है। इतनी विशेष बात जाननी।

स्थिर कर्मका नोकर्म अपने २ ठिकाने स्थिर रहने वाला खून वगैरह है। और—

अस्थिर प्रकृतिके उदयसे अपने २ ठिकानेसे चलायमान रस लोही आदिक अस्थिर प्रकृतिके नोकर्म हैं।

शुभ प्रकृतिके नोकर्म द्रव्य शुभ शरीरके अवयव हैं।

अशुभ प्रकृतिके नोकर्म द्रव्य शरीरके अशुभ (न देखने लायक) अवयव हैं।

सुस्वर नामकर्मके नोकर्म द्रव्य अच्छे स्वर रूप परिणमें पुद्गल परमाणु हैं।

दुःस्वर नामकर्मके नोकर्म द्रव्य खोटे स्वर रूप परिणमें पुद्गल परमाणु हैं।

अब गोत्रकर्म तथा अंतरायकर्मके भेदोंके नोकर्म दिखाते हैं—

उच्च गोत्रका नोकर्म द्रव्य लोक प्रतिष्ठित वंशमें उत्पन्न हुआ शरीर है।

नीच गोत्रका नीच कुल (लोक निंदित कुल) में प्राप्त हुआ शरीर नोकर्म है।

दान, लाभ, भोग और उपभोगान्तराय कर्मका नोकर्म द्रव्य दानादिकमें विघ्न करनेवाले पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री वगैरह जानना।

वीर्यान्तराय कर्मका नोकर्म रूखा आहार पान वगैरह बलके नाश करनेवाले पदार्थ हैं। इस प्रकार उत्तर प्रकृतियोंके नोकर्म द्रव्यकर्म कहे गये हैं।

अब नोआगमभावकर्मको कहते हैं—

णोआगमभावो पुण सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो
पोग्गलविवाइयाणं णत्थि खु णोआगमो भावो ॥

जिस २ कर्मका जो २ फल है उस अपने अपने फल को भोगता हुवा जीव उस २ कर्मका नोआगमभावकर्म जानना। और पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंका नोआगमभावकर्म नहीं है। क्योंकि जीवविपाकी प्रकृतियोंकी सहायता विना साताजन्य सुखादिककी उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रकार सामान्यकर्मकी मूल उत्तर दोनों प्रकृतियोंके चार निक्षेप कहे।

अब कर्मके बंध, उदय और सत्ताका वर्णन कहते हैं-

कर्म और आत्माके प्रदेशोंका दूध पानीकी तरह व तिल तैलकी तरह एकमेक होजाना बंध कहलाता है। बंध चार प्रकारका होता है (१) प्रकृतिबंध (२) प्रदेशबंध (३) स्थितिबंध (४) अनुभागबंध। फिर हरएक बंधके ४-४ भेद होते हैं, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य।

मोहादिके उत्पन्न करनेवाले तथा आत्माके ज्ञानादि अनुजीवी गुणोंके घातक भिन्न २ स्वभाववाले कार्माण पुद्गल स्कंधोंका आत्मासे संबंध होनेको प्रकृतिबंध कहतेहैं।

कर्मोंकी आत्माके साथ रहनेकी मियादके पड़नेको स्थितिबंध कहते हैं।

फल देनेकी शक्तिकी हीनाधिकताको अनुभागबंध कहते हैं।

बंधनेवाले कर्मोंकी संख्याके निर्णयको प्रदेशबंध कहते हैं।

प्रकृतिबंधका खुलासा—

प्रकृति माने स्वभाव। जैसे नीम की क्या प्रकृति (स्वभाव) है? कडुआपन। ईखकी क्या प्रकृति है? मधुरपना। आंवले की क्या प्रकाति है? कषायलापन। उसी प्रकार ज्ञानावरणीकी प्रकृति ज्ञानगुणका आच्छा-

दन करना है। दर्शनावरणीकी प्रकृति आत्माके दर्शन गुणको प्रकट न होनेदेना है। वेदनीयकी प्रकृति सुख दुखकी सामग्री भेली कराना है। मोहनीयकी प्रकृति-पर पदार्थोंमें ममत्व बुद्धिका कराना है। आयुकर्मकी प्रकृति जीवको चारों गतियोंमें नियत समय तक रोक रखना है। नाम कर्मकी प्रकृति नाना प्रकारके शरीरोंकी रचना करना है। गोत्रकर्मकी प्रकृति--कुलक्रमागत आच-रणके अनुसार ऊँच नीच कुलमें जन्म कराना है, और अंतरायकर्मकी प्रकृति दानादिक शुभ कार्योंमें विघ्न डालना है।

कर्मोंकी स्थिति दो तरहकी होती है (१) उत्कृष्ट (२) जघन्य।

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय और अंतराय इन चारों कर्मोंकी उत्कृष्ट (ज्यादा से ज्यादा) स्थिति तीस तीस कोडाकोडी सागरकी है। मोहनीय कर्मकी सत्तर कोडाकोडी सागरकी है। नामकर्म और गोत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति २० कोडाकोडी सागरकी है और आयु कर्मकी ३३ सागरकी स्थिति है। अब जघन्य स्थिति बतलाते हैं:—

वेदनीय कर्मकी जघन्य (कमसे कम) स्थिति बारह मुहूर्तकी है।

नाम तथा गोत्रकर्मकी जघन्य स्थिति आठ आठ मुहूर्तकी है।

शेष संपूर्ण कर्मोंकी जघन्य स्थिति अंतमुहूर्त २ की है।

प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध तो मन वचन कायके हलन चलन रूप योगके निमित्तसे होते हैं और स्थितिबंध तथा अनुभागबंध कषायसे होते हैं।

समयका विभाग व उसकी उत्पत्तिका क्रम—

सात उच्छ्वासका १ स्तोक, सात स्तोकका एक लव, ३८॥ लवकी एक घटी, दो घटीका एक मुहूर्त, मुहूर्तके कालमें एक समय घटको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। ढाइ घटीका एक घंटा, ३ घंटेका १ प्रहर, आठ प्रहर या २४ घंटेका एक दिन रात, पन्द्रह दिनरातका एक पक्ष, दो पक्षका एक माह, दो माहकी एक ऋतु, ६ माहका एक अयन, दो अयन व १२ माहका १ वर्ष होता है। इस रूपसे पल्य, सागर आदि समस्त समयका विभाजन जानना चाहिये।

पल्य व सागरका प्रमाण—

दो हजार कोस लंबे चौडे और एक कोस गहरे गोल गड्ढेमें भोगभूमिमें उत्पन्न हुए सप्त दिनके मेंढेके बालोंको ऐसा काटा जाय जिसका दूसरा टुकडा न होसके उन बालोंको उस गड्ढेमें खूब खूंद २ कर ऐसा भरे कि यदि एक भी बालका टुकडा उसमें डाला जाय तो नीचे गिर जाय,

बादमें सौ २ वर्ष बीतने पर एक २ टुकडा निकाला जाय, जितने वर्षोंमें वह गड्ढा बिलकुल खाली हो जाय उतने वर्षोंके जितने समय हों उनको व्यवहार पल्य कहते हैं। इसमें असंख्यातका गुणा करने पर जो लब्धि आवे उसको उद्धार पल्य कहते हैं।

उसमें फिर असंख्यातका गुणा करनेसे जो संख्या उत्पन्न हो उसको अद्धापल्य कहते हैं।

दश कोडाकोडी अद्धापल्योंका एक सागर होता है।

एक करोडको एक करोडसे गुणा करनेपर जो लब्ध हो उसे कोड़ाकोडी कहते हैं।

कोडाकोडीके समयोंमें एक समय कम कर दिया जाय उसको अंतःकोडाकोडी सागर काल कहते हैं।

जिस कर्मकी स्थिति अंतःकोडाकोडी सागर हो उस कर्मके उदय आनेकी देरीको आबाधा काल कहते हैं। अर्थात् बांधे हुए कर्म जबतक उदयमें न आवें तबतकके समयको आबाधाकाल कहते हैं। अंतःकोडाकोडी सागर का आबाधाकाल एक अंतर्मुहूर्तका होता है।

पूरे कोड़ाकोड़ी सागरमें उदय आनवाले कर्मोंकी आबाधा १०० वर्षकी होती है।

आयु कर्मकी मर्यादा जबतक भुज्यमान आयु व्यतीत

नहीं हो जाती तबतककी आबाधा होती है। भुज्यमानके त्रिभागमें आगे भवकी आयु बंधती है। वह जब तक उदयमें नहीं आती तबतककी आबाधा मानी जाती है।

नाम और गोत्र कर्मकी आबाधा २००० वर्षकी होती है।

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय और अंतराय इन चारों कर्मोंकी आबाधा ३००० वर्षकी होती है।

चारित्र मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ४० कोड़ा-कोड़ी सागरकी होती है और उसका आबाधाकाल ४००० वर्षका होता है।

दर्शन मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ७० कोड़ा-कोड़ी सागरकी होती है। और उसकी आबाधा ७००० वर्ष की सिद्धांतमें कही गई है।

आयु कर्मकी विशेषता नीचे लिखे अनुसार है—

आयु कर्म दो प्रकारका होता है, एकतो भुज्यमान आयु-जिसके निमित्तसे यह जीव वर्तमान समयमें जिंदा कहा जाता है। दूसरी बध्यमान आयु, जो भुज्यमान आयुके पूर्ण होनेपर उदयमें आती है। सो वर्तमान पर्यायको छोड़कर जब यह जीव नवीन शरीर प्राप्त करनेके लिये दूसरी गतिमें जाता है तब बध्यमान आयु भुज्यमान हो जाती है। उसका क्रम इस प्रकार है—

समझिये किसी मनुष्यकी भुज्यमान आयु ७२९ वर्षकी हो, उस पुरुषकी आगे भवकी आयु बंधनेवाली होवे तो इस ७२९ वर्षकी स्थितिके आठ त्रिभाग होनेसे उन त्रिभागोंमें इस जीवके जैसे परिणाम योग, कषाय, लेश्यादिरूप होंगे उसी तरहकी आयुका बंध होगा। उससे विपरीत नहीं। उन आयु बंधने योग्य अपकर्षणोंका क्रम इस रूपसे रहेगा कि- प्रथम अपकर्षण जो पहिले ७२९ वर्षकी स्थिति बांधीथी उसके ३ हिस्से बराबर २ किये जाँय तो प्रत्येक हिस्सा २४३ वर्षका होगा, सो दो हिस्से अर्थात् ४८६ वर्ष बीत जानेपर तीसरे हिस्सेके शुरुआतमें यदि आगे भवकी आयु का बंध नहीं हुआ, तो फिर दूसरा अपकर्षण इसी प्रकार का होगा अर्थात् जो अब आयु २४३ वर्षकी बाकी रही है, उसकेभी बराबर २ तीन हिस्से होंगे, प्रत्येक हिस्सा ८१ वर्षका होगा, यहां परभी १६२ वर्ष बीत जाने पर दूसरे अपकर्षणमें यदि बंध होगया तो होगया, नहीं तो फिर तीसरा अपकर्षण होगा, उस ८१ वर्षके फिर तीन हिस्से होंगे, प्रत्येक हिस्सा २७ वर्षका होगा, इसमेंभी ५४ वर्ष बीत जाने बाद बाकी २७ वर्षके शुरुआतमें यदि परभवकी आयुका बंध होगया तो होगया, अन्यथा फिर चौथा अपकर्षण होगा, उसमेंभी १८ वर्ष बीत चुकने बाद बाकी ९ वर्षके शुरुआतमें निमित्तके अनुसार परभवकी आयुका बंध होगया तो ठीक, नहींतो फिर ५वां अपकर्षण

होगा, उसमेंभी ६ वर्ष वीत चुकने वाद वकाया ३ वर्षके शुरुआतमें यदि वंध होगया तो होगया, नहींतो फिर छट्ठा अपकर्षण होगा, उसमेंभी २ वर्ष वीत चुकने वाद वकाया १ वर्षके शुरुआतमें यदि परभवकी आयुका वंध होगया तो होगया, नहींतो फिर ७वां अपकर्षण होगा, उसमें ८ माह वीत चुकने वाद शेष ४ माहके शुरुआतमें परभवकी आयुका वंध निमित्तानुसार होगया तो ठीक है, नहीं तो फिर आठवां अपकर्षण होगा, उसमेंभी ८० दिन वीत चुकने वाद शेष ४० दिनके शुरुमें यदि आयुका वंध होगया तो ठीक, नहींतो फिर आयु पूर्ण होनेके अन्त-र्मुहूर्त पहिले तो परभवकी आयुका, वंध होगाही होगा। किसी जीवको ऊपर वतलाए हुए आठ अपकर्षोंमेंसे किसी भी अपकर्षमें परभवकी आयुका वंध हो ही जाता है। यदि ऐसा मौका नहीं आया, तो अंत समयके अन्तर मुहूर्त पहिले आयु वंध हो ही जाता है। उनकी ऐसी व्यवस्था होती है, कि जिन पुरुषोंके अंत समयमें आयु वंधनेवाली होती है, वे जीव मरण समयसे पहिले थोड़ी देर तक मूर्च्छारूप दशामें हो जाते हैं। क्योंकि अंत समयमें आयु बांधने वाले जीवोंको आगे जिस क्षेत्रमें जन्म लेना होता है उन प्रदेशोंका जाकर स्पर्श करना पड़ता है। स्पर्शकर आनेके वाद आत्माके प्रदेश शरीरमें समा जाते है। जिसके वाद

मरण होकर कार्माण शरीरकी सहायतासे जीव उस क्षेत्र में जाकर जन्म ले लेता है। जब यह जीव उस क्षेत्रके प्रदेशोंको स्पर्श करने जाता है, तब मूर्च्छा रूप हो जाता है। और उसी समय लोग समझ जाते हैं कि ये मर गया, जब स्पर्शकर वापिस आने पर कुछ सचेतसा दिखता है, तब फिर कहने लगते हैं, ये फिरसे जिन्दा हो गया, लेकिन वास्तवमें देखा जाय, तो न तो वह जीव मरा था और न जिंदा हुआ है। केवल उन प्रदेशोंको स्पर्श करने गया था जहां पैदा होना है, और स्पर्श करके वापिस आ गया, ऐसा भाव जानना चाहिये।

अथ दश प्रकारके करण बतलाते हैं:—

वंधुक्कट्टकरणं संकममोकट्टुदीरणा सत्तं

उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी॥ ४३७ कर्मकांडे।

वंध १ उत्कर्पण २ संक्रमण ३ अपकर्पण ४ उदीरणा ५ सत्व ६ उदय ७ उपशांत ८ निधत्ति ९ निकाचना १० ये दश करण (अवस्था) हर एक प्रकृतिके होते हैं।

मिथ्यात्वादि परिणामोंसे जो पुद्गल द्रव्यका ज्ञानावरणादि रूप होकर परिणमन करनेसे ज्ञानादिको आवरण (ढाकना) करना सो वंध है।

कर्मोंकी स्थिति तथा अनुभागका बढ़ना सो उत्कर्षण है।

बंध रूप प्रकृतिका सजातीय दूसरी प्रकृति रूप परिणम जाना सो संक्रमण है।

कर्मकी स्थिति तथा अनुभागका घट जाना सो अपकर्षण है।

उदयकालके बाहर स्थित अर्थात् जिसके उदयका अभी समय नहीं आया ऐसा जो कर्म द्रव्य उसको अपकर्षणके बलसे उदयावली कालमें प्राप्त करना (लाना) उसको उदीरणा कहते हैं।

कर्म पुद्गलका कर्म रूप ही रहना उसको सत्व कहते हैं।

कर्मका अपनी स्थितिको प्राप्त होना अर्थात् फल देनेका समय प्राप्त हो जाना सो उदय है, ऐसा श्रीजिनेन्द्र देवने कहा है।

जो कर्म उदयावलीमें प्राप्त नहीं किया जाय अर्थात् उदीरणा अवस्थाको प्राप्त न हो सके वह उपशांत करण है।

कर्म उदयावलीमें भी प्राप्त न हो सके और संक्रमण अवस्थाको भी प्राप्त न हो सके, उसे निधत्ति कहते हैं।

जिस कर्मकी उदीरणा, संक्रमण उत्कर्षण और अपकर्षण ये चारों ही अवस्थाएं न हो सकें उसे निकाचित करण कहते हैं।

ये करण कौनसे गुणस्थान तक होते हैं? सो बताते हैं—

नरकादि चारों आयुकर्मोंके संक्रमण करणके विना शेपके ९ करण होते हैं। शेष बचीं हुई संपूर्ण प्रकृतियोंके दशों ही करण होते हैं। तथा मिथ्यादृष्टिसे लेकर ८ वें अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यंत १० करण होते हैं।

अपूर्वकरण गुणस्थानके ऊपर १० वें सूक्ष्मकषाय गुणस्थान पर्यंत आदिके ७ ही करण होते हैं। उससे आगे सयोग केवली तक संक्रमण करणके विना ६ ही करण होते हैं। उसके वाद सयोगकेवलीके सत्व और उदय ये दो ही करण पाये जाते हैं। विशेष बात ये है कि उपशांतकषाय गुणस्थानमें मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय-का संक्रमणकरण भी होता है अर्थात् इन दोनोंके कर्म परमाणू सम्यक्त्वमोहनीय रूप परिणम जाते हैं, तथा शेष प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता, ६ ही करण होते हैं।

संक्रमण-सजातीय एक रूपसे दूसरे रूप हो जानेको संक्रमण कहते हैं। जैसे ज्ञानावरणकी मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण रूप हो जावे। मूल प्रकृतियोंका तो कभी

संक्रमण होता नहीं। आयु कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें भी परस्पर संक्रमण नहीं होता, क्योंकि कर्मकांडके गाथा नं. ४०३ में यही भाव बतलाया है कि संक्रमण सजातीय प्रकृतियोंमें ही होता है।

इस ही प्रकार धवल सिद्धांत भाग ९ पुस्तक नं ६ में जो चूलिका नामा अधिकार है वह भी बतलाता है कि नीचगोत्रके जो परमाणु हैं वह उच्चगोत्र रूप परिणम जाते हैं। और भी गोमटसार ग्रंथ कहता है कि—असाता वेदनीय साता रूप परिणमती है। तथा साता असाता रूप बदल जाती है। श्वेताम्बर संप्रदायमें भी कर्मकाण्डके अनुसार ही कथन किया गया है।

अब गुणस्थानोंके नाम व उनका लक्षण तथा उनमें होने वाले बंध-उदय-सत्वका अवस्थान बतलाते हैं:— गुणस्थान १४ प्रकारके होते हैं। उनके नाम—मिथ्यात्व १ सासादन २ मिश्रगुणस्थान ३ अविरतसम्यग्दृष्टि ४ देशविरत ५ प्रमत्तविरत ६ अप्रमत्तविरत ७ अपूर्वकरण ८ अनिवृत्तिकरण ९ सूक्ष्मसांपराय १० उपशांतमोह ११ क्षीणमोह १२ सयोगकेवली १३ अयोगकेवली १४।

मोह और योगके निमित्तसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप आत्माके गुणोंकी तारतम्य रूप अवस्था विशेषको गुणस्थान कहते हैं। जैसे किसी जीव-

के दर्शनमोहनीय कर्मकी मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व) रूप परिणाम हुए तो उस जीवको मिथ्यादृष्टि और उन परिणामोंको मिथ्यात्व गुणस्थान कहेंगे।

मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे तत्वार्थके विपरीतश्रद्धानको मिथ्यात्व कहते हैं। इस मिथ्यात्वके उदयसे जीव उल्टा विश्वास करने वाला होता है। देवमें कुदेव रूप बुद्धि, धर्ममें अधर्म रूप रुचि, परिग्रहीको अपरिग्रही समझना इत्यादि विपरीत श्रद्धान होता हैं। मेरा धन, मेरा घर, मेरी स्त्री, मेरे पुत्र इत्यादि रूप पर पदार्थोंमें ममत्व बुद्धि करने लगना, मैं जिवाऊं, मैं मारूं, मैं सुखी, मैं दुखी, तनकी उत्पत्तिको अपनी उत्पत्ति और उसके नाशको अपना नाश मानना, जो रागादिभाव साफ २ दुख देने वाले हैं उनका सेवन करना, पुण्यको अच्छा मानना, पापको बुरा मानना, सामर्थ्य होते हुए भी चारित्र पालनेमें अपनी अशक्ति बतलाना इत्यादि रूप मिथ्यात्वकी परिणति जाननी चाहिये। मिथ्यात्वके विपरीत, एकान्त, विनय, संशय और अज्ञान ऐसे पांच भेद होते हैं, जिनका कि लक्षण ऊपर बतलाया जा चुका है। मिथ्यात्व के उदयसे ही जीव अनादि कालसे भ्रमण करता आया है और अनंतकाल तक भ्रमण करेगा। तीन लोकमें जीवका वैरी मिथ्यात्व ही है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अंतर्मुहूर्त मात्र कालमेंसे जब कमसे कम एक समय और ज्यादासे ज्यादा छह आवली (असंख्यात समयकी एक आवली होती हैं) प्रमाण काल शेष रहता है। उस समय अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभमेंसे किसी एक प्रकृतिके उदयसे सम्यक्त्वकी विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुणकी अव्यक्त अतत्त्व श्रद्धानरूप परिणति होती है, उसको सासादन गुणस्थान कहते हैं।

सम्यक्त्वरूपी पर्वतकी शिखरसे गिरकर जो जीव मिथ्यात्व रूपी भूमिके सन्मुख हो चुका है, इसलिये जिसने सम्यक्त्वकी विराधना करली है और मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं हुवा है उसको सासादन गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

जिसका प्रतिपक्षी आत्माके गुणको सर्वथा घातनेका कार्य दूसरी सर्वघाति प्रकृतियोंसे विलक्षण जातिका है उस जात्यंतर सर्वघाति सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे केवल सम्यक्त्व रूप या मिथ्यात्व परिणाम न होकर जो मिले हुए दही गुणके समान परिणाम होते हैं जिनको न तो सम्यक्त्व रूप ही कह सकते हैं और न मिथ्यात्व रूप ही कह सकते हैं उन्हें सम्यङ्मिथ्यात्व रूप तीसरा गुण-स्थान कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीव न तो सकल संयम को और न देश संयमको ही धारण कर सकता है, और

न इस गुणस्थानमें आयुकर्मका बंध होता है। इस गुण-स्थान वाला जीव यदि मरण करे तो नियमसे सम्यक्त्व या मिथ्यात्व रूप परिणामोंको प्राप्त करके ही मरण करता है। इस गुणस्थानमें मरण नहीं करता। तृतीय गुण-स्थानवर्ती जीवने तृतीयगुणस्थानको प्राप्त करनेके पाहिले सम्यक्त्व या मिथ्यात्व रूपके परिणामोंमेंसे जिस जातिके परिणाम कालमें आयुकर्मका बंध किया हो उसी तरहके परिणामोंके होने पर उसका मरण होता है, किंतु मिश्र-गुणस्थानमें मरण नहीं होता। और न इस गुणस्थानमें मारणान्तिक समुद्धात ही होता है। किसी २ आचार्यके मतसे इस गुणस्थानमें भी मरण होता है।

दर्शनमोहनीयकी तीन और चारित्रमोहनीयके अनंतानुबंधीकी चार इन सात प्रकृतियोंके उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमसे और अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभके उदयसे व्रत रहित सम्यक्त्वधारी चौथे गुणस्थान-वर्ती होता है। सम्यक्त्व तीन तरहका होता है। (१) उपशमसम्यक्त्व (२) क्षायोपशमिकसम्यक्त्व और (३) क्षायिकसम्यक्त्व।

ऊपर कही हुई सात प्रकृतियोंके उपशमसे जो सम्यक्त्व हो उसको उपशमसम्यक्त्व कहते हैं। उपशम-सम्यक्त्व दो तरहका होता है। (१) प्रथमोपशमसम्यक्त्व (२) द्वितीयोपशमसम्यक्त्व।

अनादि मिथ्यादृष्टिके पांच (मिथ्यात्व १ और अनंतानुवंधीकी ४) और सादि मिथ्यादृष्टिके सात प्रकृतियोंके उपशमसे जो सम्यक्त्व हो उसको प्रथमोपशम-सम्यक्त्व कहते हैं।

सातवें गुणस्थानमें क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव श्रेणी चढ़नेके सम्मुख अवस्थामें अनंतानुवंधी चतुष्टयका विसंयोजन (अप्रत्याख्यानादिरूप) करके दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका उपशम करके जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसको द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

सम्यक्त्वको विपरीत करने वाली प्रकृतियोंमेंसे देश-घाति सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय होनेपर तथा अनंतानुवंधी चतुष्क और मिथ्यात्व, मिश्र इन सर्वघातिप्रकृतियोंके आगामी निषेकोंका सदवस्था रूप उपशम और वर्तमान निषेकोंकी बिना फल दिये ही निर्जरा होनेपर जो आत्मा के परिणाम होते हैं उनको वेदक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। वे परिणाम चल, मलिन या अगाढ़ होते हुए भी जघन्य अन्तर्मुहूर्तसे लेकर उत्कृष्ट ६६ सागर पर्यंत कर्मोंकी निर्जरा होनेको कारण हैं।

जिस प्रकार एकही जल अनेक लहरोंमें परिणत होता है। उसी प्रकार जो सम्यग्दर्शन संपूर्ण तीर्थंकर व अर्हंतोंमें समान अनंत शक्तिके होनेपरभी श्री शांतिनाथजी

शांतिके लिये और श्री पार्श्वनाथजी रक्षाके लिये समर्थ हैं इस तरह नाना विषयोंमें चलायमान होना है उसको चलसम्यग्दर्शन कहते हैं।

जिस प्रकार शुद्ध स्वर्णभी मलके संबंधसे मलिन कहा जाता है उसी तरह सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे जिसमें पूर्ण निर्मलता नहीं है उसको मलिन सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जिस प्रकार वृद्ध पुरुषके हाथमें ठहरी हुई लाठी कांपती, है उसी तरह जिस सम्यग्दर्शनके होते हुएभी अपने वनवाये हुए मंदिरादिमें "यह मेरा मंदिर है" और दूसरेके वनवाये हुए मंदिरादिमें "ये दूसरेके हैं" ऐसा कहना अगाढ़ सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दृष्टि जीव आचार्योंके द्वारा उपदेश किये गये प्रवचनका श्रद्धान करता है, किंतु अज्ञानतावश गुरूके उपदेशसे विपरीत अर्थकाभी श्रद्धान कर लेता है, अर्थात् 'अर्हतदेवका ऐसाही उपदेश है' ऐसा समझकर यदि कोई पदार्थका विपरीत श्रद्धानभी करता है, तोभी वह सम्यग्दृष्टिही है। क्योंकि उसने अर्हतका उपदेश समझकर उस पदार्थका वैसा श्रद्धान किया है। परंतु गणधरादि कथित सूत्रके आश्रयसे आचार्यादिके द्वारा भले प्रकार समझाये जानेपरभी यदि वह जीव उस पदार्थका उचित श्रद्धान नहीं करता है तो वह जीव उसी कालसे मिथ्या-

दृष्टि हो जाता है। अविरतसम्यग्दृष्टि जीव इन्द्रियोंके विषयोंसे तथा त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसासे विरक्त नहीं है, किंतु जिनेन्द्रदेवके द्वारा कथित प्रवचनका श्रद्धान करता है। संयम दो प्रकारका होता है एक इन्द्रियसंयम, दूसरा प्राणसंयम।

इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होनेको इन्द्रियसंयम कहते हैं।

अपने तथा दूसरोंके प्राणोंकी रक्षा करनेको प्राण-संयम कहते हैं।

चतुर्थ गुण स्थानमें इन दोनों प्रकारके संयमोंमेंसे कोईभी संयम नहीं होता इसीसे इसको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभके उदयसे यद्यपि संयम भाव नहीं होता, तोभी अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभके उपशमसे श्रावकके व्रत रूप देशचारित्र होता है, इसीसे पांचवें गुणस्थानका नाम देश-चारित्र है। पांचवें गुणस्थानसे ऊपरके सब गुणस्थानोंमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शनके साथ २ होनेवाला सम्यग्ज्ञान अवश्य होता है। बिना इनके पांचवें छटवें आदि गुणस्थान नहीं होते हैं।

जो जीव जिनेन्द्रदेवमें अद्वितीय श्रद्धा रखता हुआ त्रस जीवोंकी हिंसासे विरक्त और स्थावर जीवोंकी हिंसा से अविरत होता है, उस जीवको विरताविरत कहते हैं। गृहस्थ श्रावक स्थावर हिंसाका त्यागी नहीं होता तोभी वे प्रयोजन स्थावर जीवोंकी हिंसा नहीं करता।

संज्वलन और नोकपायके तीव्र उदयसे संयमभाव तथा मलजनक प्रमाद ये दोनोंही एक साथ होते हैं। यद्यपि संज्वलन और नोकपायका उदय चारित्र गुणका विरोधी है तोभी प्रत्याख्यानावरण कषायके उपशम होनेसे प्रकट होनेवाले सकल संयमके घातनेमें समर्थ नहीं है। इस कारण उपचारसे संयमका उत्पादक कहा है। इसलिये इस गुणस्थानवर्ती मुनिको प्रमत्तविरत व चित्रलाचरणी मुनि कहते हैं। क्योंकि जो महाव्रती संपूर्ण २८ मूलगुणा और शीलसे युक्त होता हुआभी व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकारके प्रमादोंको करता है उस प्रमत्तसंयतका आचरण चित्रल होता है।

संज्वलन और नोकपायके मंदोदयसे प्रमाद रहित संयमभाव होता है इस कारण सातवें गुणस्थानका नाम अप्रमत्तविरत अथवा इस गुणस्थानवर्ती मुनिको अप्रमत्तविरत कहते हैं।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानके दो भेद होते हैं (१) स्व-

स्थान अप्रमत्तविरत (२) सातिशय अप्रमत्तविरत।

जो हजारों वार छट्ठेसे सातवेंमें और सातवेंसे छट्ठे गुणस्थानमें आवे जाय उसको स्वस्थान अप्रमत्त कहते हैं।

जो अप्रमत्तविरत श्रेणी चढ़नेके संमुख होता है उसे सातिशय अप्रमत्त कहते हैं। श्रेणी चढ़नेका पात्र या तो क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है, या द्वितीयोपशम सम्यक्त्ववाला होता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला तथा क्षायोपशम सम्यक्त्ववाला श्रेणी नहीं चढ़ सकता। प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला प्रथमोपशम सम्यक्त्वको छोड़कर क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होकर पहिले अंनतानुवंधी क्रोध मान माया लोभका विसंयोजन करके दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंका उपशम करके या तो द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि हो जाय अथवा तीनों प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाय तव श्रेणी चढ़नेका पात्र होता है।

जहां चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका क्रमसे उपशम तथा क्षय किया जाय उसको श्रेणी कहते हैं। श्रेणी दो तरहकी होती है (१) उपशमश्रेणी (२) क्षपकश्रेणी।

जिसमें चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका उपशम किया जाय उसको उपशम श्रेणी कहते हैं।

जिसमें चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका क्षय किया जाय उसको क्षपकश्रेणी कहते हैं।

चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंके उपशमावने व क्षपावनेका निमित्त कारण तीन तरहके परिणाम होते हैं (१) अधःकरण (२) अपूर्वकरण और (३) अनिवृत्तिकरण।

जिस करण (परिणाम समूह) में उपरितन समयवर्ती और अधस्तन समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश और विसदृश हों उसको अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। यह अधःप्रवृत्तकरण सातवें गुणस्थानमें होता है। इस अधःप्रवृत्तकरणका काल अंतर्मुहूर्त मात्र है। और उसमें परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं। ये परिणाम ऊपर २ समान रूपसे बढ़ते हैं। चारित्रमोहकी २१ प्रकृतियोंका उपशम या क्षय करनेके लिये ही ये जीव अधःकरणादि तीन करणोंको करता है। अधःकरण तो श्रेणि चढ़नेके संमुख सातवें गुणस्थानमें होता है। अपूर्वकरण आठवें और अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्थानमें होता है। इन करणोंमें परिणामोंकी अनंत गुणी विशुद्धता होती है। जिसके बलसे कर्मोंका उपशम तथा क्षय, स्थितिखंडन तथा अनुभागखंडन होते हैं। यद्यपि इन तीनों करणोंका काल सामान्य रूपसे अंतर्मुहूर्तमात्र है तो भी अधःप्रवृत्तसे अपूर्वकरणका काल संख्यातवें भागमात्र है। अपूर्वकरणसे

अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातवें भाग है। अधःकरणसे विशुद्धिताकी अपेक्षा अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यात लोक गुणित हैं। अनिवृत्तिकरणके परिणामोंकी संख्या उसके कालके समयोंके प्रमाण हैं।

जिस करणमें उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होते जांय अर्थात् भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदा विसदृशही हों और एक समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश भी हों और विसदृशभी हों उसको अपूर्वकरण कहते हैं।

एकह्मि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहावि य परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥

जिस करणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृशही हों और एक समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदा सदृशही हों उसको अनिवृत्तिकरण कहते हैं। इस अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उतनेही परिणाम होते हैं। ये परिणाम अत्यंत निर्मल ध्यान रूप अग्निकी शिखाओंकी सहायतासे कर्म वनको भस्म कर देते हैं। इन परिणामोंसे ही आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी गुणश्रेणि निर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन, अनुभागकांडकखंडन होती है, और मोहनीयकर्मकी वादरकृष्टि सूक्ष्मकृष्टि आदि होती हैं। इस गुणस्थानके संख्यात भागोंमेंसे अंतके भागमें होनेवाले कार्य बतलाये जाते हैं—

पूर्व स्पर्धकसे अपूर्वस्पर्धकके और अपूर्वस्पर्धकसे वादरकृष्टिके तथा वादरकृष्टिसे सूक्ष्मकृष्टिके अनुभाग क्रमसे अनन्तगुणे २ हीन होते हैं। और पहिले २ के जघन्यसे नीचे २ (उत्तरोत्तर) का उत्कृष्ट और अपने २ उत्कृष्टसे अपना २ जघन्य अनंतगुणा २ हीन है।

अनेक प्रकारकी अनुभाग शक्तिसे युक्त कार्माणवर्गणाओंके समूहको स्पर्धक कहते हैं।

जो स्पर्धक अनिवृत्तिकरणके पूर्वमें पाये जांय उनको पूर्वस्पर्धक कहते हैं।

जिनका अनिवृत्तिकरणके निमित्तसे अनुभाग क्षीण होजाता है उनको अपूर्वस्पर्धक कहते हैं।

जिनका अनुभाग अपूर्वस्पर्धकसेभी ज्यादा क्षीण होजाय उनको वादरकृष्टि कहते हैं। और—

जिनका अनुभाग वादरकृष्टीसे भी ज्यादा क्षीण हो जाय उन्हें सूक्ष्मकृष्टि कहते हैं। पूर्वस्पर्धकके जघन्य अनुभागसे अपूर्वस्पर्धकका उत्कृष्ट अनुभाग भी अनंतगुणा हीन है। इसी प्रकार अपूर्वस्पर्धकके जघन्य अनुभागसे वादरकृष्टिका उत्कृष्ट अनुभाग और वादरकृष्टिके जघन्य अनुभागसे सूक्ष्मकृष्टिका उत्कृष्ट अनुभाग अनंतगुणा २ हीन है। और जिस प्रकार पूर्वस्पर्धकके उत्कृष्ट अनुभाग

से पूर्वस्पर्धकका जघन्य अनुभाग अनंतागुणा हीन है उसी प्रकार आगे २ का अनुभाग जानना चाहिये। जैसे पूर्वस्पर्धकका उत्कृष्ट अनुभाग द्रव्य- ६५५३६ है और अनंत गुणाकारका प्रमाण चार है। और अपने २ उत्कृष्टसे अपना २ जघन्य और पूर्व २ के जघन्यसे उत्तरोत्तर २ का उत्कृष्ट अनुभाग अनंतगुणा हीन बतलाना है तो नीचेके यंत्रसे ठीक २ ध्यानमें लाना चाहियेः—

	उत्कृष्ट अनुभागद्रव्य	जघन्य अनुभागद्रव्य
पूर्वस्पर्धक	६५५३६	१६३८४
अपूर्वस्पर्धक	४०९६	१०२४
बादरकृष्टि	२५६	६४
सूक्ष्मकृष्टि	१६	४

गणित शास्त्रके नियमानुसार-यदि संख्याको गुणाकार रूप हीन बतलाना है तो भाग देना चाहिये। यदि अधिक बतलाना है तो गुणाकार करना चाहिये। इसलिये कल्पना कीजिये कि पूर्वस्पर्धकका उत्कृष्ट अनुभाग द्रव्य ६५५३६ है उसमें अनंतके प्रमाण ४ का यदि भाग दिया जाय तो लब्धि १६३८४ उसके जघन्य अनुभाग द्रव्यका प्रमाण आता है। ये द्रव्य उत्कृष्टसे अनंत गुणा हीन पाया गया। इसी तरह पूर्वस्पर्धकके जघन्य अनुभाग द्रव्य से अपूर्वस्पर्धकका उत्कृष्ट अनुभाग द्रव्य ४०९६ अनंत-गुणाकारहीन है। इसी प्रकार आगेका समझना चाहिये।

अत्यंत सूक्ष्म अवस्थाको प्राप्त लोभ कषायके उदय को अनुभवन करते हुए जीवके सूक्ष्मसांपराय नामका दशमां गुणस्थान होता है। जिस प्रकार धुले हुए कसूमी वस्त्रमें लालिमा सूक्ष्म रह जाती है उस ही प्रकार जो अत्यंत सूक्ष्म राग (लोभ) से युक्त है उसको सूक्ष्मसां-पराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

चारित्र मोहनीयकी २१ प्रकृतियोंके उपशम होनेसे यथाख्यात चारित्रको धारण करने वाले मुनिके ग्यारहवां उपशांत मोह नामका गुणस्थान होता है। जैसे निर्मली फलसे युक्त जलमेंसे कदर्मके नीचे बैठ जानेसे ऊपर जल स्वच्छ हो जाता है अथवा जैसे शरद ऋतुमें अगस्त्य नक्षत्रके उदयका निमित्त पाकर गँदला जल स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार चारित्रमोहनीय कर्मके उपशम होने से जो भावोंकी निर्मलता होती है उसको उपशांतमोह नामका ग्यारहवां गुणस्थान कहते हैं।

मोहनीयकर्मके अत्यंत क्षय होनेसे स्फटिक मणिके पात्रमें रक्खे हुए निर्मल जलकी तरह अत्यंत निर्मल अविनाशी यथाख्यात चारित्रके धारक मुनिके क्षीणमोह नामका बारहवां गुणस्थान होता है।

घातियाकर्मकी ४७ (ज्ञानावरणी ५ दर्शनावरणी ९ मोहनीय २८ अंतरायकी ५=४७) और अघातिया कर्मोंकी

१६ (नरकगति, तिर्यग्गति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, विकलत्रय, आयुः तीन, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर) मिला कर ६३ प्रकृतियोंके क्षय होनेसे लोकालोक प्रकाशक केवल तथा मनयोग वचनयोग और काययोगके धारक अर्हत भट्टारकके सयोगकेवली नामक तेरहवां गुणस्थान होता है। यही केवली भगवान अपनी दिव्य ध्वनिसे भव्यजीवोंको मोक्षमार्गका उपदेश देते हैं। यही भगवान अपने केवल ज्ञान रूपी सूर्यकी अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणोंके समूह से उत्कृष्ट अनंतानंत प्रमाण अज्ञानांधकारको बिलकुल नष्ट करते हैं और केवल ज्ञानके होते ही जिनको नव केवल लब्धियां (क्षायिक सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य) प्रकट हो जाती हैं इसलिये "सकल परमात्मा" इस व्यपदेशको प्राप्त करते हैं।

मन वचन कायके योगोंसे रहित, केवलज्ञानसे युक्त अर्हंत भट्टारकके चौदहवां गुणस्थान होता है। इस गुणस्थानका काल अ इ उ ऋ लृ इन पांच ह्रस्वस्वरोंके उच्चारण करनेके बराबर है। अपने गुणस्थानके कालके द्विचरम समयमें सत्ताकी ८५ प्रकृतियोंमेंसे ७२ प्रकृतियोंका और अंत समयमें १३ प्रकृतियोंका नाश करके अर्हंत-

परमेष्ठी सिद्धशिलापर जा विराजमान होते। १८००० तरहके शीलकी पूर्णता इसी अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थानमें ही होती है। इसलिये जो शीलका स्वामी होकर पूर्ण संवर और निर्जराका पात्र होनेसे मुक्त अवस्थाके संमुख होते हुए काययोगसे रहित हो जाते हैं ऐसे केवलीको चौदहवां गुणस्थानवर्ती कहते हैं। मुनिके चौरासी लाख उत्तरगुण भी यहीं पूर्ण होते हैं। इसप्रकार संक्षेपमें चौदह गुणस्थानोंका स्वरूप वर्णनकर अब ऊपर कहे हुए जीवके औपशमिकादिक भावोंमेंसे कौन से गुणस्थानोंमें कौनसा भाव होता है ऐसा बतलाते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिक भाव होता है। दूसरे सासादन गुणस्थानमें दर्शनमोहकी अपेक्षा पारिणामिक भाव होता है। तृतिय मिश्र गुणस्थानमें क्षायोपशमिक भाव होता है। चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक ऐसे तीन भाव होते हैं। ये भाव दर्शनमोहनीयकी अपेक्षासे कहे गये हैं क्योंकि चौथे गुणस्थान तक चारित्रमोहनीय के सर्वघाति स्पर्धकोंके तीव्रोदयसे चारित्र प्रकट नहीं हो पाता।

पांचवें छट्टे और सांतवें गुणस्थानमें चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव होता है। सातवें

गुणस्थानसे आगे आठवेंसे ११ वें तक चारित्रमोहकी २१ प्रकृतियोंको यदि उपशमाते हैं तो इन गुणस्थानोंमें औपशमिक भाव होता है। यदि आठवेंसे (ग्यारहवें गुणस्थानको छोड़कर) बारहवें गुणस्थान तक ऊपर कही हुई २१ प्रकृतियोंका क्षय होता है तो क्षायिक भाव होता हैं। सयोग केवली, अयोग केवली और सिद्धोंके क्षायिक भाव ही होता है।

अब कर्मकी १४८ प्रकृतियोंमेंसे कौन २ प्रकृतियों का कौन २ से गुणस्थानमें बंध उदय और सत्व पाया जाता है गुणस्थान वार यथाक्रमसे बतलाया जाता हैः—

जिस गुणस्थानमें कर्मप्रकृतियोंके बंध, उदय और सत्वकी व्युच्छित्ति कही जाय उस गुणस्थान तक ही उन प्रकृतियोंका बंध, उदय अथवा सत्व पाया जाता है आगेके किसी भी गुणस्थानमें उन प्रकृतियोंका बंध, उदय व सत्व नहीं पाया जाता उसको व्युच्छित्ति कहते हैं।

सबसे पहिले १४ गुणस्थानोंमें १४८ प्रकृतियोंका बंध बतलाते हैंः—

कर्मकी १४८ प्रकृतियोंमेंसे स्पर्शादिक २० प्रकृतियों का अभेद विवक्षासे स्पर्श रस गंध और वर्ण इन चारमें

तथा ५ बंधन और ५ संघातका अभेद विवक्षासे औदारिक वैक्रियक आदि ५ शरीरोंमें अंतर्भाव हो जाता है इसलिये भेद विवक्षासे १४८ और अभेद विवक्षासे १२२ प्रकृति हैं। सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक प्रकृतिमिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका बंध नहीं होता, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता तबतक नहीं होती जबतक कि सम्यक्त्वरूप परिणामों से मिथ्यात्वके तीन खंड नहीं कर दिये जाते, इसीसे अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके बंध योग्य प्रकृति १२० और सत्व योग्य प्रकृति १४६ ही बतलाई हैं। मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर और आहारक आंगोपांग इन तीन प्रकृतियोंका भी बंध नहीं होता है क्योंकि इन तीन प्रकृतियोंका बंध बिना सम्यग्दर्शन के होता ही नहीं है। इसलिये इस गुणस्थानमें १२० में से तीन प्रकृति घटाने पर ११७ प्रकृतियोंका ही बंध होता है।

पहिले गुणस्थानमें जो ११७ प्रकृतियोंका बंध बतलाया गया है, उनमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें जिनकी व्युच्छित्ति बतलाई गई है, उन १६ प्रकृतियोंके घटा देने से १०१ प्रकृतियोंका बंध सासादन नामके दूसरे गुणस्थानमें होता है। व्युच्छिन्न सोलह प्रकृतियां ये हैं— मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्तास्टफाटकसंहनन, एके-

न्द्रियजाति, विकलत्रय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

दूसरे गुणस्थानमें जो बंध योग्य प्रकृतियां १०१ बतलाई गई हैं उनमें से जिनकी व्युच्छित्ति हो जाति है, ऐसी पच्चीस प्रकृतियां (अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, वामनसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराचसंहनन, कीलितसंहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु, उद्योत) को घटाकर शेष रही ७६ प्रकृतियां, इनमेंसे मनुष्यायु और देवायु इन दो प्रकृतियोंके घटानेसे तीसरे गुणस्थानमें बंध योग्य प्रकृतियां ७४ ही हैं। क्योंकि तीसरे गुणस्थानमें किसी भी आयुका बंध नहीं होता है नरकायुकी तो पहिले गुणस्थानमें और तिर्यगायुकी दूसरे गुणस्थानमें ही व्युच्छित्ति बतलाई गई है।

तीसरे गुणस्थानमें ७४ प्रकृतियोंका बंध होता है। जिन में मनुष्यायु और देवायु तथा तीर्थंकर प्रकृति इन तीन प्रकृति सहित चतुर्थ गुणस्थानमें ७७ प्रकृतियोंका बंध होता है।

चौथे गुणस्थानमें जो ७७ प्रकृतियोंका बंध कहा गया है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति दशके (अप्रत्याख्यानावर्णी क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहननके) घटानेपर ६७ प्रकृतियोंका बंध पंचम गुणस्थानमें होता है ।

पांचमें गुणस्थानमें जो ६७ प्रकृतियोंका बंध बतलाया गया है उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभके घटाने पर ६३ प्रकृतियोंका बंध छट्ठे गुणस्थानमें होता है ।

छट्ठे गुणस्थानमें जो ६३ प्रकृतियोंका बंध बतलाया है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति छहके (अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयस्कीर्ति, अरति, शोकके) घटानेपर बाकी रही ५७ में आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग इन दो प्रकृतियोंके मिलाने पर सातवें गुणस्थानमें ५९ प्रकृतियोंका बंध होता है ।

सातवें गुणस्थानमें जो ५९ प्रकृतियोंका बंध बतलाया है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति एक देवायुके घटाने पर शेष रही ५८ प्रकृतियोंका बंध आठवें गुणस्थानमें होता है ।

आठवें गुणस्थानमें जो ५८ प्रकृतियोंका बंध कहा गया है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति छत्तीस (निन्द्रा, प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पंचेन्द्रिय-जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय) को घटाने पर शेष रही २२ प्रकृतियोंका बंध नवमें गुणस्थानमें होता है।

नवमें गुणस्थानमें २२ प्रकृतियोंका बंध कहा गया है, उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति पांचको (पुरुषवेद, संज्वलन-क्रोध, मान, माया, लोभको) घटानेपर शेष रही १७ प्रकृतियोंका बंध दशमें गुणस्थानमें होता है।

दशमें गुणस्थानमें जो १७ प्रकृतियोंका बंध बतलाया गया है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृतियां सोलह (ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ४ अंतरायकी ५, यशः-कीर्ति, उच्चगोत्र) इन सबको घटा देने पर शेष रही एक मात्र सातावेदनीयका बंध इस ग्यारहवें गुणस्थानमें होता है।

बारहवें गुणस्थानमें भी १ सातावेदनीयका ही बंध होता है।

तेरहवें गुणस्थानमें भी एकमात्र सातावेदनीयका ही बंध होता है।

तेहरवें गुणस्थानमें जो एक सातावेदनीयका बंध होता था उसकी उसी गुणस्थानमें व्युच्छित्ति हो जाने से चौदहवें गुणस्थानमें किसीका बंध नहीं होता है।

इस प्रकार बंधको बतला करके अब १४ ही गुणस्थानों में उदय प्रकृतियोंको बतलाते है—

बंधके प्रकरणमें अभेद विवक्षासे जो १२२ प्रकृतियों का वर्णन किया था उनमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग, और तीर्थंकर प्रकृति इन पांच प्रकृतियोंका उदय पहिले गुणस्थानमें नहीं होता इसलिये १२२ मेंसे ५ को घटाने पर शेप रही ११७ प्रकृतियोंका उदय रहता है।

पहिले गुणस्थानमें जो ११७ प्रकृतियोंका उदय रहता है उनमेंसे मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन पांच मिथ्यात्व गुणस्थानकी व्युच्छिन्न प्रकृतियोंको घटानेपर ११२ रहीं परंतु नरकगत्यानुपूर्वी

का इस गुणस्थानमें उदय नहीं होता है इसलिये इस दूसरे गुणस्थानमें १११ प्रकृतियोंका उदय होता है।

दूसरे गुणस्थानमें जो १११ प्रकृतियोंका उदय होता था उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति नौ (अनंतानुबंधी क्रोध मान, माया, लोभ, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, स्थावर) के घटानेपर शेष रहीं १०२ मेंसे नरकगत्यानुपूर्वीके बिना (क्योंकि ये दूसरे गुणस्थानमें घटाई जा चुकी है) शेषकी तीन आनुपूर्वी घटाने पर (क्योंकि तीसरे गुणस्थानमें मरण न होनेसे किसी भी अनुपूर्वीका उदय नहीं है) शेष रही ९९ प्रकृति और एक सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय यहां आ मिला इस कारण इस तृतीय गुणास्थान में १०० प्रकृतियोंका उदय होता है।

तीसरे गुणस्थानमें जो १०० प्रकृतियोंका उदय बतलाया है, उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति सम्यङ्मिथ्यात्वके घटाने पर रही ९९, इनमें चार आनुपूर्वी और एक सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व इन पांच प्रकृतियोंका उदय चौथे गुणस्थानमें होता है। इसलिये चौथे गुणस्थानमें १०४ प्रकृतियोंका उदय होता है।

चौथे गुणस्थानमें जो १०४ प्रकृतियोंका उदय बतलाया गया है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति सत्तरह

(अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयस्कीर्ति) के घटाने पर शेष रही ८७ प्रकृतियोंका उदय रहता है।

पांचवें गुणस्थानमें जो ८७ प्रकृतियोंका उदय बतलाया गया है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति आठके (अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यग्गति, उद्योत और नीच गोत्रके) घटानेपर शेष रही ७९ प्रकृतियोंमें आहारक शरीर और आहारक आंगोपांग ये दो प्रकृतियोंके मिलानेसे इस छट्ठे गुणस्थानमें ८१ प्रकृतियोंका उदय होता है।

छट्ठे गुणस्थानमें जो ८१ प्रकृतियोंका उदय बतलाया गया है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति पांचके (आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि) घटानेपर शेष रही ७६ प्रकृतियोंका उदय इस ७ वें गुणस्थानमें होता है।

सांतवें गुणस्थानमें जो ७६ प्रकृतियोंका उदय बतलाया गया है उनमेंसे व्युछिन्न प्रकृति चार (सम्यक्प्रकृति, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तास्फाटिकसंहनन) के

घटाने पर शेष रही ७२ प्रकृतियोंका आठवें गुणस्थानमें उदय रहता है ।

आठवें गुणस्थानमें जो ७२ प्रकृतियोंका उदय होता था, उनमेंसे व्युच्छिति प्रकृति छहको (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा) को घटा देनेपर शेष रहीं ६६ प्रकृतियोंका उदय नवमें गुणस्थानमें होता है ।

नवमें गुणस्थानमें जो ६६ प्रकृतियोंका उदय होता था उनमेंसे व्युच्छिति प्रकृति छहको (स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान मायाको) घटा देनेपर शेष रही ६० प्रकृतियोंका उदय दशमें गुणस्थानमें होता है ।

दशमें गुणस्थानमें जो ६० प्रकृतियोंका उदय होता है, उनमेंसे व्युच्छिति प्रकृति एक संज्वलन लोभ कषाय को घटा देनेपर शेष रहीं ५९ प्रकृतियोंका उदय ग्यारहवें गुणस्थानमें होता है ।

ग्यारहवें गुणस्थानमें जो ५९ प्रकृतियोंका उदय होना बतलाया है उनमेंसे वज्रनाराच और नाराच इन दो व्युच्छिन्न प्रकृतियोंको घटा देनेपर ५७ प्रकृतियोंका उदय बारहमें गुणस्थानमें होता है ।

बारहवें गुणस्थानमें जो सत्तावन प्रकृतियोंका उदय

होताथा उनमेंसे व्युच्छिति प्रकृति १६ को घटा देनेपर अर्थात् ज्ञानावरणकी ५ अंतरायकी ५ दर्शनावरणकी ४ निद्रा और प्रचला, को घटा देनेपर शेप रही ४१ प्रकृतियोंमें तीर्थंकर की अपेक्षासे तीर्थंकर प्रकृतिको मिलाकर ४२ प्रकृतियोंका उदय तेरहवें गुणस्थानमें होता है।

तेरहवें गुणस्थानमें जो ४२ प्रकृतियोंका उदय होना बतलाया है उनमेंसे व्युच्छिति प्रकृति तीसको अर्थात्- वेदनीय १ वज्रर्षभनाराचसंहनन १ निर्माण १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुस्वर १ दुस्वर १ प्रशस्त विहायोगति १ अप्रशस्तविहायोगति १ औदारिकशरीर १ औदारिकआंगोपांग १ तैजसशरीर १ कार्माणशरीर १ समचतुरस्रसंस्थान १ न्यग्रोधपरिमंडल १ स्वातिसंस्थान १ कुब्जकसंस्थान १ वामनसंस्थान १ हुंडकसंस्थान १ स्पर्श १ रस १ गंध १ वर्ण १ अगुरुलघुत्व १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ और प्रत्येक १ इस तरह ३० प्रकृतियोंको घटा देनेपर शेप रही बारह प्रकृतियोंका (वेदनीय १ मनुष्यगति १ मनुष्यायु १ पंचेन्द्रियजाति १ सुभग १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ यशःकीर्ति १ तीर्थंकरप्रकृति १ और उच्च गोत्र १ का उदय रहता है।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानोंमें उदय बतलाकर अब सत्व प्रकृतियोंका वर्णन बतलाते हैं :--

मिथ्यात्व गुणस्थानमें एकसौअडतालीसों प्रकृतियों का सत्व रहता है।

सासादन गुणस्थानमें १४५ प्रकृतियोंका सत्व रहता है। यहांपर तीर्थंकर प्रकृति, आहारकशरीर और आहारक आंगोपांग इन तीन प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं रहती है।

तीसरे गुणस्थानमें तीर्थंकर प्रकृतिके विना १४७ प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है।

चौथे गुणस्थानमें सब प्रकृतियों अर्थात् १४८ प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है किंतु क्षायिक सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वकी तीन और अनतानुबंधी चतुष्टय इन सात प्रकृतियोंके विना १४१ प्रकृतियोंकी सत्ता होती है।

चौथे गुणस्थानमें जो १४८ प्रकृतियोंकी सत्ताका रहना कहा गया है, उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति एक नरकायुके विना पांचवें गुणस्थानमें १४७ का सत्व रहता है परंतु क्षायिक सम्यग्दृष्टोकी अपेक्षासे १४० का ही सत्व रहता है।

पांचवे गुणस्थानमें १४७ प्रकृतियोंकी सत्ता बतलाई गई है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति एक तिर्यग्गायुके घटा देने पर १४६ प्रकृतियोंकी सत्ता छट्ठे गुणस्थानमें रहती है, और क्षायिक सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा १३९ प्रकृतियोंकी सत्ता समझना चाहिये।

छट्टे गुणस्थानकी,तरह सातवें गुणस्थानमेंभी कर्मों की सत्ता १४६ प्रकृतियोंकीही रहती है और क्षायिक सम्यग्दृष्टिकें १३९ प्रकृतियोंकीही सत्ता रहती है।

सातवें गुणस्थानमें जो १४६ प्रकृतियोंकी सत्ता बतलाई गई थी. उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, और लोभ इन चारको घटाकर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालेकें तो १४२ का सत्व रहता है, किंतु क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालेकें १३९ प्रकृतियोंका सत्व रहता है। और क्षपकश्रेणीवालेकें सातवें गुणस्थानकी व्युच्छिन्न प्रकृति आठको (अनंतानुबंधी क्रोध मान, माया, लोभ तथा दर्शनमोहनीयकी ३ और एक देवायुको घटाकर बाकीकी १३८ प्रकृतियोंका सत्व आठवें गुणस्थानमें रहता है।

आठवें गुणस्थानकी तरह नवमें गुणस्थानमेंभी उपशमश्रेणीवाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिकें १४२, क्षपक सम्यग्दृष्टिके १३९ और क्षपकश्रेणीवालेकें १३९ प्रकृतियोंकाही सत्व रहता है।

दशमें गुणस्थानमें उपशमश्रेणीमेंतो नवमें गुणस्थान की तरह द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिकें तो १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टिकें १३८ और क्षपक श्रेणीवालेकें नवमें गुणस्थानमें जो १३८ प्रकृतियोंका सत्व बतलाया गया है,

उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति छत्तीस–' तिर्यग्गति १ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी १ विकलत्रयकी ३ निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला १ स्त्यानगृद्धि १ उद्योत १ आतप १ एकेन्द्रिय १ साधारण १ सूक्ष्म १ स्थावर १ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ ४ प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ ४ नोकषायकी ९ (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद) संज्वलन क्रोध १ मान १ माया १ नरकगति, और नरकगत्यानुपूर्वी १ को घटादेनेपर शेष रही १०२ प्रकृतियोंका सत्व रहता है।

नवमें और दशमें गुणस्थानकी तरह ग्यारहमें गुणस्थानमें द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके १४१ और क्षायिक सम्यग्दृष्टिके १३९ का सत्व रहता है।

दशवें गुणस्थानमें क्षपक श्रेणीवालेकी अपेक्षा १०२ प्रकृतियोंका सत्व रहता है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति संज्वलन लोभको घटा देनेपर शेष रही १०१ प्रकृतियोंका सत्व बारहवें गुणस्थानमें रहता है।

बारहवें गुणस्थानमें जो १०१ प्रकृतियोंका सत्व है, उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति सोलहको (ज्ञानावरणकी ५ अंतरायकी ५ दर्शनावरणकी ४ निद्रा १ प्रचला १ को) घटा

देनेपर शेप ८५ प्रकृतियोंका सत्व तेरहवें गुणस्थानमें रहता है।

तेरहवें गुणस्थानकी तरह चौदहवें गुणस्थानमेंभी ८५ प्रकृतियोंका उदय सत्व है परंतु द्विचरम समयमें ७२ और अंतिम समयमें १३ प्रकृतियोंका सत्व नष्ट करके अर्हत भगवान मोक्षको पधारते हैं।

इस प्रकार चौदहों गुणस्थानोंमें १४८ प्रकृतियोंके बंध, उदय और सत्वको बतलाया।

अब जीवोंके भावोंका वर्णन करते हैं :—

सामान्य रूपसे जीवोंके भाव ५३ प्रकारके होते हैं।

एकेन्द्रिय जीवके भाव २४ होते हैं :—

८ क्षयोपशमके भाव—

कुमति, कुश्रुत, अचक्षुदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य।

१३ भाव औदयिकके—

तिर्यचगति १ क्रोध, मान, माया, लाभ ४ नपुंसकलिंग, १ असिद्धत्व १ अज्ञान १ असंयम १ लेश्या ३ (कृष्ण, नील, कपोत) और मिथ्यादर्शन १।

३ भाव पारिणामिकके—

जीवत्व १ भव्यत्व २ अभव्यत्व ३।

द्विइन्द्रिय जीवके भाव २४—

क्षयोपशमके भाव ८—

कुमति, कुश्रुत, अचक्षुदर्शन, ५ लब्धियां ।

औदयिक भाव १३—

क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यंचगति, नपुंसकलिंग, असिद्धत्व, अज्ञान, असयम, कृष्ण, नील, कापोतलेश्या, मिथ्यादर्शन ।

पारिणामिक भाव ३—

जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व

तेइन्द्रियके भाव २४—

८ क्षयोपशमके—

कुमति, कुश्रुत, अचक्षुदर्शन, ५ लब्धियां-दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ।

१३ औदयिक भाव—

तिर्यंचगति १ क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४ नपुंसकवेद १ असिद्धत्व १ अज्ञान १ असंयम १ लेश्या ३- कृष्ण, नील, कापोत, मिथ्यादर्शन १ ।

३ पारिणामिक भावके—

जीवत्व १ भव्यत्व १ और अभव्यत्व ।

२५ भाव चौइन्द्रियके —

९ क्षयोपशमके भाव—

कुमति १ कुश्रुत १ चक्षुदर्शन १ अचक्षुदर्शन १ लब्धियां ५- दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य।

१३ औदयिकके भाव—

तिर्यंचगति १ कषाय ४- क्रोध, मान, माया, लोभ, नपुंसकलिंग १ अज्ञान १ असंयम १ असिद्धत्व १ लेश्या ३- कृष्ण, नील, कापोत, मिथ्यादर्शन १।

३ पारिणामिकके भाव—

जीवत्व १ भव्यत्व १ अभव्यत्व १।

असैनी पंचेन्द्रियके भाव २

९ क्षायोपशमिक भाव—

कुमति १ कुश्रुत १ चक्षुदर्शन १ अचक्षुदर्शन १ लब्धियां- दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य।

१५ औदयिक भावके—

तिर्यंचगति १ कषाय ४- क्रोध, मान, माया, लोभ, लिंग तीन- स्त्रीलिंग १ पुलिंग १ नपुंसकलिंग १ लेश्या ३ कृष्ण, नील, कपोत, अज्ञान १ असिद्धत्व १ असंयत १ मिथ्यादर्शन १।

३ पारिणामिक भाव—

जीवत्व १ भव्यत्व १ अभव्यत्व ।

३९-भाव-तिर्यंच सैनी पंचेन्द्रियके—

२ उपशमसम्यक्त्व १ चायिकसम्यक्त्व १

१६ क्षायोपशमिक भाव—

६ ज्ञानके- सुमति, सुश्रुति, अवधि, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ।

३ दर्शन- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन

५ लब्धि- दान १ लाभ २ भोग ३ उपभोग ४ वीर्य ५ ।

२ क्षयोपशमसम्यक्त्व १ संयमासंयम १

१८ औदयिकके भाव—

५ तिर्यंचगति १ कषाय ४- क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४ ।

५ लिंग ३ (स्त्रीलिंग, पुंलिंग, नपुंसकलिंग) मिथ्यादर्शन, अज्ञान ।

८ असंयत, असिद्धत्व, ६ लेश्याएं- कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म, शुक्ल ।

३ पारिणामिकके भाव—

जीवत्य, भव्यत्व, अभव्यत्व ।

नारकियोंके भाव ३३—

१ उपशमसम्यक्त्व, २ उपशमचारित्र।

१५ भाव क्षयोपशमके—

कुमति १ कुश्रुत १ कवधि १ सुमति १ सुश्रुत १ और अवधिज्ञान १ चक्षुदर्शन १ अचक्षुदर्शन १ अवधिदर्शन १ लब्धियां ५- दान १ लाभ १ भोग १ उपभोग १ वीर्य १ क्षयापशम सम्यक्त्व १।

१३ औदयिकके—

नरकगति १ कषाय ४- क्रोध, मान, माया, लोभ। नपुंसकलिंग १ लेश्या ३- कृष्ण, नील, कपोल। मिथ्यादर्शन १ अज्ञान १ असंयत १ असिद्धत्व १।

३ पारिणामिक भावके—

जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

५०-मनुष्यगतिमें जीवोंके भाव—

२ औपशमिकके भाव- उपशमसम्यक्त्व, उपशम-चारित्र।

९ क्षायिकके भाव- क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिक-चारित्र, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य।

१८ क्षायोपशमिकके भाव-

४ ज्ञान- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान।

६ कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, दर्शन ३- चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन।

५ लब्धि- दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

३ क्षायोपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशमचारित्र, संयमासंयम।

१८ औदयिकके भाव-

८ मनुष्यगति, ४ कषाय- क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीलिंग, पुंलिंग, नपुंसकलिंग।

३ मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असिद्धत्व।

७ असंयम १ लेश्या ६- कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल।

२ पारिणामिक भावके-

जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

३४-देवगतिमें जीवोंके भाव—

२ सम्यक्त्व-औपशमिकसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व।

१५ क्षायोपशमिक-

६ सुज्ञान ३ (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि-

ज्ञान) कुज्ञान ३- कुमति कुश्रुत, कअवधि ।
८ दर्शन ३ (चक्षुदर्शन १ अचक्षुदर्शन १ अवधिदर्शन). लब्धियां ५ (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) ।
१ क्षायोपशमसम्यक्त्व ।

१४ औदयिक भाव—

७ देवगति, कषाय ४- (क्रोध, मान, माया, लोभ) लिंग २ (स्त्रीलिंग, पुंलिंग)
५ लेश्या ३ (पीत, पद्म, शुक्ल) मिथ्यादर्शन, अज्ञान ।
२ असंयम, असिद्धत्व ।

३ पारिणामिक भाव—

३ जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ।

५३-पंचेन्द्रिय सैनीके भाव—

औपशमिक २ क्षायिक ९ क्षायोपशमिक १८ औदयिक २१ पारिणामिक ३ ।

इस प्रकार भावोंका वर्णन किया ।

अब सत्तावन प्रकारके आस्रवको बतलाते हैं—

३८-एकेन्द्रियके आस्रवका पाया जाना—

१२ मिथ्यात्व ५, अव्रत ७ (एकेन्द्रियवश नहीं, ६ कायके जीवोंकी दया नहीं)

२६ योग ३ औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्माण) कषाय २३ (स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग विना)

४०-द्विइन्द्रियजीवके आस्रव—

१३ मिथ्यात्व ५ अविरति ८ (दोनों इन्द्रियां वश नहीं ६ कायके जीवोंकी रक्षा नहीं).

२७ योग ४ (औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण, अनुभववचनयोग) कषाय २३ (स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग विना)

४१-त्रीन्द्रियजीवके आस्रव—

१४ मिथ्यात्व ५ अव्रत ९ तीनों इन्द्रियां वश नहीं करना और छह कायके जीवोंकी दया नहीं पालना)

२७ द्वि इन्द्रियमें कहे अनुसार ही जानना चाहिये।

४२-चतुरिन्द्रियके आस्रव—

१५ मिथ्यात्व ५ अव्रत १० (चारों इन्द्रियां वश नहीं करना और ६ कायके जीवोंकी दया नहीं पालना।

२७ योग ४ ऊपर कहे अनुसार और (स्त्रीलिंग पुल्लिंग विना) २३ कषाय।

४३-असैनी पंचेन्द्रियके आस्रव—

१६-मिथ्यात्व ५ अव्रत ११ (पांचों इन्द्रियोंको वश में नहीं करना और ६ कायके जीवोंकी दया नहीं पालना)

२७-योग ४ और स्त्रीवेद पुंवेदके विना २३ कपाय।

५७ पंचेन्द्रिय सैनीके आस्रव—

१७-मिथ्यात्व ५ अविरति १२ (पांचोंइन्द्रियां और मनको वशमें नहीं करना तथा ६ कायके जीवोंपर दया नहीं करना)

४०-योग १५ (मनके ४ वचनके ४ कायके ७) कपाय २५ सारीकी सारी।

५२-देवगतिमें जीवके आस्रव—

२८-मिथ्यात्व ५ अविरति १२ योग ११ (मनके ४ वचनके ४, वैक्रियिककाय, वैक्रियिकमिश्रकाय और कार्माण)

२४-नपुंसकवेद विना २४ कपाय।

५५-मनुष्यगतिमें जीवके आस्रव—

५५-मिथ्यात्व ५ अविरति १२ योग १३ (वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र विना) कपाय २५

५३-तिर्यंचगतिमें जीवके आस्रव—

मिथ्यात्व ५ अविरति १२ योग ११ (मनके ४

वचनके ४ औदारिक १ औदारिकमिश्र १ कार्माण १)
कपाय २५।

५१-नारकी जीवोंके आस्रव—

४०-मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कपाय २३ (स्त्रीवेद, पुंवेद विना)

११-योग ११ (औदारिक, औदारिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र विना)

यहां तक गुणस्थान और उनमें होनेवाले कर्मोंके बंध, उदय, सत्वका संक्षेप रूपमें वर्णन किया गया। अब इन्हीं वातोंका विस्तार रूपसे वर्णन किया जाता है— बंध योग्य प्रकृतियोंका गतियोंमें कितनी और कौन प्रकृतियोंका बंध होता है ऐसा बतलाते हैं— बंधकरणमें प्रकृति १२० ही मानी है। वह भी अभेदविवक्षासे बतलाई हैं—१०१ नरकगतिमें बंध योग्य हैं। १९ प्रकृतियां बंध योग्य नहीं हैं।

कौन २ सी बंध योग्य नहीं हैं यह बतलाते हैं—

एकेन्द्री १ स्थावर १ आतप १ सूक्ष्म १ अपर्याप्त १ साधारण १ वेइन्द्री १ तेइन्द्री १ चौइन्द्री १ नरकगति १ नरकगत्यानुपूर्वी १ देवायु १ वैक्रियिक शरीर १ वैक्रियिक आंगोपांग १ आहारक शरीर १ आहारक आंगोपांग १

११७—तिर्यंचगतिमें (तीर्थंकर प्रकृति १ आहारक शरीर १

आहारक आंगोपांग १) ये तीन प्रकृतियां बंध योग्य नहीं हैं।

१२०-मनुष्यगतिमें सबकी सब बंध योग्य है।

१०१ देवगतिमें-ऊपर बतलाई हुई १९ प्रकृतियां बंध योग्य नहीं हैं। क्योंकि देव नारकी नहीं और नारकी देव नहीं होते।

१०९-विकलचतुष्कमें अबंध रूप प्रकृतियां ११ बतलाई गई हैं-तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग, देवायु, नरकायु, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी मनुष्यायु, ऊँचगोत्र। शेष १०९ प्रकृतियां बंध योग्य कही गई हैं।

७६-उदययोग्य प्रकृतियां—नरकगति की अपेक्षा से—५२ घातिया कर्मोंकी ४७ में स्यानगृद्धि आदि निद्रा ३ स्त्रीवेद १ पुरुषवेद १ बाकी रही-नरकनरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआंगोपांग, तैजस, कार्माण, स्थिर १ अस्थिर १ शुभ१ अशुभ१ अप्रशस्त विहायोगति १ हुंडकसंस्थान १ निर्माण १ पंचेन्द्रिय १ नरकगति१ दुर्भग१ दुःस्वर१ अनादेय१ अयशस्कीर्ति; १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात, उच्छ्वास१ त्रस१ वादर१ पर्याप्त १ प्रत्येक १ स्पर्श १

रस १ गंध १ वर्ण १ नरकायु १ नीचगोत्र १ साता १ असाता १ बाकी रही ७१ प्रकृतियां उदय योग्य है।

१०७–तिर्यंचगतिमें उदय योग्य प्रकृतियां–उदय योग्य १२२ में अनुदय योग्य १५—देवायु, मनुष्यायु, नरकायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, देवगति, नरकगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी, तीर्थंकरत्व। बाकी १०७ उदय योग्य हैं।

१०२–मनुष्यगतिमें उदय योग्य २० प्रकृतियां नीचें लिखे अनुसार हैं—स्थावर १ सूक्ष्म १ तिर्यंचगति १ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी १ आतप १ उद्योत १ पृथ्व्यादि ४ साधारण १ नरकायु १ तिर्यंचायु १ देवायु १ वैक्रियिक शरीर १ वै. आंगोपांग १ देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी १ नरकगति १ नरक-गत्यानुपूर्वी १। उदय योग्य रहीं १०२

७६–मनुष्यगतिमें जो उदय योग्य १०२ प्रकृतियां कहीं हैं उनमेंसे देवगतिमें उदय योग्य प्रकृतियां ७६, अनु-दय योग्य ३० प्रकृतियां नीचे मुताबिक–दुर्भग १ दुःस्वर १ अनादेय १ अयशस्कीर्ति १ नीचगोत्र १

नपुंसक वेद १ निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला १ स्त्यानगृद्धि १ अप्रशस्तविहायोगति १ तीर्थंकर प्रकृति १ अपर्याप्त १ अंतके संहनन ५, अंतके संस्थान ५, आहारक शरीर १ आहारक आंगोपांग १ मनुष्य-गति १ मनुष्यगत्यानुपूर्वी १ औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांग १ मनुष्यायु १ वज्रर्षभनाराच संहनन १ बाकीरहीं ७२में देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी १ वै. शरीर १ वै. आंगोपांग १ देवायु पांच प्रकृतियां मिलानेसे ७७ हुई, परंतु दो वेदोंमेंसे कोई एक वेद का अनुदय रहनेसे ७६ प्रकृतियां उदय रूप हैं ।

८०—एकेन्द्रियके उदय योग्य हैं ।

७९ पृथ्वी कायिकमें, एक साधारणका उदय नहीं ।

७८ जल कायिकमें, यहां साधारण और आतपका उदय नहीं ।

७७ तेज कायिक व वायुकायिकमें, साधारण, आतप, उद्योतका उदय नहीं ।

७९ वनस्पतिकायिकमें, केवल आतपका उदय नहीं।

११७—त्रसकायिक जीवके उदय योग्य हैं सिर्फ ५ प्रकृतियां अनुदय रूप हैं—

स्थावर १ सूक्ष्म १ एकेन्द्रिय १ साधारण और आतप । सत्व योग्य प्रकृतियां १४८ हैं । उनमेंसे—

१४७—नारका जीवोंके सत्व योग्य एक देवायुका असत्व है।

१४७—तिर्यंचजीवोंके सत्व योग्य हैं, तीर्थंकर प्रकृति असत्व रूप है।

१२०—मनुष्यगतिमें, मनुष्यके गुणस्थानवत् सब प्रकृतियां सत्व रूप हैं।

१४७ देवायुमें सिर्फ १ नरकायुका सत्व नहीं होता।

१४५—एकेन्द्रियादि वा विकलत्रयमें जानना।

अब पहिले गुणस्थानोंका जो सामान्य कथन किया गया है उसीको विस्तार रूपसे कहता हूं। उनमें बंध, बंधव्युच्छिति, उदय, उदयविच्छुत्ति, सत्व, सत्वव्युच्छिति आदि का वर्णन किया जावेगा। क्योंकि मैं छद्मस्थ हूं कहीं वर्णन करनेमें घट बढ़ हो जाय या विपरीत कथन हो जाय तो बहुश्रुत व्यक्ति उसको सुधार दें। क्योंकि—गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।

मिथ्यात्व गुणस्थान—

इस पहिले गुणस्थानमें मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय रहता है जिसके उदयसे जीव-निजतत्व रूप अपने आत्मा को तो पहिचानता नहीं किन्तु आत्मासे भिन्न जो पुद्गल उसको अपनाता है इसीसे यह आत्मा अनादि कालसे लेकर अबतक जन्म मरणके दुःख उठाता हुआ चार

गति चौरासी लाख योनियोंमें घूमता फिरता है, जैसे अरघट्टकी घड़ियां चक्कर लगाया करती हैं। इसी आशय को लेकर भगवान् कुंदकुंद स्वामीने पंचास्तिकायमें कहा है।

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विषयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥

जो यह संसारी जीव है उसके पूर्वबद्ध कर्मके उदयसे जैसे २ राग द्वेष मोहादि भाव होते हैं उन भावों या परिणामोंसे नवीन ज्ञानावरणादि ८ कर्म बंधते हैं और उन कर्मोंके संबंधसे एक गतिसे दूसरी गतिमें, उससे दूसरी गतिमें इस तरह गतिसे गत्यतर गमन होता रहता है। गतियोंके प्राप्त होनेसे शरीरका संबंध होता है उससे इन्द्रियोंका, इन्द्रियोंसे विषय ग्रहण होता है और फिर विषय ग्रहणसे नवीन राग द्वेषका प्रादुर्भाव होता है। यह परिपाटी जब तक इस जीवके मिथ्यात्व कर्मका संबंध रहेगा बनाही रहेगा। संसाररूपी चक्रके परिभ्रमणसे राग द्वेष भावोंसे मलीन आत्माके इसी प्रकार अशुद्धभाव उपजते रहते हैं। वे अशुद्धभाव अभव्यजीवकी अपेक्षा अनाद्यनंत हैं और भव्यजीवकी अपेक्षा अनादि सांत

अथवा सादि सांत हैं। इस प्रकार भगवान जिनेन्द्रने कहा है।

इस प्रकारके मिथ्यात्वके पांच भेद होते हैं (१) विपरीत (२) एकांत (३) विनय (४) संशय और (५) अज्ञान इन्हींके भेद ३६३ होते हैं। इन पांचों भावोंका स्वरूप पहिले कहा जा चुका है। ये मिथ्यात्व-मिथ्यात्व कर्मके उदयसे तत्वार्थका विपरीत श्रद्धान कराता है। मिथ्यात्वके पांच ही भेद हैं ऐसा नहीं हैं। मिथ्यात्वके भेद आचार्यों ने असंख्यात लोक प्रमाण वतलाये हैं। बौद्धमतावलंबी एकांतमिथ्यादृष्टि हैं। क्योंकि बौद्ध लोग पदार्थको सर्वथा क्षणिक ही मानते हैं। उनका कहना है कि पदार्थ एक क्षणमें उत्पन्न होता है दूसरे क्षणमें नष्ट हो जाता है। इस तरह क्षण २ में उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं।

याज्ञिक ब्राह्मण विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं क्योंकि वे हिंसाको धर्म बतलाते हैं और धर्मका लक्षण अहिंसा है, इसलिये धर्मके लक्षणको विपरीत प्रतिपादन करनेवाले विपरीत मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। तापसादि विनय मिथ्यादृष्टि हैं। विनय मिथ्यादृष्टि सब देवोंमें व सब सिद्धांतोंमें समान दृष्टि रखते हैं। इसीसे वैनयिक मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं।

इन्द्र नामक श्वेतांबर गुरू सांशयिक मिथ्यादृष्टि है। मस्करी आदि मीमांसक मतवाले अज्ञानमिथ्यादृष्टि हैं। इन मिथ्यादृष्टियोंका श्रद्धान उस तरहसे दूषित होता है जैसे पित्तज्वरवालेका स्वाद दूषित होता है। ये सभी पदार्थका ठीक २ निर्णय किये बिना अपनी इच्छानुसार श्रद्धान करते हैं। ऐसोंका संसार समुद्रसे अनंतकाल तक तरण नहीं हो सकता, क्योंकि इनकी परिपाटी मिथ्यात्व को ही पुष्ट करनेवाली हो जाती है।

जो भी इस गुणस्थानमें दर्शनमोहके उदय होनेकी वजहसे औदयिकभाव कहा गया है परंतु क्षायोपशमिक भावभी होता है लेकिन उसकी यहां विवक्षा नहीं है।

जीवके निज भाव जो ५३ बतलाये गये हैं वे कौन २ गुणस्थानमें कितने २ होते हैं? इस बातको बतलानेके लिये पहिले गुणस्थानमें पाये जानेवाले भावोंको बतलाते हैं—

इस प्रथम गुणस्थानमें ३४ भाव होते हैं—

क्षायोपशमिक १० औदयिक २१ और पारिणामिक ३ सब मिलकर ३४ होते हैं।

क्षायोपशमिकके दश भेद-कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। इनके उदय होनेपर जीव दुखही पाता है। यह भाव शुभ और अशुभ दोनों रूप होता है। जब शुभ रूप होता

है तब कुछ सुखकी प्राप्ति होती है, परंतु जब अशुभ रूप होता है तब दुखही मिलता है।

औदयिकके २१ भेदः—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल-लेश्या। इस तरहके होनेवाले जीवके भाव दुखदायकही होते हैं। जब कभी जीवके सातावेदनीयका उदय होता है, तब जीवको कुछ समयके लिये सुखकाभी भास होजाता है। परंतु वहभी दुःख संमिश्रितही होता है।

पारिणामिकके ३ भेद—जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

मिथ्यात्व दशामें तीनों भाव हो सकते हैं परंतु सम्यक्त्वकी दशामें अभव्यत्व भावका अभाव हो जाता है। सिद्धावस्थामें, भव्यत्व अभव्यत्व भावका अभाव हो जाता है। वहां सिर्फ जीवत्व भाव ही रहता है। मोक्ष होने पर अभव्य इसलिये नहीं रहा कि अभव्यको मोक्ष नहीं होता। सिद्धोंने मोक्ष प्राप्त किया इससे अभव्यत्व भाव नहीं रहा और भव्यत्व भाव इसलिये नहीं है क्योंकि जिन गुणों को उन्हें प्राप्त करना चाहिये था वे सब उन्होंने प्राप्त कर लिये इसलिये भव्यत्व भाव भी नहीं है। केवल जीवत्व भाव ही रहता है। जीवत्व भाव उसे कहते हैं जो पहिले

जिंदा था, वर्तमान में जीवित है और आगे भी जीवित रहेगा। तीन कालमें चार प्राण जिसके थे अब हैं और आगे रहेंगे व्यवहारनय से उसको जीव कहते हैं। और निश्चयनयसे जिसमें भी चेतनाशक्ति पाई जाय वह जीव है। जीव अपनी जीवनशक्तिसे तीनों कालमें कभी अलग नहीं हो सकता।

भव्यका लक्ष्य—भाविकाले परस्वरूपाकारभवनाद्भव्य-स्वभावः (आलापपद्धतौ)

अर्थात—भावीकालमें जो अनादि कालसे जिस रूप का अनुभव कर रहा था उससे उल्टा होने योग्य जिसमें शक्तिकी जाग्रति हो उसे भव्य कहते हैं। जैसे—अनादि कालसे मिथ्यात्वके उदयसे विपरीत विश्वास करता आ रहा है यही दुखका कारण है जब यह जीव उस विश्वास से उल्टा विश्वास करने लग जाय अर्थात् जो पदार्थ जैसा हो उसका वैसाही श्रद्धान करने लग जाय तो इसीका नाम सम्यक्त्व है जिसके होनेसे यह जीव भव्य कहलाने लगता हैं।

अभव्यका लक्षण—कालत्रयेपि परस्वरूपाकाराभवना-दभव्यस्वभावः (आलापपद्धतौ)

अर्थ—तीन कालमें भी जो अनादि कालसे जिस रूपका अनुभव करता आया है उससे उल्टा कभी भी

पलटना न हो उसको अभव्यत्व भाव कहते हैं। जैसे—अनादि कालसे मिथ्यात्वके उदयसे पदार्थका जैसा विश्वास करता आया है उससे उल्टा विश्वास—पदार्थका सच्चा विश्वास न होना ही अभव्यत्व भाव हैं। इस तरह इस गुणस्थानमें जीवके ३४ भाव होते हैं।

इस गुणस्थानमें होनेवाले आश्रवका निर्देश—

सिद्धान्त शास्त्रमें सामान्य रूपसे आस्रवके ५७ भेद बतलाये गये हैं। उनमें से इस गुणस्थान में ५५ का आस्रव होता है। अर्थात्—मिथ्यात्व ५ अविरति १२ योग १३ कषाय २५=५५। ५ मिथ्यात्व ऊपर बतलाये जा चुके हैं, एवं अविरति १२ का भी वर्णन ऊपर किया गया है। संयम नहीं पालना, सो अविरति है जहां अविरति है वहां हिंसा है जहां हिंसा है वहां नवीन २ कर्मोंका बंध है और कर्मोंके बंधसे आत्माको दुःख है। संयम दो प्रकारका होता है। एकदेश और सकलदेश। एकदेश श्रावकके होता है क्योंकि श्रावक मोटे रूपसे ही पापोंका त्याग कर सकता है। सकल-देश-महाव्रती मुनिराजोंके होता है। क्योंकि इन्द्रियों और मनको उनके विषयोंसे दूर रखना तथा छह कायके जीवोंकी दया पालना मुनिराजों से ही होता है। देश चारित्रका वर्णन पंचम गुणस्थानके

वर्णनमें और सकलसंयम या चारित्रका वर्णन छट्टे गुण-स्थानके वर्णनमें ठीक २ किया जायगा।

१३ योग—मनके चार (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय) वचनके चार (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय) कायके ५ (औदारिक काययोग, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक-काययोग, वैक्रियिकमिश्र, कार्माणकाययोग) इस तरह तेरह योग होते हैं। इनके द्वारा आत्माके प्रदेश सकंप रहते हैं जिससे प्रकृति और प्रदेश बंध होते हैं। जिस सकंपदशा कर्म और नोकर्म वर्गणाओंका आस्रव होता है जिससे यह जीव संसारमें भ्रमण करता है।

२५ कषाय चारित्र मोहनीयकी, जिनका कि वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

इस गुणस्थानमें जिन २ कर्मोंका बंध या बंधकी व्युच्छित्ति, उदय या उदयकी व्युच्छित्ति, सत्व या सत्व की व्युच्छित्ति होती है उसका वर्णन हम ऊपर कर चुके वहांसे जानें।

इस गुणस्थानसे जब जीव ऊपर चढ़ता है तब या तो तीसरे मिश्रगुणस्थानमें या चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें, या पांचवें देशविरतमें या सातवें अप्रमत्त-विरतमें जाता है। दूसरे गुणस्थानमें, नहीं जाता है।

यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि दूसरे गुणस्थानमें क्यों नहीं जाता ?

उत्तर-सिद्धांतमें चढ़ते हुए जीवके परिणामोंका ऐसा ही नियम बतलाया है कि मिथ्यात्वसे यदि ऊपरके गुण-स्थानोंमें जीव जावे तो ऊपर बतलाए हुए चार गुणस्थानों में से कोई गुणस्थानमें जावे। फिर कारण पाकर जब सम्यक्त्वसे च्युत होता है तब गिरते समय किसी अनंतानुबंधी क्रोध मान माया और लोभका उदय आजाय तो जीव परिणामोंसे गिरकर सासादन नामक दूसरे गुण-स्थानमें आ जाता है। इसका भी खुलाशा आगे प्रथमो-पशम सम्यक्त्व या द्वितीयोपशमसम्यक्त्वके कथनके अवसरपर किया जायगा।

प्रश्न—ऊपर आपने बतलाया है कि यह पहिले गुणस्थानसे दूसरेमें न जाकर तीसरे, चौथे पांचवें या सातवें गुणस्थानमें जाता है सो कैसें ?

उत्तर—यह जीव जब मिथ्यात्व गुणस्थानको छोड़ता है, मिथ्यात्वका उपशम करता है, तब अनादि मिथ्या दृष्टि जीव पांच लब्धियोंके परिणामोंसे मिथ्यात्वके तीन टुकड़े करता है। मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व, इन तीन रूपमें मिथ्यात्वको करता है। इन लब्धियोंके निमित्तसे मिथ्यात्वका उपशम होकर प्रथमो-

पशमस म्यक्त्व उपजाता है जिसका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है। जब इस सम्यक्त्वका काल समाप्त होनेको आता है तब तीन मिथ्यात्वमेंसे कोई एकका उदय आनेपर उस प्रकृतिके उदयके अनुसार आत्माके परिणाम होते हैं, उन परिमाणोंके योगसे वैसा गुणस्थान होजाता है; यदि मिथ्यात्वका उदय आजाय तो मिथ्यात्व गुनस्थान हो जाता है, यदि मिश्रमिथ्यात्वका उदय आजावे तो मिश्र-मिथ्यात्व नामका तीसरा गुणस्थान हो जाता है। यदि सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्वका उदय आजावे तो चौथा पांचवां या सांतवां गुणस्थान हो जाता है।

प्रश्न—यह तो समझमें आगया कि मिथ्यात्वके उदयसे प्रथम गुणस्थान और मिश्रमिथ्यात्वके उदयसे तीसरा गुणस्थान होता है परंतु सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय होने पर देशविरत और अप्रमत्तविरत कैसे हो जाते हैं?

उत्तर—अनादि मिथ्यादृष्टि हो या सादि मिथ्या-दृष्टि जीव हो उसके सम्यक्त्व तो उस समय है नहीं, ऐसे मौका पर जीवके अनंतानुबंधी चतुष्टयमेंसे किसी प्रकृति का उदय रहता है। ऐसे मौकेपर वह मिथ्यादृष्टि जीव कोई पुण्य प्रकृतिके उदयसे या कोई श्रेष्ठ सत्पात्र (विद्वान चारित्रवान) के उपदेशसे श्रावकव्रत या मुनिव्रत धारण कर लेवे तो बाह्य भेषसे तो वह श्रावक या मुनि होता है

परंतु परिणामोंमें वही मिथ्यादृष्टिपन मौजूद रहता है।
ऐसे जीवको यदि सम्यग्दर्शन हो जावे तो वह जीव उस समयपर परिणामोंमें तीव्र उच्चताका वेग रहनेसे पंचम गुणस्थान या सप्तम गुणस्थानमें चढ़ जाता है। अगर वह उस समय व्रती न होवे और सम्यक्त्व हो जावे तो उसकें चतुर्थ गुणस्थान हो जाता है। वही जीव उपशमसम्यक्त्व से क्षयोपशम सम्यक्त्वी हो सकता है। उस अवस्थामें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय हो जाता है, क्योंकि इस प्रकृतिका उदय क्षयोपशम सम्यक्त्व या वेदकसम्यक्त्वमें ही रहता है। इस क्षयोपशमसम्यक्त्वका काल (रहने की म्याद) ६६ सागर तक सिद्धांतशास्त्रोंमें बतलाई हैं। ऐसे समयमें जीव श्रावकके देशव्रत रूप पंचम गुनस्थान, तो यदि मुनिव्रत धारण कर लेवे तो छठवां या सातवां गुणस्थान धारण कर लेता है। इसका विशेष कथन चतुर्थ गुणस्थानका वर्णन करते समय करेंगे सो वहांसे जानना चाहिये।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वको कौन जीव किस हालत में धारण कर सकता है इस बातको खुलासा करने के लिये गाथामें कहते हैं कि—

चदुगदि मिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भजविसुद्धसागारो
पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धि चरमम्हि ॥

(लब्धिसार)

भावार्थ—चारों गतियोंमें रहनेवाले अनादि या सादि मिथ्या-दृष्टि संज्ञी (मन सहित जीव) पर्याप्त, गर्भज, (गर्भ जन्मसे उत्पन्न होनेवाला) मंद रूप क्रोधादि परिणामवाला अर्थात् मंदकषायी, विशुद्धिपनेका धारक, गुण दोषके विचार करने रूप साकार उपयोगका अवलंबी जो जीव है वही करणलब्धिके अनिवृत्तिकरणके अंत समयमें प्रथमोपशम-सम्यक्त्वको ग्रहण करता है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व होनेके पहिले मिथ्यात्व गुण-स्थानमें पांच लब्धियां होती हैं, उनके नाम, व उनके होने पर होनेवाले परिणामोंकी परिणतिको बतलाते हैं—

खयउवसमिय विसोही देसणापाउग्गकरणलद्धीय।
चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते॥

लब्धिसारक्षपणासारे।

अर्थ—लब्धियां पांच होती हैं (१) क्षयोपशमलब्धि (२) विशुद्धि या विसोही लब्धि (३) देशनालब्धि (४) प्रायो-ग्यलब्धि (५) करणलब्धि। इनमें चार लब्धियां तो सामान्य हैं भव्य और अभव्य दोनोंको होती हैं किंतु करणलब्धि सम्यक्त्वके संमुख होनेवाले विशुद्ध परिणामी भव्यकोही होती है। सातिशय मिथ्यादृष्टिके जब करण-लब्धि होती है उस समय सम्यक्त्वके उपजनेका नियम है। और सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानवाला करणोंके संमुख

होता है तब चारित्रमोहके उपशमावने व क्षपावनेका नियम है।

अब इन पांचों लब्धियोंका लक्षण कहते हैं—

(१) क्षयोपशमलब्धि—कर्मोंमें अप्रशस्त कर्म जो ज्ञानावरणादि प्रकृतिका समूह उसके अनुभाग जो रस देनेकी शक्ति समय २ प्रति अनंतगुणी घटती अनुक्रमसे उदय होती है—अर्थात् प्रथम समय जो रस दिया हो दूसरे समयमें उससे अनंतगुणा घटता हुवा रस देवे, उससे तीसरे समय अनंतगुणा घट रस देवे इस प्रकार प्रति समय अनंतगुणा २ घट रस देकर उदयमें आवे ऐसे क्रमको क्षयोपशमलब्धि कहते हैं।

क्षयोपशमलब्धिके प्रभावसे जीवकें सातावेदनीय आदि शुभ बंध करनेको कारण धर्मानुरागरूप शुभ परिणामोंकी प्राप्तिका होना सो विशुद्धि या विसोही-लब्धि है।

छह द्रव्य नौ पदार्थोंके उपदेश करनेवाले आचार्यादिकके संगमका लाभ होना, तथा उनके उपदेश की प्राप्ति होना, तथा उनके द्वारा उपदेश कियेहुए पदार्थ के धारण करनेकी शक्तिकी प्राप्ति होना सो देशनालब्धि है। और जहां नरकादिमें उपदेश देनेवाला नहीं है वहां पूर्व भवमें धारण किये हुए तत्त्वार्थ श्रद्धानके संस्कारके बलसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति जानना चाहिये।

ऊपर कही हुई तीन लब्धि सहित जीव प्रतिसमय परिणामोंकी विशुद्धतासे बढ़ता हुआ आयुकर्म बिना अन्य सात कर्मोंकी स्थिति अंतः कोटाकोटीसागर मात्र अवशेष राखे और घातियाकर्मोंकी लता दारु रूप और अघातिया कर्मोंकी निंब कांजीर रूप द्विस्थान गत अनुभाग जहां बाकी रहे उस समय प्रायोग्यलब्धि होती है। तथा घातियाकर्मोंकी अस्थि शैलरूप और अघातियाकर्मोंकी विष हालाहलरूप अनुभाग नहीं होय उस समय प्रायोग्यलब्धि होती है।

संक्लेश परिणामी, संज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होनेवाले जघन्य स्थितिबंध और उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेशबंधका सत्व, और विशुद्ध क्षपक श्रेणिमें होनेवाला जघन्य स्थितिबंध, और जघन्य स्थिति अनुभाग प्रदेशके सत्वके होनेपर जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण नहीं करता है। क्योंकि जघन्य स्थितिबंधादिकका करनेवाला जीव पहले ही सम्यग्दृष्टि होता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व के सन्मुख होनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव अपनी विशुद्धताकी वृद्धि कर बढ़ता हुआ प्रायोग्यलब्धिके प्रथम समयसे लेकर पूर्व स्थितिके संख्यातवें भाग मात्र अंतः कोटाकोटि सागर प्रमाण आयु बिना सात कर्मोंका स्थितिबंध करता है और ३४ बंधापसरण करता है।

पांचवीं करणलब्धिका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है उसमें अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ऐसे तीन करण रूप परिणाम कषायोंकी मंदताके चढ़ते हुए परिणाम हैं, इनका लक्षण ऊपर कहा जा चुका है। सविस्तार जाननेके इच्छुक भव्य श्रीलब्धिसारसे जानें। यहां इतना ही तात्पर्य जानना चाहिये कि तीसरे अनिवृत्तिकरणके अंत समयमें मिथ्यात्व और अनंतानुबंधीका उपशम होवे तब उपशमसम्यक्त्व प्रगट होता है।

बंधापसरणका स्वरूप—

तत्तो उदयसदस्स य पुधत्तमेत्तं पुणो पुणो दरिय।
बंधम्मि पयडम्हि य छेदपदा होंति चोत्तीसा॥

लब्धिसार।

उस अंतः कोटाकोटी सागर स्थितिबंधसे पल्यका संख्यातवां भाग मात्र घटता हुआ स्थितिबंध अंतर्मुहूर्ततक समानता लिये करता है। फिर उससे पल्यके संख्यातवें भाग घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्ततक करता है इस तरह क्रमसे संख्यात स्थितिबंधापसरणोंको करके पृथक्त्व (तीनसे ऊपर और नवसे नीचे) सौ सागर घटनेसे पहिला स्थितिबंधापसरण स्थान होता है। उसी क्रमसे उससेभी पृथक्त्व (सात व आठ) सौ सागर घटने से दूसरा प्रकृतिबंधापसरण स्थान होता है। इसी तरह

इसी क्रमसे उतना २ स्थितिबंध घटनेपर एक २ बंधापसरणस्थान होता है । ऐसे प्रकृतिबंधापसरणके चौतीस स्थान होते हैं। ऐसे चौतीस स्थानोंमें प्रकृति विच्छेद होती है—

बंधापसरणकी प्रकृतियें व उनके स्थानोंका खुलासा

नंबर	प्रकृति	प्रकृतियोंके नामका खुलासा
१	१	नरकायु, यहांसे लेकर नरकायुका बंध नहीं होता
२	१	तिर्यगायुका,
३	१	मनुष्यायुका,
४	१	देवायुका,
५	२	नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी,
६	१	सूक्ष्मपर्याप्त साधारणका,
७	१	सूक्ष्मअपर्याप्त प्रत्येकका,
८	१	वादरपर्याप्त साधारणका,
९	१	वादरपर्याप्त प्रत्येकका
१०	१	द्वि इन्द्रियजाति अपर्याप्तका,
११	१	त्रीन्द्रियजाति अपर्याप्तका,
१२	१	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तका,
१३	१	असैनीपंचेन्द्रिय अपर्याप्तका,

नंबर	प्रकृति	प्रकृतियोंके नामका खुलासा
१४	१	संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तका,
१५	१	सूक्ष्मपर्याप्त साधारणका,
१६	१	सूक्ष्मपर्याप्त प्रत्येकका,
१७	१	वादरपर्याप्त साधारणका,
१८	१	वादरपर्याप्त प्रत्येकका,
१९	१	द्विइन्द्रियपर्याप्तका,
२०	१	त्रीन्द्रियपर्याप्तका,
२१	१	चतुरिन्द्रियपर्याप्तका,
२२	१	असैनीपंचेन्द्रियपर्याप्तका,
२३	३	तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका,
२४	१	नीचगोत्रका,
२५	४	अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेयका,
२६	२	हुंडकसंस्थान, स्फाटिकसंहननका,
२७	१	नपुंसकवेदका,
२८	२	वामनसंस्थान, कीलितसंहननका,
२९	२	कुब्जकसंस्थान, अर्धनाराचसंहननका,
३०	१	स्त्रीवेदका,
३१	२	स्वातिसंस्थान, नाराचसंहननका,
३२	२	न्यग्रोधसंस्थान, वज्रनाराचसंहननका,

नंबर	प्रकृति	प्रकृतियोंके नामका खुलासा
३३	५	मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकांगोपांग, वज्रर्षभ-नाराचसंहननका,
३४	६	अस्थिर, अशुभ, अयश्कीर्ति, अरति, शोक, असातावेदनीयका,

इस प्रकार कहे हुए चौंतीस स्थान भव्य अथवा अभव्यजीवके समान रूपसे होते हैं—

अंतो कोड़ा कोडी ठिदं असत्थाण सत्थगाणं च ।
बिचउ ट्ठाण रसं च य बंधाणं बंधणं कुणई ॥
॥ २४ ॥ लब्धिसार ॥

अर्थः– प्रथमसम्यक्त्वके सन्मुख चारों गतिवाले मिथ्यादृष्टि जीव वध्यमान प्रकृतियोंके चौंतीस बंधापसरण स्थानोंमेंसे एक २ स्थानके प्रति पृथक्त्व सौ सागर घटता क्रम लिये हुए अंतःकोडाकोडी सागर प्रमाण स्थिति बांधता है । और प्रशस्त प्रकृतियोंके चार स्थानोंको प्राप्त समय २ अनंतगुणी वृद्धि करता है ।

प्रश्न–वे चार स्थान कौन २ से होते हैं ?

उत्तर–उन चार स्थानोंके नाम- स्थितिखंडन, अनुभागखंडन, गुणसंक्रमण, गुणश्रेणिआयामनिर्जरा । इनका

खुलासा आगे इसही गुणस्थानमें बतावेंगे वहांसे जानना चाहिये ।

तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं वोलिऊण भव्वोहु।
करणं करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं ॥
॥ ३३ ॥ लब्धिसार ॥

अर्थः- उसके बाद अभव्यके योग्यभी जो चार लब्धि रूप परिणामोंको समाप्तकर भव्यजीवही अधःप्रवृत व अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीनों करणोंको करता है । इन तीनों करणोंका विशेष स्वरूपादि कथन पहिले किया जाचुका है । जीवकांडके गुणस्थानाधिकारमें व कर्मकांडके त्रिकरणचूलिकाधिकारमें हैं वहांसे जानना चाहिये ।

तीनोंही करणोंका काल हरएकका अंतर्मुहूर्त होता है तोभी ऊपरसे संख्यातगुणा क्रम लिए हुए है । अनिवृत्ति-करणका काल सबसे थोडा है, उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है, और अपूर्वकरणसे संख्यातगुणा अधः-प्रवृतकरणका काल है ।

प्रकरणवश यहां फिरसे इन तीनों करणोंका वर्णन किया जाता है—

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥
॥ ४८ ॥ जीवकांड॥

अर्थः—अधःप्रवृत्तकरणके कालमेंसे ऊपरके समयवर्ती जीवोंके परिणाम नीचेके समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके सदृश- अर्थात् संख्या और विशुद्धिकी अपेक्षा समान होते हैं; इसलिये प्रथम करणको शास्त्रमें अधःप्रवृतकरण कहा है।

अधःप्रवृत्तकरणके काल और उसमें होनेवाले परिणामोंका प्रमाण बतलाते हैं:—

अंतो मुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा।
लोगाणमसंखमिदा उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥

अर्थः-इस अधःप्रवृत्तकरणका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है और उसमें परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं और ये परिणाम ऊपर २ सदृश वृद्धिको प्राप्त होते गये हैं- अर्थात् ये जीव चारित्रमोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियोंका उपशम या क्षय करनेके लिये अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणको करता है। उसमेंसे अधःकरण श्रेणि चढ़नेके सन्मुख सातिशय अप्रमत्तके होता है। और अपूर्वकरण आठवें तथा अनिवृत्तिकरण नौमें गुणस्थानमें होता है। ऊपर कहे हुए कथनका खुलासा विना दृष्टांतके नहीं हो सकता इसलिये इसका दृष्टांत निम्न प्रकार समझना चाहिये:-

कल्पना करो कि अधःकरणके कालके समयोंका प्रमाण १६, अपूर्वकरणके कालके समयोंका प्रमाण ८,

और अनिवृत्तिकरणके कालके समयोंका प्रमाण ४ है। अधःकरणके परिणामोंकी संख्या ३०७२, अपूर्वकरणके परिणामोंकी संख्या ४०९६ और अनिवृत्तिकरणके परिणामोंको संख्या केवल ४ हैं। एक समयमें एक जीवके एकही परिणाम होता है। इसलिये एक जीव अधःकरणके १६ समयों में १६ परिणामोंको ही धारण कर सकता है। अधःकरण और अपूर्वकरणके परिणाम जो १६ और ८ से ज्यादा कहे गये हैं वे नाना जीवोंकी अपेक्षासे कहे गये हैं। यहां इतना विशेष है कि अधःकरणके १६ समयोंमेंसे प्रथम समयमें यदि कोईभी जीव अधःकरण माडेगा तो उसके अधःकरणके समस्त परिणामोंमेंसे पहिले १६२ परिणामोंमेंसे कोई एक परिणाम होगा अर्थात् तीन कालमें जब कभी चाहे जब चाहे जो अधःकरण माडेगा तो उसके पहिले समयमें नं. १ से लगाकर नं. १६२ तकके परिणामोंमेंसे उसकी योग्यताके अनुसार कोई एक परिणाम होगा। इसीप्रकार किसीभी जीवके उसके अधःकरण माडनेके दूसरे समयमें नं ४० से लगाकर नं. २०५ तक १६६ परिणामोंमेंसे कोई एक परिणाम होगा। इसही प्रकार तीसरे चौथे आदि समयोंमेंभी क्रमसे नं. ८० से लगाकर २४५ तक १७० परिणामोंमेंसे कोई एक और १२१ से लगाकर २९४ तकके १७४ परिणामोंमेंसे कोई एक परिणाम होगा। इसीतरह आगेके समयोंमें होनेवाले परिणाम

गोमटसारकी बड़ी टीकामें या सुशीला उपन्यासमें दिये हुए यंत्र द्वारा समझ लेना चाहिये।

इस अधःकरणके परिणाम समान बढ़तीको लिये हुए हैं—अर्थात् पहिले समयके परिणामसे दूसरे समयके परिणाम जितने अधिक हैं उतने ही उतने द्वितीयादिक समयोंके परिणामोंसे तृतीयादिक समयोंके परिणाम अधिक हैं। ऐसी समान बढ़तीको ही चय कहते हैं। इस दृष्टांत में चयका प्रमाण ४ है, स्थानका प्रमाण १६ और सर्व धनका प्रमाण ३०७२ है। प्रथम स्थानमें वृद्धिका अभाव है। इसलिये अंतिम स्थानमें एक कम स्थान प्रमाण चय बढ़ा हुआ है इसलिये एक कम स्थानके आधेको चयसे और स्थानसे गुणा करने से $\frac{१५\times४\times१६}{२} = ४८०$ चय धनका प्रमाण होता है। अर्थात् पहिले समयके समान संपूर्ण समयोंमें परिणामोंको भिन्न समझकर वर्धित प्रमाण के जोड़को चयधन कहते हैं। सर्वधनमेंसे चयधनको घटाकर शेषमें स्थानका भाग देनेसे प्रथम समय संबंधी परिणामपुंजका प्रमाण $\frac{३०७२-४८०}{१६} = १६२$ होता है। इसमें क्रमसे एक २ चय जोड़नेसे द्वितीयादिक समयोंके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। एक कम पद (स्थान)

प्रमाण चय मिलानेसे अंत समय संबंधी परिणामपुंजका प्रमाण १६२+१५×४=२२२ होता है। एक समय में अनेक परिणामोंकी संभावना है इसलिये एक समयमें अनेक जीव अनेक परिणामोंको ग्रहण कर सकते हैं। अत एव एक समयमें नानाजीवोंकी अपेक्षासे परिणामोंमें विसदृशता है। एक समयमें अनेक जीव एक परिणामको ग्रहण कर सकते हैं इसलिये एक समयमें नानाजीवोंकी अपेक्षासे परिणामोंमें सदृशता है। भिन्न समयोंमें अनेक २ जीव परिणामोंको ग्रहण कर सकते हैं। इसलिये भिन्न समयों में नाना जीवोंकी अपेक्षासे परिणामोंमें विसदृशता है।

जो परिणाम किसी एक जीवसे प्रथम समयमें हो सकता है वही परिणाम किसी दूसरे जीवके दूसरे समयमें और तीसरे जीवके तीसरे समयमें, तथा चौथे जीवके चौथे समयमें हो सका है। इसलिये भिन्न समयवर्ती अनेक जीवोंके परिणामोंसे सदृशता भी होती है। जैसे १६२ नम्बरका परिणाम प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ समयमें हो सकता है। प्रथम समय संबंधी परिणामपुंजके ३९-४०-४१-४२ इस तरह चार खंड किये गये हैं। अर्थात् नं. १ से लेकर ३९ नं. तक के ३९ परिणाम ऐसे हैं कि जो प्रथम समयमें ही पाये जाते हैं द्वितीयादिक समयोंमें नहीं। इन्हीं ३९ परिणामोंके पुंजको प्रथम खंड कहते हैं। दूसरे खंडमें

नं. ४० से ७९ तक ४० परिणाम ऐसे हैं जो प्रथम और द्वितीय समयमें पाये जाते हैं। इसको द्वितीय खंड कहते हैं। तीसरे खंडमें नं. ८० से १२० तक ४१ परिणाम ऐसे हैं जो प्रथम, द्वितीय, तृतीय, समयोंमें पाये जाते हैं और चतुर्थ खंडमें नं. १२१ से १६२ तक ४२ परिणाम ऐसे हैं जो आदिके चारों ही समयोंमें पाये जा सकते हैं। इसी प्रकार अन्य समयोंमें भी समझना चाहिये। अधः-करणके ऊपर २ के समस्त परिणाम पूर्व २ परिणामकी अपेक्षा अनंत २ गुणी विशुद्धता लिये हुए है।

अब अपूर्वकरणको कहते हैं —

अंतो मुहुत्तकालं गमिऊण अधःपवत्तकरणं तं।
पडिसमयं सुज्झंतो अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥

॥ जीवकाण्डे ॥

अर्थ—अंतर्मुहूर्तकालवाले अधःप्रवृतकरणको बिताकर सातिशय अप्रमत्तवाला जीव जब प्रतिसमय अनतंगुणी विशुद्धिको लियेहुए जो पहिले नहीं पाये गये ऐसे विशुद्ध परिणामोंको करता है तब उसको अपूर्वकरण नामक अपूर्वकरण गुणस्थानवाला कहते हैं। जिस प्रकार अधःक-रणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश और विसदृश दोनोंही प्रकारके होते हैं वैसा अपूर्वकरणमें नहीं है।

किन्तु यहांपर भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृशही होते हैं सदृश नहीं होते। अपूर्वकरणमें भिन्नसमयवर्ती जीवोंमें विशुद्ध परिणामोंकी अपेक्षा कभीभी सादृश्य नहीं पाया जाता किन्तु एक समयवर्ती जीवोंमें सादृश्य और वैशादृश्य दोनोंही पाये जाते हैं। अधःकरणके कालसे अपूर्वकरणका काल यद्यपि संख्यातगुणा हीन है तथापि सामान्यरूपसे अंतर्मुहूर्तमात्रही है। इसमें परिणामोंकी संख्या अधःप्रवृतकरणके परिणामोंकी संख्यासे असंख्यात लोक गुणी है। इन परिणामोंमें आगे २ प्रतिसमय समान वृद्धि होती गई है अर्थात प्रथम समयके परिणामोंसे जितने अधिक द्वितीय समयके परिणाम हैं उतनेही उतने अधिक द्वितीयादि समयोंके परिणामोंसे तृतीयादि समयोंके परिणाम हैं। तथा जिस प्रकार अधःप्रवृत करणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें सादृश्य पाया जाता है इसलिये वहांपर अनुकृष्टि रचना की है उस प्रकार अपूर्वकरणमें अनुकृष्टि रचना नहीं होती, क्योंकि भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें यहां सादृश्य नहीं पाया जाता। इसकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—सर्वधनका प्रमाण ४०९६ है, चयका प्रमाण १६ और स्थान या पदका प्रमाण ८ है। एक कम पदके आधेको चय और पदसे गुणा करनेपर चयधनका प्रमाण $\frac{७\times१६\times८}{२} = ४४८$

होता है। सर्व धनमेंसे चय धनको घटाकर पदका भाग देनेसे प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंजका प्रमाण $\frac{४०९६-४४८}{८}$=४५६ होता है इनमें एक २ चय जोड़ने पर द्वितीयादिक समयोंमें होनेवाले परिणामोंका प्रमाण निकलता है। इसमें एक कम पदप्रमाण चय जोड़नेसे अंतसमयसंबंधी परिणामोंका प्रमाण ४५६+७×१६=५६८ होता है।

अब अनिवृत्तिकरणको कहते हैं—

एकह्मि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहाविय परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥

अर्थ—अन्तर्मुहूर्तमात्र अनिवृत्तिकरणके कालमेंसे आदि, मध्य या अन्तके समयवर्ती अनेक जीवोंमें जिस प्रकार शरीरकी अवगाहना आदि बाह्य कारणोंसे तथा ज्ञानावरणादिक कर्मके क्षयोपशमादि अंतरंग कारणोंसे परस्परमें भेद पाया जाता है उस प्रकार जिन परिणामोंके निमित्तसे भेद नहीं पाया जाता है उन्हें अनिवृत्तिकरण परिणाम कहते हैं। अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उतनेही परिणाम हैं। इसलिये उसके कालके प्रत्येक समयमें अनिवृत्तिकरणका एक २ ही परिणाम होता है। तथा ये परिणाम अत्यंत निर्मल ध्यानरूपी

अग्निकी शिखाओंकी सहायतासे कर्मवनको भस्म कर देते हैं। तात्पर्य ये है कि अनिवृत्ति करणका जितना काल है उतने ही उसके परिणाम हैं। इसलिये हर एक समयमें एक ही परिणाम होता है। अत एव यहां पर भिन्न समयवर्ती परिणामोंमें सर्वथा विसदृशता और एक समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें सर्वथा सादृश्यता ही पाई जाती है। इन परिणामोंसे ही आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी गुणश्रेणिनिर्जरा, गुणसंक्रमण. स्थितिखंडन, अनुभागकांडकखंडन होता है और मोहनीय कर्मकी वादरकृष्टि सूक्ष्मकृष्टि आदि होती हैं।

अधःप्रवृत्तकरणमें प्रवृत्ति—

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिरसखंडे च णत्थि पढमम्हि।
पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु॥ ३७॥

लब्धिसारे॥

अर्थ—जो पहिला अधःप्रवृत्तिकरण है उसमें गुणश्रेणि, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात नियमसे नहीं होते। यहां समय २ अनंतगुणी विशुद्धता बढ़ती ही रहती है इस करणके पहिले कालमें पहिले समयकी अंतःकोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण स्थितिवध से उसके अंत समयमें संख्यातगुणी हीन स्थितिबंध नियमसे होता है।

अपूर्वकरणमें प्रवृत्ति—

पढमं व विदियकरणं पडिसमयमसंखलोगपरिणामा
आहियकमाहु विसेसे मुहुत्तअंतोहु पडिभागो ॥५०॥
लब्धिसारे

अर्थः—पहले अधःप्रवृत्तकरणकी तरह दूसरे अपूर्व-करणके परिणाम होते हैं उसमें इतनी विशेपता है कि असंख्यात लोक मात्र अधःकरणके परिणामोंसे अपूर्व-करणके परिणाम असंख्यात लोक गुणित हैं, क्योंकि इस गुणस्थानमें पहिले गुणस्थानकी अपेक्षा विशुद्धि विशेष है।

अपूर्वकरणके पहिले समयसे अन्ततक सम्यक्त्वमोह-नीय, मिश्रमोहनीयका पूर्ण काल है, अर्थात् जिस कालमें गुणसंक्रमणसे मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनीय मिश्रमोह-नीयरूप परिणमाता है, उस कालके अंत समयतक गुणश्रेणि, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन, अनुभागखंडन ये चार प्रकार आवश्यक होते हैं।

यद्यपि प्रायोग्यलब्धिसेही स्थितिबंधापसरण होता है, तबभी प्रायोग्यलब्धिसे सम्यक्त्व होनेका नियम नहीं है इससे ग्रहण नहीं किया। जिन प्रकृतियोंका उदय पाया जाता है उन्हींके द्रव्यका उदयावलीमें निक्षेपण होता है।

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमादि अप्पसत्थाणं।

बंधुज्झिय पयडीणं बंधं संजादि पयडीसु ॥
॥ ७५ ॥ लब्धिसारे ॥

अर्थः-जिनका बंधन पाया जावे ऐसी अप्रशस्त प्रकृतियोंका द्रव्य है, वह द्रव्य समय २ प्रति असंख्यातगुणा क्रम लिये जिनका बंध पाया जावे ऐसी स्वजाति प्रकृतियोंमें संक्रमण करता है, अर्थात् वह प्रकृति अपने स्वरूपको छोड़ कर पररूप परिणम जाता है। क्योंकि संक्रमणमें एक प्रकृति सजातीय दूसरी प्रकृतिरूपमें परिणम जाती है।

विदियं व तदियकरणं पडिसमयं एक एक परिणामो
अण्णं ठिदिरसखंडे अण्णंठिदिबंधमाणुवइ ॥
॥ ८३ ॥ लब्धिसार ॥

अर्थः—दूसरे अपूर्वकरणमें कहे हुए स्थितिखंडादिकार्य अनिवृत्तिकरणमेंभी जानने चाहिये। लेकिन इतनी विशेषता है कि-प्रतिसमय इस करणमें एकही परिणाम होता है, और यहां अन्य ही प्रमाण लिये स्थितिखंड, अनुभागखंड, तथा स्थितिबंधका प्रारंभ होता है। इस तरह स्थितिखंडादि कर अनिवृत्तिकरण कालका असंख्यातवां भाग बाकी रहने पर दर्शनमोह (अन्तर) अभाव करता है। एक स्थितिखंडोत्करणकालमें अन्तरकरणकी उत्पत्ति होती है। उस अन्तरकरणका काल अंतर्मुहूर्तमात्रही होता है।

अंतर पढमं पत्ते उवसमणामो हु तत्थ मिच्छत्तं ।
ठिदि रसखंडेण विणा उवइट्ठादूण कुणदि तदा ॥
॥ ८९ ॥ लब्धिसार ॥

अर्थः-इस तरह अनिवृत्तिकरणकालके समाप्त होनेपर उसके बाद अन्तरायामके प्रथम समयको प्राप्त होते हैं। दर्शनमोह और अनंतानुबधी चतुष्कका उपशम होनेसे यह जीव तत्वार्थ श्रद्धानरूप उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। वहां द्वितीय स्थितिके प्रथम समयमें मौजूद मिथ्यात्व द्रव्यको स्थितिकांडक, अनुभागकांडकके घातके विना गुणसंक्रमणका भाग देकर तीन प्रकार परिणमाता है। वह मिथ्यात्वद्रव्य, मिथ्यात्व, मिश्रमिथ्यात्व, सम्यक्त्व-मोहनीय रूप तीन तरहका होता है। जिस अंतरायामके प्रथम समयमें संख्यात हजार सागरसे कम अंतःकोडाकोडी सागरमात्र कर्मोंका स्थितिसत्व होता है उस समयमें जीव उपशम सम्यक्त्व गुणको ग्रहण करता है।

उक्त अंतरायामके प्रथम समय रूप स्थानमें जो देशसंयम सहित प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करे तो उसका स्थितिसत्व पूर्व कहे हुएसे संख्यातगुणा कम है।

दर्शनमोहके उपशम करनेवाले सभी जीव मरण रहित होते हैं। और सासादनको प्राप्त नहीं होते। उप-

शम हो जानेके बाद सम्यक्त्वी हुए कोई जीव सासादन को प्राप्त होतेभी हैं और नहीं भी होते।

उपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त होनेबाद सासादन गुणस्थान नहीं होता है। वहां नियमसे दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंमेंसे एकका उदय होता है। सादि मिथ्यादृष्टि जीवके सात प्रकृतिकी सत्ता रहती है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व एक जीवको असंख्यातबार होता है। परंतु वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही कहलाता है द्वितीयोपशमसम्यक्त्व नहीं कहलाता है। क्योंकि द्वितीयोपशमसम्यक्त्व उसको कहा गया है जहांपर अनंतानुबंधी चतुष्टयका विसंयोजन करके सप्तम गुणस्थानमें दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंका उपशम किया जाता है।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके जब पहिले पहल सम्यक्त्व होता है तो उपशमसम्यक्त्वही होता है। उस पहिले पहलके सम्यग्दर्शनसे नियमसे मिथ्यात्व ही होता है। ऐसा अमितगति आचार्यने अपने अमितिगति श्रावकाचारमें कहा है। तदुक्तं—

निशीथं वासरस्येव निर्मलस्य मलीमसम्।
पश्चादायाति मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं चास्य निश्चितम्॥
॥ ४१ ॥ २ ॥

अर्थः—जैसे निर्मल दिनके पीछे अवश्यही मलीन (काली) रात्रि आती है, उसी तरह प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अंतर्मुहूर्त पीछे अवश्यही मिथ्यात्वका उदय आता है, इसमें किसी प्रकारभी संदेह नहीं है।

इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानका कथन समाप्त हुवा।

सासादन गुणस्थान—

आदिम सम्मत्तद्धा समयादो छावलित्ति वा सेसे
अणअण्णदरुदयादो णासियसम्मोत्ति सासणक्खो सो

॥ १९ ॥ जीवकाण्डे ॥

अर्थः—प्रथमोपशमसम्यक्त्वके व द्वितीयोपशमसम्यक्त्वके अंतर्मुहूर्तमात्र कालमेंसे जब कमसे कम एक समय और ज्यादासे ज्यादा छह आवली प्रमाण काल अवशेष रहता है तब अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभमेंसे किसीकेभी उदयसे सम्यक्त्वकी विराधना होनेपर सम्यग्दर्शन गुणकी जो अव्यक्त अतत्वश्रद्धान रूप परिणति होती है उसको सासन या सासादन (सम्यक्त्वको विराधना करनेवाला) गुणस्थान कहते हैं। इसी भावको एक दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं—

सम्यक्त्वरूपी रत्न पर्वतकी शिखरसे गिरकर जो

जीव मिथ्यात्व रूप भूमिके सन्मुख हो चुका है, जिसने सम्यक्त्वकी विराधना करदी है और मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं किया है उसको सासादन गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

इस गुणस्थानमें किस २ प्रकृतिका बंध, उदय, सत्व और इनकी व्युच्छित्ति होती है यह हम पहिले सामान्यरूपसे बतला चुके हैं-अब इस गुणस्थानमें विशेष रूपसे बतलाते हैं और यह भी बतलाते हैं कि कौन २ भाव होते हैं व किस २ प्रकृतिका आस्रव होता है:-

इस गुणस्थानमें जीवके ३२ भाव होते हैं-

१० क्षयोपशमके १० भाव-कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

२० औदयिकके २० भाव-नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्णलेश्या, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ललेश्या।

२ पारिणामिकके २ भाव-जीवत्व, भव्यत्व।

इन भावोंसे जीव त्रिकालमें भी संसारभ्रमणसे नहीं छूट सकता। न अपने स्वरूपको प्राप्त कर सकता इसलिये

ऐसे भाव छोडने ही योग्य हैं।

इस गुणस्थानमें जीवके ५० ही आश्रव होते हैं—

१२- अविरति १३- योग और २५- कषाय।

१२ अविरति-५ स्थावरजीवोंकी और १ त्रसकी रक्षा नहीं करना तथा ५ इन्द्रियोंको और १ मनको वशमें नहीं करना।

१३ योग- मनके ४- सत्यमनयोग, असत्यमनयोग, उभयमनयोग, अनुभयमनयोग।
वचनके ४- सत्यवचन १ असत्यवचन २ उभयवचन ३ अनुभयवचन ४।
काययोगके ५- औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्माणकाययोग।

२५ कषाय- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, नोकषायमें- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

ये कषाय ही जीवको राग द्वेष होनेके कारण हैं। इनसे जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रसे वंचित रहता है। और भी कई प्रकारके दोष उत्पन्न करता है।

इस गुणस्थानमें बंध योग्य प्रकृतियां १०१ हैं इनका खुलासा नीचे लिखे अनुसार है–

ज्ञानावरणीकी ५ दर्शनावरणीकी ९ चारित्रमोहनीयकी २४ (नपुंसकवेद विना) अंतरायकी ५ गोत्रकी २ वेदनीयकी २ आयुकी ३ (नरकायुके विना)

नाम कर्मकी ५१–गति ३- तिर्यंच, मनुष्य, देव। जाति १- पंचेंद्रिय। शरीर ४- औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण। आंगोपांग २- औदारिक आंगोपांग और वैक्रियिक आंगोपांग। संस्थान ५- समचतुरस्र, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामनसंस्थान। संहनन ५- वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक। स्पर्शादिक ४ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण। गत्यानुपूर्वी ३- तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी। अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ उद्योत १ विहायोगति २- प्रशस्त और अप्रशस्त, त्रस १ बादर १ पर्याप्त १

प्रत्येक १ स्थिर १ शुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ अनादेय १ यशःकीर्ति १ अयशःकीर्ति १ निर्माण १ अथिर १ असुभग १ दुर्भग १ दुःस्वर १

२५ बंधकी व्युच्छित्ति योग्य प्रकृतियां—

६- चारित्रमोहकी ५- अनंतानुबंधी चतुष्टय ४ स्त्रीवेद १ तिर्यंचायु १

३- दर्शनावरणीकी- निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला १ स्त्यानगृद्धि १

१- नीचगोत्र १- इसकी व्युच्छित्ति यहांही हो जाती है।

१५- नामकर्मकी- दुर्भग १ दुःस्वर १ अनादेय १ न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान १ स्वातिसं. १ कुब्जकसं. १ वामनसं. १ वज्रनाराचसंहनन १ नाराचसंह. १ अर्धनाराचसंह. १ कीलकसंह. १ असंप्राप्तास्फाटिकसंहनन १ तिर्यग्गति १ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी १ उद्योत १

१११-उदय योग्य प्रकृतियां—

५२- ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ९, चारित्रमोह २५, अंतराय ५, आयु ४, गोत्र २ वेदनीय २

५९- नामकर्मकी– गति ४ जाति ५ शरीर ४ (आहारक विना) संस्थान ६, संहनन ६ आंगो-

पांग २ (आहारक विना) स्पर्शादि ४ आनुपूर्वी ३ (नारकी विना) अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उद्योत १ उच्छ्वास विहायोगति २ त्रस १ स्थावर १ बादर १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अनादेय १ पर्याप्त १ यशःकीर्ति १ अयशःकीर्ति १ निर्माण १ असुभग १ दुर्भग १ प्रत्येकशरीर १।

१२. उदयमें व्युच्छित्ति योग्य प्रकृतियां—

अनंतानुबंधी ४ जाति ४ (पंचेन्द्रियके विना) गत्यानुपूर्वी ३ (मनुष्यगत्यानुपूर्वीके विना) स्थावरनामकर्म १

१४५- सत्वयोग्य प्रकृतियां—

४२- ज्ञानावर्ण ५ दर्शनावर्ण ९ दर्शनमोह ३ चारित्रमोहनीय २५

१३- अंतराय ५ आयुकी ४ गोत्रकर्मकी २ वेदनीयकी २

९०- नामकर्मकी- गति ४, जाति ५, शरीर ४ (आहारक विना) आंगोपांग २ (आहारक विना) निर्माण १, बंधन ५, संघात ५, संस्थान ६, सहनन ६, वर्ण ५, रस ५, गंध २

स्पर्श ८, आनुपूर्वी ४, अगुरुलघु १, उपघात१ परघात १, आतप १, उद्योत १, विहायोगति १, उच्छ्वास १, त्रस १, स्थावर १, वादर १ सूक्ष्म १, पर्याप्त १, अपर्याप्त १, प्रत्येक १ साधारण १, स्थिर १, अस्थिर १, शुभ १, अशुभ १, सुभग १, दुर्भग १, सुस्वर १, दुःस्वर १, आदेय १, अनादेय १, यशःकीर्ति १, अयशःकीर्ति १ ऐसे मिलकर ९०।

१· सत्वमें व्युच्छित्ति प्रकृति—तीर्थंकर प्रकृति १।

यह गुणस्थान जब जीव सम्यग्दर्शनसे गिरता है तब होता है, न कि चढते समय, चाहे प्रथमोपशमसम्यक्त्व हो या द्वितीयोपशमसम्यक्त्व हो।

इस गुणस्थानवाले जीवका नीचे लिखे चारों स्थानों में जन्म नहीं होता—

(१) पृथिवीकायिक, जलकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद और सूक्ष्मजीवोंमें।

(२) स्थान– सातों नरकोंके जीवोंमें जन्म नहीं होता।

(३) स्थान– अग्निकायिकके सूक्ष्म, वादर जातिके जीवोंमें।

(४) स्थान— वायुकायिक सूक्ष्म, बादरजातिके जीवोंमें जन्म नहीं होता।

इस प्रकार दूसरे गुणस्थानका वर्णन समाप्त हुआ।

तृतीय मिश्रगुणस्थानका वर्णन—

तदुक्तं गोमट्टसार जीवकांडे—

सम्मामिच्छुदयेण य जत्तंतरसव्वधादिकज्जेण।
णय सम्मं मिच्छं पि य सम्मिस्सो होदि परिणामो॥२१॥

अर्थ—जिसका प्रतिपक्षी आत्माके गुणको सर्वथा घातनेका कार्य दूसरी सर्वघाति प्रकृतियोंसे विलक्षण जातिका है उस जात्यंतर सर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे केवल सम्यक्त्वरूप या मिथ्यात्वरूप परिणाम होता है उसको तीसरा मिश्रगुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न-यह तीसरा गुणस्थान बन नहीं सकता? क्योंकि मिले हुए परिणाम ही नहीं हो सकते। यदि विरुद्ध दो प्रकारके परिणाम एकही आत्मामें एकही कालमें माने जांयगे तो शीत उष्णकी तरह परस्पर सहानवस्था लक्षण विरोध दोष आवेगा। यदि क्रमसे दोनों परिणामोंकी उत्पत्ति मानी जायगी तो मिश्ररूप तीसरा गुणस्थान नहीं बनसकता?

उत्तर-यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि मित्र शत्रु न्यायसे

एक कालमें एकही आत्मामें मिश्ररूप परिणाम हो सकते हैं। जिस प्रकार—देवदत्त नामक किसी मनुष्यमें यज्ञदत्तकी अपेक्षा मित्रपना और चैत्रकी अपेक्षा शत्रुपना ये दोनों धर्म एकही कालमें रहते हैं। उनमें कोई विरोध नहीं आता, उसी प्रकार सर्वज्ञदेव द्वारा कहे गये पदार्थके स्वरूपके श्रद्धानकी अपेक्षा समीचीनता और सर्वज्ञाभास (जो सर्वज्ञ तो नहीं है पर सर्वज्ञ सरीखा भासे उसे सर्वज्ञाभास कहते हैं) के द्वारा कहे हुए असत्य श्रद्धानकी अपेक्षा मिथ्यापना ये दोनोंही धर्म एक काल एक आत्मामें रह सकते हैं इसमें कोई भी विरोधादि दोष नहीं आ सकते। इसी अर्थको एक दृष्टांत द्वारा समझाते हैं—

जिस प्रकार दही और गुडको परस्पर इस तरह मिलाने पर कि फिर उन दोनोंको पृथक् २ नहीं कर सकते, उस द्रव्यके प्रत्येक परमाणुका रस मिश्ररूप (खट्टा और मीठा मिला हुवा) होता है उसही प्रकार मिश्र परिणामोंमेंभी एकही कालमें सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप परिणाम रहते हैं ऐसा समझना चाहिये।

तृतीय गुणस्थानवाला जीव सकलसंयम या देश-संयमको ग्रहण नहीं कर सकता है और न इस गुणस्थान

में परभवकी आयुकर्मका बंध ही होसकता है। तथा इस गुणस्थानवाला जीव यदि मरण करता है तो नियमसे सम्यक्त्वरूप या मिथ्यात्वरूप परिणामोंको प्राप्त करकेही मरण करता है, किंतु इस गुणस्थानमें मरण नहीं करता।

तृतीय गुणस्थानवाले जीवने तीसरे गुणस्थानको प्राप्त करनेके पहिले सम्यक्त्व या मिथ्यात्वरूपके परिणामोंमेंसे जिस जातिके परिणाम कालमें आयुकर्मका बंध कियाहो उसही तरहके परिणामोंके होनेपर उसका मरण होता है, किंतु मिश्रगुणस्थानमें मरण नहीं होता, और न इस गुणस्थानमें मारणांतिक समुद्घातही होता है, (मूल शरीरको विना छोडेही आत्माके प्रदेशोंका बाहिर निकलनाही समुद्घात कहलाता है) उसके सात भेद हैं- वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवल समुद्घात। मरण करनेके पहिले समयमें होने वाले समुद्घातको मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं परंतु किसी २ आचार्यके मतके अनुसार इस गुणस्थानमेंभी मरण हो सकता है।

इस गुणस्थानमें होनेवाले भावोंको कहते हैं।

इस गुणस्थानमें जीवके ३२ भाव होते हैं-१० क्षयोपशमके

२१ औदयिकके, २ पारिणामिकके।

१०- क्षयोपशमके- कुमति, कुश्रुति, कुअवधि, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

२१- औदयिकके- गति ४ (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव) कषाय ४ (क्रोध, मान, माया, लोभ) वेद ३ (स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद) मिथ्यादर्शन १ अज्ञान १ असंयत १ असिद्धत्व १ लेश्या ६ (कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल)

२- पारिणामिकभाव- जीवत्व, भव्यत्व।

इस गुणस्थानमें ४३ आस्रव होते हैं:— अविरत १२ योग १० कषाय २१=४३

१२- अविरति- ५ स्थावर १ त्रस इन ६ कायके जीवोंकी दया नहीं पालना, ५ इन्द्रियां और छट्ठा मन इनको वशमें नहीं करना।

१०- योग- ४ तो मनके और ४ वचनके, औदारिक काययोग १ वैक्रियिककाययोग १।

२१- कषाय- अप्रत्याख्यान ४ प्रत्याख्यान ४ संज्वलन ४ हास्यादिक ९।

७४ बंध योग्य प्रकृतियां—

९- ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी-चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शना०, अवधिदर्शना०, केवलदर्शनावरण

१० निद्रा १ प्रचला १ उच्चगोत्र १ अंतरायकी ५ वेदनीयकी २ ।

१९- चारित्रमोहकी १२- अप्रत्याख्यानी ४ प्रत्याख्यानी ४ संज्वलनकी ४. नोकषायमें ७ (स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके विना)

३६- नामकर्मकी- मनुष्यगति १ देवगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ४ (औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण) आंगोपांग २ (औदारिकांगोपांग, वैक्रियिकांगोपांग) संहनन १ (वज्रवृषभनाराच) समचतरस्रसंस्थान १ स्पर्श १ रस १ गंध १ वर्ण १ मनुष्यगत्यानुपूर्वी १ देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ प्रशस्तविहायोगति १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ शुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ अस्थिर १ अशुभ १ अयशःकीर्ति १ ।

इस गुणस्थानमें बंधकी व्युच्छित्ति नहीं होती ।

१००- उदय योग्य प्रकृतियां-ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ९ वेदनीय २ मोहनीयमें दर्शनमोहनीयकी मिश्रमिथ्यात्व १ चारित्र मोहनीयकी २१ अनंतानुबंधीके सिवाय । आयुकी ४ गोत्र २ अंतराय ५ यहां तक ४९ प्रकृतियां हुई ।

५१- नामकर्मकी- गति ४ जाति पंचेन्द्रिय १ शरीर ४ औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण, संस्थान ६ संहनन ६ आंगोपांग २ (औदारिक वैक्रियिक) स्पर्शादिक ४ अगुरुलघु १ उपघात १, परघात १ उच्छ्वास १ उद्योत १ विहायोगति २ त्रस १ बादर १ स्थिर १ शुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ पर्याप्त १ यशःकीर्ति १ अस्थिर १ निर्माण १ असुभ १ दुर्भग १ दुःस्वर १ अनादेय १ अयशःकीर्ति १ प्रत्येक १ ।

१- इस गुणस्थानके अंतसमयमें मिश्रमिथ्यात्वके उदयकी व्युच्छित्ति होती है ।

१४७- सत्व प्रकृतियां-

४२- ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ९ मोहमें दर्शनमोह ३ चारित्रमोह २५ ।

१३- अन्तराय ५ आयुकी ४ गोत्रकी २ वेदनीयकी २

९२- नामकर्मकी–

२७ गति ४ जाति ५ शरीर ५ आंगोपांग ३
बंधन ५ संघात ५ ।

३२ संस्थान ६ संहनन ६ वर्ण ५ रस ५
गंध २ स्पर्श ८ ।

८ आनुपूर्वी ४ अगुरुलघु १ उपघात १
परघात १ आतप १ ।

७ उद्योत १ विहायोगति २ उच्छ्वास १
त्रस १ स्थावर १ बादर १ ।

७ सूक्ष्म १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ प्रत्येक १
साधारण १ स्थिर १ अस्थिर १ ।

८ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ दुर्भग १
सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अनादेय १

३ यशःकीर्ति १ निर्माण १ अयशःकीर्ति १

इस गुणस्थानमें सत्वकी व्युच्छित्ति नहीं होती है।

इस प्रकार तृतीय गुणस्थानका वर्णन समाप्त हुआ।

अविरत सम्यक्त्व नामक चतुर्थ गुणस्थान कथन–

णो इन्दियेसु विरदो णो जीवे थावरे तसे वापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो॥

॥ २९ ॥ जीवकाण्डे ॥

अर्थ- जो इन्द्रियोंके विषयोंसे तथा त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसासे विरक्त नहीं है, किंतु जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित प्रवचनका श्रद्धान करता है, वह अविरत-सम्यग्दृष्टि है।

संयम दो प्रकारका होता है (१) इन्द्रियसंयम (२) प्राणसंयम।

इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होनेको इन्द्रियसंयम और अपने तथा परके प्राणोंकी रक्षा करनेको प्राणसंयम कहते हैं। इस गुणस्थानमें दोनों संयमोंमेंसे कोईभी संयम नहीं होता इससे इसको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

शंका- इस गुणस्थानवर्ती जीव न तो इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त है और न त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसासे विरक्त है फिर सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है?

समाधान- इस जीवके उन प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो चुका है जो प्रकृतियां आत्मीक स्वभावकी परिणति होनेको बाधक हैं। वे प्रकृतियां— दर्शनमोहनीयकी ३ (मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व) और अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार, जोड रूप इन सात प्रकृतियोंमेंसे किसीकाभी उदय नहीं है, जिससे इस गुणस्थानवर्ती

जीवको भगवान जिनेन्द्र द्वारा कहे हुए प्रवचनका सच्चे दिलसे विश्वास है और स्वरूपाचरण चारित्रकी प्राप्तिभी होगई है परंतु इन्द्रियसंयम और प्राणसंयममेंसे कोईभी संयम प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि चारित्रमोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियोंका तीव्र उदय है।

शंका- प्राण किसे कहते हैं वे कितने प्रकारके होते हैं ? –

समाधान- जिस प्रकार आभ्यंतरप्राणोंके कार्यभूत नेत्रोंका खोलना, वचनप्रवृत्ति, उच्छ्वासनिःश्वास आदि वाह्य प्राणोंके द्वारा जीव जीते हैं, उसही प्रकार जिन आभ्यंतर इन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमादिके द्वारा जीवमें जीवितपनेका व्यवहार हो उनको प्राण कहते हैं। भाव ये है कि जिनके सद्भावमें जीवमें जीवितपनेका और जिनके वियोग होनेपर मरणपनेका व्यवहार होता है उनको प्राण कहते हैं।

पांच इन्द्रियांस्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण। तीनवल मनवल, वचनवल और कायवल। श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण होते हैं।

शंका- कौन २ जीवके कितने २ प्राण होते हैं ?

समाधान- इन्द्रिय, काय, आयु ये तीन प्राण पर्याप्त और अपर्याप्त दोनोंहीके होते हैं, किंतु श्वासोच्छ्वास पर्याप्त केंही होता है, और वचनबल प्राण पर्याप्त द्वीन्द्रियादिकके ही होता है। तथा मनोबल प्राण संज्ञिपर्याप्तकेही होता है।

पर्याप्तसंज्ञी पंचेन्द्रियके दश प्राण होते हैं, असंज्ञी पंचेन्द्रियके मनोबलप्राणको छोडकर बाकीके नौ प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रियवालेके श्रोत्रेन्द्रियको छोडकर आठ, त्रीन्द्रियजीवके चक्षु इन्द्रियको छोडकर सात, द्वीन्द्रियके घ्राणको छोडकर छह, तथा एकेन्द्रिय जीवके रसनेन्द्रिय और वचन प्राणको छोडकर बाकीके चार प्राण होते हैं। ये सारा वर्णन पर्याप्तकी अपेक्षासे है। अपर्याप्तकमें कुछ विशेषता है- संज्ञि और असंज्ञि पंचेन्द्रियके श्वासोच्छ्वास, मनोबल वचनबलको छोडकर बाकी पांच इन्द्रिय, कायबल आयुप्राण इस प्रकार सात प्राण होते हैं। आगे २ एक २ कम होता जाता है अर्थात् चतुरिन्द्रियके श्रोत्रको छोडकर बाकी ६ प्राण, त्रीन्द्रियके चक्षुको छोडकर ५ प्राण, द्वीन्द्रियके घ्राणको छोडकर बाकी चार और एकेन्द्रियके रसनाको छोडकर बाकी तीन प्राण होते हैं।

शंका- सिद्धान्तमें सम्यक्त्व कितने प्रकारका माना

गया है ?

समाधान- सम्यग्दर्शन दो प्रकारका होता है (१) निश्चय (२) व्यवहार।

दूसरे द्रव्योंसे मेरा आत्मा भिन्न है। ऐसे निश्चित श्रद्धानको निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जो निश्चय सम्यग्दर्शनका कारण है ऐसा जीवादि तत्त्वोंका श्रद्धानरूप व्यवहारसम्यग्दर्शन कहलाता है। सम्यक्त्वके दूसरी तरहसेभी दो भेद होते हैं (१) निसर्गज (२) अधिगमज।

पूर्व जन्ममें गुरु आदिके द्वारा उपदेशादि सुनने पर उस समय तत्वश्रद्धान नहीं हुआ हो फिर इस जन्ममें उस संस्कारके वशसे बिना दूसरेके उपदेशादिकी सहायता से जो सम्यग्दर्शन होता है उसको निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

देव, गुरु, शास्त्र तथा उपदेशकादिके उपदेशके निमित्तसे जो तत्वार्थश्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन होता है उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

तत्व सात प्रकारके माने गये हैं- (१) जीव (२) अजीव (३) आस्रव (४) बंध (५) संवर (६) निर्जरा और (७) मोक्ष।

जिसमें ज्ञान दर्शन रूप चेतना पाई जाय उसे जीव कहते हैं।

जिसमें चेतना शक्ति न हो उसे अजीव कहते हैं। जैसे- पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल।

राग द्वेषादिके निमित्तसे मन वचन काय इन तीन योगोंके द्वारा आत्मामें नवीन कर्मोंके आनेको आस्रव कहते हैं।

आत्माके प्रदेशोंके साथ कर्मोंके प्रदेशोंका दूध पानीकी तरह एकमेक होजाना बंध कहलाता है।

आत्मामें आतेहुए कर्मोंको धर्म-भावना-तप आदिके निमित्तसे रोकदेना संवर कहलाता है।

संवर होजाने बाद पूर्व संचित कर्मोंका एक देश संक्षय करना निर्जरा कहलाता है।

आत्मासे तमाम कर्मोंको पृथक् कर आत्माकी आत्यंतिक शुद्ध अवस्था प्राप्त करनाही मोक्ष कहलाता है।

इन सातों तत्वोंका इस प्रकार विश्वास (श्रद्धान) करना कि भगवान जिनेन्द्र द्वारा कहे हुए तत्व यही हैं इसी प्रकार हैं, इनसे भिन्न और तत्व नहीं हैं और प्रकार भी नहीं हैं सो सम्यग्दर्शन हैं।

औरभी सम्यग्दर्शनके तीन भेद होते हैं- (१) उपशम (२) क्षायिक (३) क्षयोपशम ।

दर्शनमोहनीयकी ३ प्रकृति और चारित्रमोहनीय संबंधी अनंतानुबंधीकी चार प्रकृति ऐसी सात प्रकृतियोंके उपशम होनेसे जो सम्यक्त्व हो उसको उपशमसम्यक्त्व कहते हैं ।

उन्हीं सातों प्रकृतियोंके क्षय होनेसे जो सम्यक्त्व हो उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

सम्यग्दर्शन गुणको विपरीत करनेवाली प्रकृतियोंमेंसे देशघाति सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय होनेपर तथा अनंतानुबंधि चतुष्क और मिथ्यात्व, तथा मिश्र इन सर्वघाति प्रकृतियोंके आगामि निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम और वर्तमान निषेकोंका बिना फल दियेही निर्जरा होनेपर जो आत्माके परिणाम होते हैं, उसको वेदक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं । ये परिणाम चल, मलिन या अगाढ होतेहुएभी नित्यही अर्थात् जघन्य अन्तर्मुहूर्तसे लेकर उत्कृष्ट ६६ सागर पर्यंत कर्मोंकी निर्जराको कारण है । विशेष खुलासा-

यद्यपि दर्शनमोहनीयके मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्प्रकृति ये तीनही भेद हैं तथापि अनंतानुबंधी

कषाय भी दर्शनगुणको विपरीत करता है, इसलिये इसको भी दर्शनमोहनीयही कहते हैं। इसीसे आचार्योंने आगममें कहा है कि "सप्तैते दृष्टिमोहनं" अर्थात् ऊपर कही हुई सातों प्रकृतियां सम्यग्दर्शनकी घात करनेवाली होनेसे दर्शनमोहही हैं। इस प्रकार इन सात प्रकृतियोंके बिलकुल क्षीण होजानेपर दर्शनगुणकी जो अत्यंत निर्मलता होती है उसको क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसके प्रतिपक्षी कर्मका एक देशभी शेष नहीं रहा है, इसही लिये यह दूसरे सम्यक्त्वोंकी तरह सांत नहीं है। तथा इसके होनेपर असंख्यात गुणी कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसीलिये यह कर्म क्षयका कारण है। इसी अभिप्रायकी बोधक एक दूसरी गाथा है कि—

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे।
णोदिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सादि सेससम्मं वा॥

अर्थ- दर्शनमोहके क्षय होनेपर उसही भवमें या तीसरे चौथे भवमें जीव सिद्धपदको प्राप्त होता है, किंतु चौथे भवका उल्लंघन नहीं करता, एवं दूसरे सम्यक्त्वोंकी तरह यह सम्यक्त्व नष्ट नहीं होता। भाव ऐसा है कि क्षायिक सम्यग्दर्शन होनेपर यातो उसी भवमें जीव सिद्ध-पदको प्राप्त होजाता है, या देवायुका बंध होगया हो तो तीसरे भवमें सिद्ध होता है। यदि सम्यग्दर्शन प्रगट होने

के पहिले मिथ्यात्व अवस्थामें मनुष्य या तिर्यंच आयुका वंध किया हो तो चौथे भवमें सिद्ध होता है, पर चौथे भवका अतिक्रमण नहीं करता। यह सम्यक्त्व सद्यनंत है, यह क्षायिकसम्यक्त्व इतना मजबूत होता है कि, तर्क तथा आगमसे विरुद्ध श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाला वचन या हेतु उसको भ्रष्ट नहीं कर सकता, तथा वह भयोत्पादक आकार या ग्लानिकारक पदार्थोंको देखकर भी भ्रष्ट नहीं होता। यदि कभी तीन लोक इकट्ठे होकर भी उसको अपने श्रद्धानसे विचलित करना चाहें तो भी वह भ्रष्ट नहीं होगा।

शंका- यह क्षायिकसम्यक्त्व किसके तथा कहां पर उत्पन्न होता है?

समाधान- दर्शनमोहनीयके क्षय होनेका जो क्रम है, उसका प्रारंभ तो केवली या श्रुतकेवलीके निकट ही होता है, उसका प्रारंभ करनेवालाभी कर्मभूमिज मनुष्यही होता है। कभी पूर्ण क्षय होनेके पहिलेही मरण होजाय तो उसकी (क्षपणकी) समाप्ति चार गतियोंमेंसे किसीभी गतिमें हो सकती है। उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व निर्मलताकी अपेक्षा समान हैं, क्योंकि विरोधी कर्मका उदय दोनों जगह नहीं है किंतु विशेषता इतनी ही है

कि क्षायिकसम्यक्त्वके प्रतिपक्षी कर्मका सर्वथा अभाव होगया है, जबकि उपशमसम्यक्त्वमें प्रतिपक्षी कर्मकी सत्ता रहती है। इतना भेद है।

सम्यक्त्वके नौभेदभी माने गये हैं वे नीचे लिखे अनुसार हैं—नाटकसमयसार छंदोबद्धमें कहाहै कि—

क्षय उपशम वरते त्रिविध वेदक च्यारि प्रकार।
छायक उपशम जुगल युत नौधा समकित धार॥

क्षयोपशमसम्यक्त्व तीन प्रकारका है, वेदकसम्यक्त्व चार प्रकारका है इन दोनोंमें क्षायिक और उपशम ये दो और मिला दिये जांय तो सम्यक्त्वके नौ भेद होजाते हैं।

क्षयोपशमसम्यक्त्व—

क्षयोपशमसम्यक्त्वके तीन भेद हैं—

च्यारि खिपै त्रय उपशमे पन छै उपशम दोय।
छै षट् उपशम एक यौं छय उपशम त्रिक होय॥

अर्थ- (१) अनंतानुबंधीकी चार प्रकृतियोंका तो क्षय हो और दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंका उपशमहो (२) पांच प्रकृति अर्थात् अनंतानुबंधी चार और महामिथ्यात्व एक इनका क्षयहो और शेष दो प्रकृतियोंका उपशमहो (३) अनंतानुबंधी चार और महामिथ्यात्व और मिश्र इन छह

प्रकृतियोंका तो छय हो और एक सम्यक्प्रकृतिका उपशम हो, इस प्रकार क्षयोपशमसम्यक्त्वके तीन भेद होते हैं–
वेदकसम्यक्त्वके चार भेद होते हैं–

जहां च्यार परकिति खिपहिं द्वै उपशम इक वेद।
छय उपशम वेदक दसा तासु प्रथम यह भेद॥
पंच खिपै इक उपशमै इक वेदे जिहि ठौर।
सो छय उपशम वेदकी दसा दुतिय यह और॥
छै पट् वैदे एक जो छायक वेदक सोई।
षट् उपशम इक प्रकृति विद उपशम वेदक होई॥

(१) जहां अनंतानुवंधीकी चौकडीका तो क्षयहो, और मिथ्यात्व तथा मिश्रमिथ्यात्वका उपशमहो एवं सम्यक्प्रकृतिका उदय हो वह प्रथम क्षयोपशमवेदक है।

(२) जहां अनंतानुवंधी चतुष्टय और मिथ्यात्व इन पांच प्रकृतियोंका तो क्षय हो एक मिश्र प्रकृतिका उपशम हो तथा सम्यक्प्रकृतिका उदय हो वह द्वितीय क्षयोपशमवेदक है।

(३) जहां अनंतानुवंधीकी चार और मिथ्यात्व तथा मिश्र ये दो प्रकृतियां, ऐसी छह प्रकृतियोंका तो क्षय हो और एक सम्यक्प्रकृतिका उदय हो वह तीसरा क्षायिक वेदकसम्यक्त्व है।

(४) जहां नं. ३ में कही हुई छह प्रकृतियोंका उपशम हो और एकका उदय हो वह उपशमवेदकसम्यक्त्व है।

(८) आठवें भेदमें आत्मानुशासनमें सम्यक्त्वके दश भेद माने हैं:—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् ।
विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढपरमावगाढे च ॥

अर्थः- (१) आज्ञासम्यक्त्व (२) मार्गसम्यक्त्व (३) उपदेशसंम्यक्त्व (४) सूत्र (५) बीज (६) संक्षेप (७) विस्तारसम्यक्त्व (८) अर्थ (९) अवगाढ (१०) परमावगाढ-सम्यक्त्व।

(१) क्षयोपशमके अनुसार पदार्थके तर्कपूर्वक निर्णय करनेमें जहांतक बुद्धिकी गतिहो वहांतक तर्कसे निर्णय करे लेकिन जहां बुद्धिकी गति न होसके वहां "भगवान जिनेन्द्रकी ऐसीही आज्ञा है" ऐसा मानकर श्रद्धान करना सो आज्ञासम्यक्त्व है।

(२) भगवान जिनेन्द्र द्वारा कहे गये मुनि और श्रावक धर्मके आचरणके वचनोंको सुनकर उनपर श्रद्धान जिसतरह सिद्धांतमें बताया उसी तरह उनपर विश्वास करना सोभी मार्गसम्यग्दर्शन है।

(३) भगवानने "संसारके सभी प्राणियोंमें मैत्रीभाव रखना. गुणवान पुरुषोंको देखकर हर्षित होते हुए प्रेम बढाना, क्लेशवान जीवोंपर दयादृष्टि रखते हुए उनके क्लेश को दूर करदेनेका प्रयत्न करना, और जो लोग अपनेसे विपरीतता रखनेवाले हैं उनसे माध्यस्थभाव (रागद्वेष नहीं) रखना" ऐसा कहा है उसपर प्रवृत्ति करना सो उपदेश सम्यक्त्व है।

(४) गणधर व अन्य आचार्यों द्वारा कथित द्वादशांग शास्त्रका व उनमें निहित उपदेशोंका आदर सत्कार करते हुए "तीन लोकका उद्धारक सम्यग्ज्ञानही क्षयोपशमका कारण है" ऐसा मानकर उसकी विनयकरना सो सूत्र-सम्यक्त्व है।

(५) संसारके कारणभूत रागद्वेशको घटाकर सम्यग्-दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमें रुचि बढाना, मोक्ष-मार्गका निरूपण करना, मिथ्यात्वका त्याग करते हुए अपनी आत्माके स्वरूपकी पहिचान करनेको आकर्षित होना सो बीजसम्यक्त्व है।

(६) पांच समिति, तीन गुप्ति ऐसे अष्ट प्रवचनमातृ-रूप धर्मपर पूरा श्रद्धान रखना और आत्माको उन रूप समझकर उनको बढाते रहना सो संक्षेपसम्यक्त्व है।

(७) "आत्मामें अनंतशक्ति है, उसका यथार्थ कथन भगवान केवली ही कर सकते हैं अन्य छद्मस्थ नहीं कर सकते" उन अनंत धर्मोंका विचारपूर्वक विवेचनकर श्रद्धान करना सो विस्तारसम्यक्त्व है।

(८) जिस आचरणके करनेसे आत्माके पूर्व संचित कर्मोंका नाशहो उस आचरणको आचरते हुए उसपर श्रद्धान करना सो अर्थसम्यक्त्व है।

(९) जो श्रेणिरूप भावोंके अनुभव करनेवाले योगिराज अपने भावोंको वीतराग चारित्र से संबंध करनेके लिये क्षपक श्रेणी मांडते हैं उनकी उस रूप भावना और आचरण करनेकी श्रद्धाको अवगाढसम्यक्त्व कहते हैं।

(१०) स्नातक- तेरहवें गुणस्थानवर्ती भगवान अर्हत देव तथा गुणस्थानातीत सिद्धभगवानकी आत्मामें आत्मभावोंका स्थिर होकर स्वस्थचित्त होनाही परमावगाढ-सम्यक्त्व है।

(९) फिर सम्यक्त्वके दो भेद हैं (१) सरागसम्यक्त्व (२) वीतरागसम्यक्त्व।

वास्तविक सम्यग्दर्शन आत्माका एक खास निज गुण है, उसमें तो किसीप्रकारका सरागत्व या वीतरागत्व रूपका भेदही नहीं है। फिरभी व्यवहारदृष्टिसे ये भेद

माने गये हैं।

प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य ये चार लक्षण जिसमें पाये जांय उसको सरागसम्यग्दर्शन कहते हैं।

रागादिककी उत्कटताका अभाव सो प्रशम है, यहां उत्कटताका अर्थ अनंतानुबंधीसंबंधी है।

संसार, देह और भोगोंसे भयभीतता सो संवेग है।

संपूर्ण प्राणीमात्रमें मैत्रीभाव सो अनुकंपा है।

जीवादिक पदार्थ यथायोग्य अपने २ स्वभावमें जैसे आगममें कहे गये हैं उसीप्रकार हैं, ऐसी बुद्धि करना सो आस्तिक्य है।

केवल निज आत्मद्रव्यकी विशुद्धता सो वीतराग-सम्यक्त्व है।

यथार्थमें सम्यक्त्व अबंध है, सम्यक्त्व अवस्थामें कभीभी कर्मका बंध नहीं होता है। क्योंकि जो आत्माकी खास परिणतिही बंधकी करनेवाली होजाय तो आत्माका कभीभी मोक्ष नहीं होसकता। सरागसम्यक्त्व दशवें गुण-स्थानतक होता है और उसके ऊपर अर्थात् ग्यारहवें, बारहवें आदि गुणस्थानोंमें वीतरागसम्यग्दर्शन होता है।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका स्वरूप बतलाते हुए भगवान कुंदकुंदाचार्यने अपने समयप्राभृतमें ऐसा कहा है कि-

जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥१५५॥

अर्थः- जीवादि सात तत्वोंका जैसा आगममें निरूपण किया गया है उनका उसी रूप श्रद्धानकरना सो सम्यग्दर्शन है।

उनको संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित यथार्थ जानना सो सम्यग्ज्ञान है।

तथा रागादि विकारी भावोंका त्याग करना सो सम्यक्चरित्र है और यही तीनों मोक्ष प्राप्तिके उपायभूत हैं। इन तीनोंमें सम्यग्दर्शनको संसार समुद्रसे तारनेके लिये खेवटियाके समान बतलाया गया है। अथवा मोक्षरूपी महलमें जानेके लिये प्रथम सीढीके समान बतलाया है। सम्यग्दर्शनके होनेपरही ज्ञान और चारित्र सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र कहे जाते हैं।

सम्यग्दर्शनके तीन भेद ऊपर बतलाये गये हैं (१) उपशमसम्यक्त्व (२) क्षायिक (३) क्षयोपशमसम्यक्त्व।

सात प्रकृतियोंके उपशमसे उपशमसम्यक्त्व होता है।

सात प्रकृतियोंके सर्वथा क्षय होनेसे क्षायिकसम्यक्त्व होता है।

छह प्रकृतियोंके क्षयोपशम और सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय होनेपर क्षायोपशमिकसम्यक्त्व होता है।

शंका- अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यकें कर्मके उदयसे कलुषता होते हुए सात प्रकृतियोंका उपशम कैसे होता है? और उपशमहोनेके निमित्त कारण क्या हैं?

समाधान- काललब्धि आदिककी अपेक्षासे सात प्रकृतियोंका उपशम होता है। सो ऐसा उपशमसम्यग्दर्शन नरकादि चारों गतियोंमें अनादि व सादि मिथ्यादृष्टिकें होता है और वह संज्ञी, पर्याप्त, गर्भज, मंदकषायी, ज्ञानोपयोगी, जागृत अवस्थामें करणलब्धिमें उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरणका अंत समय उसमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व होता है।

यहां ऐसा जानना चाहिये कि- मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे छूटकर जो उपशमसम्यक्त्व होता है उसको प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहते हैं। और उपशम श्रेणि चढते समय क्षयोपशमसम्यक्त्वसे जो उपशमसम्यक्त्व होता है उसका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है।

ऊपर कहा गया है कि उपशमसम्यक्त्व चारों गतियोंके जीवोंके पर्याप्तावस्थामें उत्पन्न होता है, सो नरकोंमें नारकियोंके तीन कारणोंसे होता है। कितनेहीके तो जातिस्मरणसे, कितनेहीके धर्मश्रवणसे, कितनोंहीके वेदनाके अनुभवसे सम्यग्दर्शन होता है। तीसरे नरकसे आगे धर्मश्रवणके अभावमें दोही कारण होते हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याप्तकें सम्यक्त्व उपजे तो जन्म लेनेके पृथक्त्व दिनके बाद उपजता है, पहिले नहीं, सो संपूर्ण द्वीप समुद्रोंमें जातिस्मरण, धर्मश्रवण, जिनबिंबदर्शन इन तीन कारणोंसे सम्यक्त्व होता है।

मनुष्योंमेंभी पर्याप्त अवस्थामेंही उत्पन्न होता है सो भी आठ वर्षकी अवस्थाके बादही उत्पन्न होता है, इसके पहिले नहीं उत्पन्न होता है। इनमेंभी जातिस्मरण, धर्म-श्रवण और जिनबिंबदर्शन इन तीन कारणोंसेही उत्पन्न होता है।

देवोंमें पर्याप्तकोंकें जन्म लेनेके, अन्तर्मुहूर्त बादही उत्पन्न होता है उनमें भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और सहस्रारतक बारह स्वर्गोंके कल्पोपपन्नोंकें जातिस्मरण, धर्मश्रवण, जिनमहिमादर्शन और दूसरे देवोंकी ऋद्धिके देखने इन चार कारणोंसे सम्यक्त्व होता है। और तेरहवें

स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयिकतकके देवोंके एक देवऋद्धि दर्शनको छोडकर तीन कारणोंसेही सम्यग्दर्शन होता है। आगे नव अनुदिश और पंच अनुत्तरवासी देवतो पूर्व जन्मसे सम्यक्त्वको लेकरही जन्म लेते हैं। इन चौदह विमानोंमें मिथ्यादृष्टि पैदा नहीं होते।

अब क्षायोपशमिक सम्यक्त्वके स्वरूपमें कुछ विशेषता बतलाते हैं-

जहां अनंतानुबंधीकषायका प्रशस्त उपशमतो नहीं होय किंतु अप्रशस्त उपशम होय अथवा अनंतानुबंधीका विसंयोजन हुवाहोय (अन्य द्वादश कषायें और नौ नोकषायरूप होजानेको विसंयोजन कहते हैं) और मिथ्यात्व तथा सम्यङ्मिथ्यात्व इन दोनों दर्शनमोहकी प्रकृतियोंका प्रशस्तउपशम होगयाहो या क्षय होगयाहो और देशघाति सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होजाय ऐसी हालतमें जो तत्वोंका श्रद्धान होता है, उसे क्षयोपशमसम्यक्त्व कहते हैं।

शंका- प्रशस्तोपशम और अप्रशस्तोपशम किसे कहते हैं?

जो प्रकृति उदय योग्य तो न हो फिरभी स्थिति अनुभागकी वृद्धि हानिके योग्य होवे व संक्रमणकरनेके योग्य होवे उसको अप्रशस्तोपशम कहते हैं।

जो प्रकृति उदय योग्यभी नहीं हो, और स्थिति अनु-भागकी वृद्धि हानि योग्यभी नहीं हो तथा संक्रमण करने लायकभी नहींहो उसको प्रशस्तोपशम कहते हैं।

इस क्षयोपशमसम्यक्त्वमें छह प्रकृतियोंका तो उपशम या क्षय है ही, एक सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाति स्पर्धकोंका उदय है, सो देशघातिमें उदयकें तत्वार्थके श्रद्धानके बिगाडनेकी शक्ति नहीं है, सिर्फ सम्यक्त्वमें चल मलादि मल पैदा करते हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयका अनुभव कराता है इसीसे इसको वेदकसम्यक्त्व भी कहते हैं।

उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व ये दोनों सम्यक्त्वतो अत्यंत निर्मल होते हैं। इनमें शंकादिक मल दोपका लेशभी नहीं होता है। तथा ये दोनों निश्चल होते हैं। आप्त आगम पदार्थ हैं विषय जिसके ऐसे श्रद्धानके विकल्पोंमें कहींभी शिथिलता नहीं होती, अत्यंत दृढ है, गाढ रूप है, आप्तादिकमें तीव्र रुचि होनेसे दृढ ही होता है। छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सप्त तत्व, नव पदार्थ इनकी यथार्थ प्रतीति करनेवाला होता है।

शंका- द्रव्य, तत्व, पदार्थादि कितने और कौन कौन हैं ?

समाधान- द्रव्य छह प्रकारके होते हैं- जीव, पुद्गल,

धर्म, अधर्म, आकाश और काल। बहुप्रदेशोंको अस्तिकाय कहते हैं। काल द्रव्य बहुप्रदेशी नहीं इसलिये काल द्रव्यको अस्तिकाय नहीं कहते, बाकी पांच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं इससे पंचास्तिकाय कहलाते हैं। जीवादि सात तत्वोंका वर्णन ऊपर आचुका है उन्हींमें पुण्य और पाप मिलानेसे नव पदार्थ होजाते हैं।

शंका- कौन २ द्रव्यमें कितने २ प्रदेश होते हैं ?

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥

अर्थः- एकजीवमें, धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यमें हर एकमें असंख्यात २ प्रदेश होते हैं। आकाशद्रव्यमें अनंत प्रदेश होते हैं। और रूप रस गंध वर्णवाले मूर्तीक पुद्गल द्रव्यमें तीन प्रकारके प्रदेश होते हैं। कोई पुद्गलस्कंधमें संख्यात प्रदेश होते हैं, कोईमें असंख्यात और कोईमें अनंत तथा अनंतानंत प्रदेश होते हैं। परंतु कालद्रव्यमें एकही प्रदेश होता है इसलिये वह कालद्रव्य कायवान नहीं है।

शंका- प्रदेश किसे कहते हैं ?

समाधान-

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं ।

तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥

अर्थ- जितने आकाशको एक अविभागी (जिसका किसीभी प्रयोगसे दूसरा टुकडा न होसके ऐसा) पुद्गलका अणु घेर लेता है उस स्थानको प्रदेश कहते हैं। उसमें ऐसी अवगाहन शक्ति होती है कि जितनी जगहमें एक अणु ठहरता है उतनेहीमें औरभी बहुतसे अणु ठहर जांय परस्परमें एक दूसरेको कोई बाधा नहीं आती है।

शंका- पुण्य और पाप किसे कहते हैं ?

सुह असुहभाव जुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ॥

अर्थ- जीवके शुभ भाव (धर्म ध्यान रूप भाव) पुण्य कहलाते हैं। और आर्त रौद्र ध्यान रूप भाव पाप कहे जाते हैं। शेष तत्वोंका स्वरूप कहा जा चुका है। द्रव्यादिका विशेष वर्णन लिखनेसे ग्रंथ बहुत बढ जाता है इसलिये जिन्हें इन विषयोंकी विशेष जानकारी करनीहो वे बृहद्-द्रव्यसंग्रह तथा गोमट्टसारादि बडे सिद्धांत ग्रंथोंका स्वाध्याय करें।

छहों द्रव्योंके वर्णन करनेके लिये सात अधिकार बतलाये गये हैं- (१) नाम (२) उपलक्षणानुवाद (३) स्थिति (४) क्षेत्र (५) संख्या (६) स्थानस्वरूप (७) फल इनके लक्षणादि विशेष कथनभी वहींसे जानने चाहिये।

सिद्धांतमें सम्यग्दर्शनकी महिमाभी इस तरह बतलाई गई है :—

सम्यग्दर्शनसंपन्नमपि मातंगदेहजं ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम् ॥

अर्थः—सम्यग्दर्शन सहित, चाण्डालके देहसे उत्पन्न जो चाण्डाल उसकोभी चार ज्ञानके धारी गणधरादिदेव देव कहते हैं। जैसे भस्म (राख) से दबे हुए जो अंगार के भीतर तेज होता है। भावार्थ-सम्यग्दर्शन सहित चाण्डालको भी गणधर देवने देव कहा है क्योंकि हाड मांससे बना हुआ देह चाण्डालसे उत्पन्न हुआ है परन्तु सम्यग्दर्शन जिसको होगया ऐसा आत्मा तो दिव्य गुणोंके द्वारा देदीप्यमान ही हो रहा है। इसलिए मनुष्य शरीरकोभी उत्तम गुणके प्रभावसे देव कहा है। जैसे राख से ढके हुए अंगारेके भीतर झकझकाट करता हुआ तेज है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टिभी मलीन देहके अन्दर गुणोंसे चमकता है इसलिए ग्रन्थकर्ता श्रीसमंतभद्र स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारकी सम्यग्दर्शनकी महिमामें अपनी रुचिके माफिक नहीं कहता हूं किन्तु चार ज्ञानके धारी निस्पृही ऐसे गणधर देवनेभी कहा है। क्योंकि यह देह तो महामलीन मलमूत्रसे भरा हाडमांस चाममय है जिसमें नवद्वार महाघिनावने हमेशा बहते रहते हैं। ऐसा

अपवित्र मलीनभी साधुका देह है सो रत्नत्रयके प्रभावसे इन्द्रादिक देवोंके दर्शन करने योग्य व पूजने वंदने व नमस्कार करने योग्य हो जाता है। गुणोंके विना चमडेके वने मलमूत्रसे भरे हुए मलीन देहको कौन नमस्कार कर सकता है, इसलिये सम्यग्दर्शन गुणके होनेसेही वंदने व पूजने योग्य होता है।

अब सम्यग्दर्शन रूपी धर्मके होनेसे क्या लाभ और न होनेसे क्या नुकसान है, यह बतलाते हुए छंद कहते हैं:—

श्वापि देवोपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।
कापि नाम भवेदन्या संपद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥२९॥

अर्थः—धर्मके प्रभावसे कुत्ता स्वर्गका देव हो जाता है। और पापके प्रभावसे स्वर्गलोकका वडी ऋद्धिका धारी देवभी इस पृथ्वी तलपर कुत्ता हो जाता है। प्राणियोंको धर्मके प्रभावसे औरभी जिनका वचनसे कथन नहीं हो सकता ऐसी अहमिन्द्रोंकी संपदा तथा अविनाशी मुक्ति संपदा प्राप्त होती है। मिथ्यात्वके प्रभावसे दूसरे स्वर्ग तकका देव एकेन्द्रियोंमें आकर जन्म लेता है, अनंतानंत काल तक त्रस स्थावरोंमें परिभ्रमण करता है। और बारहवें स्वर्गका देव पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जन्म लेता है इस-

लिये मिथ्यात्व भावको महान अनर्थका मूल जानकर छोडना और सम्यक्त्व धारण करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

न सम्यक्त्वसमं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥

भो भव्य हो संसारके प्राणियोंको तीन लोक और तीन कालमें सम्यग्दर्शन सरीखा और कोई कल्याण-कारी नहीं है और मिथ्यात्वके समान कोई दुख देने वाला नहीं है।

विशेषार्थः—अनंत कालतो व्यतीत हो चुका और वर्तमान कालका एक समय और अनंतकाल आगे आवेगा ऐसे तीनों कालोंमें और अधो-भुवनलोक, असंख्य द्वीप समुद्रपर्यंत मध्यलोक और स्वर्गादिक ऊर्ध्वलोक इन तीन लोकमें सम्यग्दर्शनके समान अन्य कोई पदार्थ सर्वोत्कृष्ट उपकार करनेवाला इस जीवका नहीं है, न हुआ है, और न आगे होगा। जो उपकार इस जीवका सम्य-क्त्व करता है वैसा उपकार तीन लोकमें उत्पन्न हुए ऐसे इन्द्र, अहमिंद्र, भुवनेन्द्र, चक्री, बलभद्र, नारायण, तीर्थं-करादि संपूर्ण चेतन मणीमंत्र औषधादिक संपूर्ण अचेतन द्रव्योंमेंसे कोईभी सम्यक्त्वके समान उपकार करने वाला

नहीं है। इसी प्रकार जीवका जैसा अपकार मिथ्यात्व कर सकता है वैसा अपकार करने वाला तीन लोक और तीन कालमें शत्रु आदिक कोई दूसरा द्रव्य नहीं कर सकता है। इसलिये मिथ्यात्वके छोडनेमें यत्न करना चाहिये तथा सांसारिक तमाम दुःखोंको दूर करनेवाला और आत्म-कल्याणका करने वाला ऐसे सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिये। मिथ्यात्व रहित अविरत सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मोही मुनिसे बहुतही उत्तम है क्योंकि जिसको सम्यक्त्वहो जाता है वह देव मनुष्योंके सात आठ भव धारण करके नियमसे मोक्ष प्राप्त कर लेता है। परन्तु जिसके मिथ्यात्व का उदय हो और मुनिके व्रत धारण कर साधु हुआ हो तो भी मरकर भवनत्रयादिकमें उत्पन्न होकर अनंत संसारमें भ्रम करता है। इसी बातको भगवान कुंद-कुंदाचार्यने दर्शनपाहुडमें कहा है।

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठाण णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठाण सिज्झंति॥
सम्मत्तरयणभट्ठा जाणंता बहुविहाइ सत्थाइं
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव॥

अर्थ- जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टही हैं क्योंकि सम्यग्दर्शनसे जो भ्रष्ट हैं उनको अनंतकालमेंभी मोक्ष नहीं मिलता है। और जिनका सम्यग्दर्शन नहीं छूटा लेकिन

चारित्र से भ्रष्ट हैं ऐसे जीव तीसरे भवमें निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं यदि सम्यक्त्व छूट जाय तो अनंत काल तकभी संसारभ्रमण नहीं छूट सकता ॥ १ ॥

जो सम्यक्त्वरूपी रत्नसे भ्रष्ट हैं वे बहुत प्रकारके शास्त्रोंको क्यों न जानतेहों चार आराधना रहित होते हुए संसारमेंही भ्रमण करते हैं ॥ २ ॥ सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाता है। कैसेही कठोर तप क्यों न किये जांय विना सम्यग्दर्शनके रत्नत्रयकी प्राप्ति दुर्लभ है इसलिये सम्यग्दर्शनके उपार्जनमें ही प्रयत्न करना चाहिये ।

सम्यग्दर्शन होजानेसे जीव कहां २ पैदा नहीं होता सो बताया है:-

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजंति नाप्यव्रतिकाः ३५

अर्थ- जो जीव व्रत रहित होतेहुएभी यदि सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हैं तो वे मरण कर नारकी, तिर्यंच, नपुंसक और स्त्रीपनेको प्राप्त नहीं होते अर्थात् इनमें जन्म नहीं धारण करते और न नीच कुलमें जन्म लेते और न विकृतांग कहिये- अंधा, काना, लूला, लंगडा, टोंटा, गूंगा, बहिरा, कुबडा, बौना, अधिकांग, हीनांगही होते

हैं और न अल्पायुवाले तथा दरिद्रताको प्राप्त होते है। सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वके प्रभावसे बंधनेवाली १६ प्रकृतियां अर्थात्- मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंमकवेद, स्फाटिक-संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, साधारण, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु नहीं बंधतीं तथा अनंतानुबंधी के प्रभावसे बंधनेवाली पच्चीस प्रकृतियां अर्थात्- अनंतानुबंधीक्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर अनादेय, न्यग्रोधपरिमंडल-संस्थान, स्वाति, कुब्जक, वामनसंस्थान, वज्रनाराच-संहनन, नाराच, अर्धनाराच, कीलितसंहनन, अप्रशस्त-विहायोगति, स्त्रीत्व, नीचगोत्र तिर्यगति, तिर्यग्गत्यानु-पूर्वी, तिर्यगायु, और उद्योत बंधको प्राप्त नहीं होती हैं। क्योंकि इनका बंध मिथ्यादृष्टिही करता है। सम्यग्दृष्टिके ४१ प्रकृतियोंका नवीन बंध नहीं होता है। और जो सम्यक्त्व ग्रहण नहीं किया होय और मिथ्यात्व अवस्थामें प्रकृतियां बंधगईहों तो सम्यक्त्व के प्रभाव से वे प्रकृतियों नष्ट हो जाती हैं, परंतु जो आयुबंध किया होय तो वह नहीं छूटता है हां आयुकी स्थितिमें परिवर्तन हो जाता है। जैसे किसी जीवने मिथ्यात्वके प्रभावसे सप्तम नर्कको आयुबांधी हो और बादमें सम्यक्त्व उत्पन्नहो जायतो बांधी हुई सप्तम

नर्क की आयु पहिले नरक की हो जाती है। फिर वह जीव द्वितीयादि नरकमें नहीं जाता है। जो तिर्यंचमें निगोदकी एकेन्द्रियकी आयु बांधी होय तो सम्यक्त्वके प्रभावसे उत्तम भोगभूमिका पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही होता है एकेन्द्रियादिक कर्मभूमिका तिर्यंच नहीं होता है। इत्यादि सम्यक्त्वका अपरिमित माहात्म्य है। औरभी कहते हैं कि-

ओजस्तेजोविद्या वीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथा।
महाकुलाः महार्थाः मानवतिलका भवंति दर्शनपूताः॥३६॥

अर्थ- सम्यग्दर्शनसे पवित्र मनुष्य संपूर्ण मनुष्योंके मस्तक पर धारण करने योग्य मानवतिलक होता है, कैसे होता है? ओज-पराक्रम, तेज प्रताप, विद्या-संपूर्ण लोकमें अतिशय जनक ज्ञान, वीर्य-अतिशयरूप शक्ति, उज्जवल यश-वृद्धि-दिनोंदिन गुणोंकी और सुखकी वृद्धि, विजय-हर तरहकी जीत, और अनन्यलभ्य विभव इन सबका स्वामी होता है। उत्तमकुलमें उसका जन्म होता है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चार पुरुषार्थोंका स्वामी होता है। मनुष्योंमें ऐसे मनुष्य सम्यग्दृष्टि होते हैं।

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमंते जिनेन्द्रभक्ताःस्वर्गे॥३७॥

अर्थ- जिनेन्द्रके भक्त ऐसे शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव-

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व नामकी आठ ऋद्धियोंकी पुष्टिता— अन्य असख्यात देवोंमें नहीं पाई जानेवाली अधिकतासे संतुष्ट तथा सब देवोंमें उत्कृष्ट ऐसी कांति, तेज, यश इनसे युक्त होतेहुए स्वर्गलोकमें अप्सराओंकी सभामें बहुत समय (सागरों पर्यंत) तक रमते हैं।

इस तरह स्वर्गोंमें कई सागरों पर्यंत इन्द्रियोंके सुख भोगकर मनुष्य गतिमें आकर फिर क्या होते हैं? इस प्रश्नके समाधानके लिये बतलाया है कि—

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।
वर्तयितुं प्रभवंति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

अर्थ- जिनकें निर्मल सम्यग्दर्शन होगया है वे स्वर्गलोक में आयु पूर्णकर मनुष्यलोकमें आकर नवनिधि और चौदह रत्नोंके स्वामी संपूर्ण भरतक्षेत्रके बत्तीस हजार देशोंके पति और बत्तीस हजार मुकुटबंध जो राजा उनके मस्तक ऊपर मुकुटरूप हैं चरण जिनके ऐसे होतेहुए चक्रका प्रवर्तन करनेमें समर्थ चक्रवर्ती होते हैं। और—

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः ।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवंति लोकशरण्याः ॥

अर्थ- जिन पुरुषोंने सम्यग्दर्शनके द्वारा पदार्थोंका

ठीक २ निश्चय किया है और जिनके चरण कमल अमर-पति, सुरपति, नरपति, संयमियोंके पति गणधरोंसेभी वंदनीक हैं वे लोकोंको परम शरण देनेवाले ऐसे धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर होते हैं।

सम्यग्दृष्टिही निर्वाणको प्राप्त करते हैं ऐसा बतलाने के लिये कहते हैं—

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकमयशंकम्।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजंति दर्शनशरणाः॥४०॥

अर्थ- जिनको सम्यग्दर्शनकाही शरण है वे लोग जिसमें जरा- बुढापा नहीं, अरुज- रोग पीडा व्याधि नहीं, अक्षय- अनंत चतुष्टय स्वरूपका नाश नहीं, अव्याबाध- जहां कोई प्रकारकी बाधा नहीं, जहां शोक भय शंका जराभी नहीं, जहां सुख और ज्ञानका विभव अत्यंत दर्जे को प्राप्त हो जाता है, द्रव्यकर्म (ज्ञानावरणादि आठ कर्म) भावकर्म (रागद्वेषादि) नोकर्म (शरीरादि) इन कर्म मलोंसे रहित होनेसे जो विमल है ऐसे अद्वितीय स्वरूप मोक्षका अनुभव करते हैं।

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानं
राजेन्द्रचक्रमवनींद्रशिरोर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं

लब्ध्वाशिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥

अर्थ- परमात्माके स्वरूपमें है अनुराग जिसको ऐसा सम्यग्दृष्टि भव्य जीव, इस मनुष्य भवसे चयकर स्वर्गलोकमें, अप्रमाण है ऋद्धि, शक्ति, सुख, विभवका प्रभाव जिसमें ऐसे देवेन्द्रोंके समूहकी महिमाको पाकर, पीछे पृथ्वीपर आकर, बत्तीस हजार मुकुटबंध राजाओंके मस्तकों द्वारा पूजनीय ऐसे चक्रवर्तीके चक्रको पाकर, फिर अहमिंद्रलोककी महिमाको पाकर, नीचे किया है समस्त लोकको जिसने ऐसा भगवान तीर्थंकरके धर्मचक्रको पाकर निर्वाणको पा जाता है। सम्यग्दृष्टि उपर्युक्त अनुक्रमसे मुक्तिको प्राप्त करता है। इस तरह दर्शनमोहके अभावसे सत्यार्थज्ञान और सत्यार्थश्रद्धान प्रगट होता है और अनंतानुबंधीके अभावसे स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट होता है।

सम्यग्दृष्टिका चिंतवन—

यद्यपि अप्रत्याख्यानावरणके उदयसे सम्यग्दृष्टिको देशचारित्र नहीं प्रगट हुआ है और प्रत्याख्यानावरणके सर्वघाति स्पर्धकोंके उदयसे सकलचारित्रभी प्रगट नहीं हुआ है तोभी सम्यग्दृष्टिके देहादिक परद्रव्य तथा रागद्वेषादिक कर्मजनित परभाव इनमें ऐसा दृढ भेद विज्ञान होगया है जो अपना ज्ञानदर्शनरूप ज्ञानस्वभावमेंही

आत्मबुद्धि करनेसे और पर्यायमें स्वप्नमेंभी आत्मबुद्धि नहीं होनेसे सम्यग्दृष्टि ऐसा चिंतवन करता है कि- हे आत्मन् तू भगवानके परमागमका शरण ग्रहण करके ज्ञानदृष्टिसे देख- आठ प्रकारका स्पर्श, पांच प्रकारका रस, दो प्रकारका गंध और पांच प्रकारका वर्ण ये तुम्हारे रूप नहीं हैं ये पुद्गलके हैं। क्रोध मान माया लोभभी तुम्हारे रूप नहीं हैं कर्मके उदयजनित विकार हैं तथा हर्ष विषाद मद मोह शोक भय ग्लानि कामादिक कर्मजनित विकार हैं ये भी तुम्हारे स्वरूपसे भिन्न हैं। नर्क तिर्यंच मनुष्य देव ये चार गति तुम्हारा रूप नहीं हैं. कर्मके उदयसे उत्पन्न होते हैं और विनाशिक हैं। देव मनुष्यादिक तुम्हारे रूप नहीं हैं सम्यग्ज्ञानी ऐसा चिंतवन करता है कि मैं गोरा, श्याम, राजा, रंक, बलवान, निर्बल, स्वामी, सेवक रूपवान, कुरूप, पुण्यवान, पापी, धनवान, निर्धन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष, नपुंसक नहीं हूं। मैं स्थूल, कृष, नीच, ऊंच, नहीं हूं। मैं कुलीन, अकुलीन, पंडित, मूर्ख नहीं हूं ये सब कर्मके उदयसे होनेवाले पुद्गल के विकार हैं। मेरा स्वरूपतो ज्ञाता दृष्टा है। मुनिपना, क्षुल्लकपना आदिभी पुद्गलकेही विकार हैं। ये देश नगर ग्राम बागबगीचा सब पर द्रव्य हैं ये मेरे नहीं हैं और न मैं इनका स्वामी हूं। मिथ्यादृष्टिजीव परकृत पर्यायमें

आपा मानता है। मिथ्यादृष्टिजीव जातिमें, कुलमें, देहमें, धनमें राज्यमें, महल, मकान, नगर, कुटुंबमें आपा मानता है।

मिथ्यादृष्टिजीव पर द्रव्यमें अपना संकल्पकर महा आर्त रौद्र ध्यानकर दुर्गतिको पाकर संसारमें परिभ्रमण करता है इत्यादि अनेक विपरीत व्यवहार कर मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी बनता है इसलिये इस मिथ्यात्वका त्याग कर और अपने निज गुण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकोही अपना मानकर उनमें रत होनेका उद्यम कर इसीमें तेरा कल्याण है।

सम्यग्दृष्टिके ५३ भावोंमेंसे ३६ भाव होते हैं, वे इस प्रकार—

इस गुणस्थानमें जो ३६ भाव होते हैं उनमें उपशमका १ क्षायिकका १ क्षायोपशमिकके १२ औदयिकके २० और पारिणामिकके २ इस प्रकार ३६ होते हैं।

१ औपशमिकका—उपशमसम्यक्त्व।

१ क्षायिकका—क्षायिकसम्यक्त्व।

१२ क्षायोपशमिकके—चक्षुदर्शन १ अचक्षुदर्शन २ अवधिदर्शन ३ मतिज्ञान ४ श्रुतज्ञान ५ अवधिज्ञान ६ क्षयोपशमसम्यक्त्व ७ दान ८ लाभ ९

भोग १० उपभोग ११ और वीर्य १२।

२० औदयिकका—गति ४ कषाय ४ वेद ३ अज्ञान १ असंयत १ असिद्धत्व १ कृष्ण १ नील २ कापोत ३ पीत ४ पद्म ५ और शुक्ल ६=२०

२ पारिणामिकका—जीवत्व और भव्यत्व।

इस गुणस्थानमें ५७ आश्रवोंमेंसे ४६ आश्रव होते हैं— अविरति १२ योग १३ और कषाय २१

१२ अविरति—६ कायके जीवोंकी दया नहीं, पांचों इन्द्रियां और मनको वशमें नहीं करना इस तरह १२ अविरति होती हैं।

१३ योग—आहारक और आहारकमिश्र योगको छोड कर १३ योग होते हैं।

२१ कषाय—अनंतानुबंधी ४ के विना शेष २१ कषाय।

इस गुणस्थानमें बंध योग्य ७७ प्रकृतियोंका विवरण-

११ ५ ज्ञानावरणी ६ दर्शनावरणी- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शन।

१० निद्रा और प्रचला, ५ अंतरायकी, ऊंचगोत्र, देवायु और मनुष्यायु,।

१९ वेदनीयकी २ चारित्रमोहकी स्त्रीवेद और नपुंसकवेद तथा अनंतानुबंधी विना।

३७ नामकर्मकी—१ देवगति २ मनुष्यगति ३ पंचेन्द्रियजाति ४ औदारिक ५ वैक्रियिक ६ तैजस ७ कार्माण ८ औदारिकांगोपांग ९ वैक्रियिकांगोपांग १० समचतुरस्रसंस्थान ११ वज्रर्षभनाराचसंहनन ४=१५ स्पर्शादि २=१७ देवमनुष्यगत्यानुपूर्वी १८ अगुरुलघु १९ उपघात २० परघात २१ उच्छ्वास २२ प्रशस्तविहायोगति २३ त्रस २४ बादर २५ पर्याप्त २६ प्रत्येक २७ स्थिर २८ शुभ २९ सुभग ३० सुस्वर ३१ आदेय ३२ यशःकीर्ति ३३ अयशःकीर्ति ३४ निर्माण ३५ अस्थिर ३६ अशुभ ३७ तीर्थंकर।

१० बंध योग्य प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति—प्रत्याख्यान ४, मनुष्यायु १ मनुष्यगति १ मनुष्यगत्यानुपूर्वी १ औदारिकशरीर १ औदारिकांगोपांग १ वज्रवृषभनाराच संहनन १

१०४ उदय योग्य प्रकृतियां—

१५ ज्ञानावरणीकी ५ दर्शनावरणीकी ९ दर्शनमोहमें सम्यक्त्वप्रकृति १ चारित्रमोहमें।

३२ अनंतानुबंध चतुष्टय बिना १२, नोकषाय ९ अंतराय ५ गोत्रकी २ आयु ४।

२ वेदनीय २।

९५ नामकर्मकी—गति ४ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ४ आहारकबिना, आंगोपांग २ औदारिक, वैक्रियिक। संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्शादि ४ अगुरुलघु १ आनुपूर्वी ४ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ उद्योत १ विहायोगति २ त्रस १ बादर १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ सुभग १ अशुभ १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अनादेय १ पर्याप्ति १ यशःकीर्ति १ अयशःकीर्ति १ निर्माण १ प्रत्येकशरीर १।

१७ उदय योग्य व्युच्छित्ति प्रकृतियां—
चारित्रमोहकीअप्रत्याख्यान ४, देवायु, मनुष्यायु, देवगति, नरकगति, देवगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकांगोपांग, दुर्भग, अनादेय, और अयशःकीर्ति।

१४८ सत्वप्रकृति सामान्य रीतिसे १४८ का है।

१४१ १४८ उपशमसम्यक्त्वमें सत्ता १४८ की है।

१४१ क्षायिकसम्यक्त्वमें अनंतानुबंधी ४ दर्शनमोहकी ३ ऐसी ७ प्रकृतियां नहीं रहीं।

५ क्षयोपशमकी अपेक्षा १४२–१४३–१४४–१४५

१५६ का।

१ सत्वकी व्युच्छित्ति एक नरकायुकी।

इस तरह चौथे गुणस्थानका व्याख्यान समाप्त हुआ।

पंचम गुणस्थान कथन।

पच्चक्खाणुदयादो संजमभावो णहोदि णवरिं दु
थोववदो होदि तदो देशवदो होदि पंचमओ ॥
॥ ३० ॥ जीवकाण्डे ॥

अर्थ- पंचम गुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरण नामक द्वितीय कषायके उदय होनेसे पूर्ण संयम तो नहीं होता, किंतु यह विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरण कषायका उदय न होनेसे देशविरत होता है इसलिये इस गुणस्थान का नाम देशविरत है।

इस गुणस्थानको विरताविरतभी कहते हैं सो क्यों? इसके समाधानमें कहते हैं—

जो तसवहाउविरदो अविरदओ तहय थावरवहादो।
एकसमयह्मि जीवो विरदाविरदो जिणेकमई ॥ ३१ ॥

अर्थ- जो जीव जिनेन्द्रदेवमें अद्वितीय श्रद्धा रखता हुआ त्रस जीवकी हिंसासे विरत और उसही समयमें स्थावर जीवोंकी हिंसासे विरत नहीं होता है उस जीवको विरताविरत कहते हैं।

विशेषार्थ- यहांपर जिन शब्द उपलक्षण है इसलिये जिन शब्दसे जिनेन्द्रदेव और उनके उपदेशरूप आगम, तथा उसके अनुसार चलनेवाले गुरुओंका ग्रहण करना चाहिये। जिनदेव, जिनआगम और जिनगुरुओंका श्रद्धान करनेवाला जो जीव एकही समयमें त्रस जीवोंकी हिंसा न करनेकी अपेक्षा विरत और स्थावर जीवोंकी हिंसा करनेकी अपेक्षा अविरत होता है, इसलिये उसको एकही समयमें विरताविरत कहते हैं। यहां यहभी प्रयोजन जानना चाहिये कि वे प्रयोजन स्थावरोंकी हिंसाभी नहीं करनी चाहिये।

इस व्रतके आचार्योंने ग्यारह भेद बतलाये हैं, जैसा कि कहा भी है।

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठंते क्रमविवृद्धाः॥

॥ रत्नकरण्डश्रावकाचार ॥

अर्थ- चार ज्ञानके धारी गणधरदेवने श्रावकोंके ग्यारह दर्जे कहे हैं जिनमें अपने २ पदके योग्य चारित्र पूर्व २ पदके चारित्र सहित होतेहुएही क्रम २ से बढते रहते हैं। श्रावकोंके इन दर्जोंको प्रतिमा शब्दसे कहते हैं।

भावार्थ ये दर्जे कषायोंके हीन स्थान हैं जैसी २

कषाय हीन होती जाती है (विषयोंसे इच्छाएं रुकती जाती हैं) वैसे २ दर्जे बढते जाते हैं।

श्रावकको ११ प्रतिमाओंके नाम निम्नलिखित हैं-

दर्शनिकव्रतकावपि सामायिकः प्रोषधोपवासश्च ।
सचित्तरात्रिभुक्तिव्रतनिरतौ ब्रह्मचारी च ॥
आरंभादिनिवृतः परिग्रहादनुमितात्तथोद्दिष्टात् ।
इत्येकादशनिलयाः जिनोदिताः श्रावकाः क्रमशः ॥

अर्थ- दर्शनप्रतिमा १ व्रतप्रतिमा २ सामायिकप्रतिमा ३ प्रोषधप्रतिमा ४ सचित्तत्यागप्रतिमा ५ रात्रिभुक्तित्याग ६ ब्रह्मचर्यप्रतिमा ७ आरंभत्यागप्रतिमा ८ परिग्रहत्याग ९ अनुमतित्याग १० उद्दिष्टत्यागप्रतिमा ११ इस तरह ग्यारह प्रतिमा होती हैं। इन प्रतिमाओंका सामान्य स्वरूप समझाया जाता है विशेष जाननेके इच्छुक संयमप्रकाशका स्वाध्याय करें।

पहिली प्रतिमाका स्वरूप ऐसा है कि जो पुरुष २५ दोषोंसे (शंकादिक आठ दोष, आठ मद, छह अनायतन, तीन मूढतासे) रहित शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक, संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त, पंच परमेष्ठी भगवान के चरणोंकाही जिसको शरणहो और चारित्र धारण करने के पक्षमें परिणति रखनेवालाहो उसको दर्शनिक श्रावक

या पहिली प्रतिमावाला कहते हैं। ऐसा श्रावक आठ मूल गुणधारी होना चाहिये। विना आठ मूल गुण धारण किये कोईभी श्रावक नहीं कहला सकता है। सो ही पंडितप्रवर आशाधरजीने श्रावकके ८ मूल गुण सागारधर्मामृतमें कहे हैं–

मद्यपलमधुनिशासनपंचफलीविरतिपंचकाप्तनुतिः ।
जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥१८॥

दूसरा अध्यायमें

अर्थ- मद्य (मदिरा) पल (मांस) मधु (शहद) निशासन (रात्रिमें भोजन) पंच फल (पांच उदुंबर फल- वड़, पीपल, गूलर, कटूमर, पाकर) इनकी विरति (त्याग) पंचकाप्तनुतिः (पंच परमेष्ठीको नमस्कार) जीवदया (जीवोंपर दया करना) जलगालन (जल छानकर काम में लेना) इस प्रकार सामान्यतया आठ मूल गुणोंसे युक्त ही श्रावक होता है। मूल गुण- मुख्यगुण, जैसे विना मूल-जडके वृक्ष नहीं ठहर सकता उसी प्रकार विना मूल गुणके श्रावक नहीं हो सकता।

शंका- इन आठ मूल गुणोंके विना पालन किये प्रतिमामें क्या दोष आता है ?

उत्तर- इनको पालन किये विना कभीभी व्रतीपना

नहीं होसकता। क्योंकि जिन चीजोंका त्याग करना बतलाया है उनके सेवन करनेमें प्रचुर जीवोंकी हिंसा होनेसे महान दोष बतलाया है।

मांस- ये त्रस जीवोंका शरीर है, जीवोंको मारे विना मांस पैदा नहीं होता है। मांस चाहे कच्चाहो, या पका हुआहो, अथवा पक रहाहो, उसमें उसी रंगके अनंत जीव हमेशा उत्पन्न होते रहते हैं। मांसकी डलीके खाने अथवा स्पर्श करने मात्रसे अनंत जीवोंका घात होता है। इसलिये अपनी आत्माकी भलाई चाहनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि मांसको दूरहीसे त्याग करें। मांस भक्षणका फल अनंतकाल तक नरक निगोदके दुःख भोगना है।

शंका- जीवके शरीरको यदि मांस कहा जाता है और मांस खानेसे अनंतकाल तक नरक निगोदके दुःख उठाने पडते हैं तो ऐसा कोई जीव नहीं वच सकता जो मांसाहारी न हो क्योंकि सब तरहके अनाज फलादि जीव केही शरीर होते हैं उनको सभी वर्गके लोग खाते हैं?

उत्तर- जो २ जीवका शरीरहो सो २ मांस होता है ऐसी बात नहीं है क्योंकि-

मांसं जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसं
यद्वन्निम्बो वृक्षः वृक्षस्तु भवेन्न वा निंबः॥

अर्थ- मांस जीवका शरीर होता है, परंतु जीवका शरीर मांस होताभी है और नहींभी होता जैसे- नीम वृक्ष होसकता है, लेकिन जो २ वृक्ष होते हैं वे सब नीम होते हैं ये बात नहीं है। मांस जीवका शरीर होगा, लेकिन जीवका शरीर मांस होगा और नहींभी होगा। अतएव अन्न और फलादिके भक्षणकरनेमें मांस खानेका दोष नहीं लग सकता है। सिद्धांतमें त्रस जीवोंके शरीरमेंही मांस बतलाया है स्थावर शरीरमें नहीं, और अन्नादि स्थावर शरीर हैं इसलिये अन्नादि या फलादिके खानेमें मांसका दोष नहीं लग सकता, हां स्थावर हिंसाका दोष जरूर लगता है जिसका गृहस्थ सर्वथा त्यागी नहीं होसकता है।

मदिरापान- यह पदार्थ अनेक पदार्थोंको सडाकर बनाया जाता है। किसी एक पात्रमें बहुतसे पदार्थ एक साथ भर दिये जाते हैं, और वे महिनों सडाये जाते हैं, उनके सडनेसे उसमें बडे २ गिंडोल सरीखे मोटे २ जानवर पड जाते हैं, जब वे सडे पदार्थ घानीमें डालकर पेले जाते हैं तब उन पदार्थोंके साथ वे तमाम जानवरभी जो गिंडोलके बराबर पड जाते हैं, पिल जाते हैं, और उनका तमाम पीप सरीखा रस उन पदार्थोंसे निकलेहुए रसमें आजाता है। फिर उस रसमेंभी नवीन २ अनंत जीव उसीरंगके पैदा होते रहते हैं। उस मादक रसके पीनेसे

अनंत जीवोंका घात होता है। जो शराब पीनेवाले होते हैं, वे मांसाहारीभी जरूर होते हैं। उन्हें काम सेवनकी तीव्र वेदना होती है। वे पर स्त्री लंपटी होते हैं। एक कथामें बतलाया है कि कोई परिव्राजक सन्यासी किसी तीर्थस्थानकी वंदना करनेके लिये एक सघन वनसे गुजर रहा था, कि रास्तेमें उसे एक भीलोंका समुदाय शराब पिये हुए उन्मत्त मिला, उन्होंने तापसीजीसे आतिथ्य सत्कार रूपमें मदिरापानके लिये आग्रह किया, सन्यासीजी पहिलेतो मंजूर नहीं हुए, बादमें परवशता देख मदिरापान करनेके लिये राजी होगये, और पीभी गये, पीनेके थोडी देर बाद उनको नशेका वेग आया, वे उन्मत्त होकर उन भीलोंके साथ नांचने कूदने लगे, थोडी देर बाद उन्हें जोरकी भूखने धर सताया, वहां सिवा मांसके कोई दूसरा खाद्य पदार्थ नहीं था, उन्होंने उसेही खूब खाया, उसके खानेसे कामवेदना खडी होगई, तो वे नंगे नाचने लगे, और अपनी कुवासना अन्य स्त्रियोंसे व्यक्तही नहीं की प्रत्युत लपटा झपटी करने लगे, यह देख भीलोंने उस सन्यासीको मारडाला वह मरकर नरकको गया, जहां सागरोंपर्यंत महान दुःखोंका पात्र बना। ऐसी २ एक नहीं अनेक घटनाएं घटित होती रहती हैं। शराबियोंको मा बहिनों का कोई ख्याल नहीं रहता है। जिस समय

कोई शराबी अपनी धुनमें मस्त रहता है, दूसरे लोग उसकी कितने ही प्रकारसे बेइज्जती क्यों न करें, उसे कोई सुधबुध नहीं होती, स्त्रियों बालबच्चोंको मारना, घर की चीजें तहस नहस कर डालना आदि अनेक उपद्रव कर डालते हैं। कितने ही राजा लोग अपने राज्य व माल खजानेसे भी हाथ धो बैठते हैं। इसलिये मदिरा सेवन नहीं करना चाहिये। मदिरा शब्दसे केवल शराब ही नहीं समझनी चाहिये, किन्तु जितनी भी नशा पैदा करनेवाली चीजे हैं जैसे तमाखूका खाना, पीना, सूंघना, सिगारेट, बीड़ी, चायका पीना, अफीम-चरस चंडू-भांग आदिका सेवन करना सब मदिरापानमें ही समझना चाहिये। इन चीजोंके सेवन करनेसे बुद्धि नष्ट हो जाती है। हृदय जल जाता है, खून पानी हो जाता है, भोजन करना भी स्वल्पमात्रामें हो जाता है; जाति और धर्मकी मर्यादाभी भंग हो जाती है, बेकाम द्रव्य बर्बाद होता है, स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रहता, सुसंगति न रहकर कुसंगति हो जाती, जिससे स्वात्माभिमान नष्ट हो जाता है, इत्यादि और भी ऐसी बहुत सी महत्वशाली बातें हैं; जो इस मदिरापानसे नष्ट हो जाती हैं, ये चीजें केवल धर्मकी ही दृष्टिसे नहीं किन्तु स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी वर्जनीय हैं।

मधु—अनेक जातिके फूलोंमें रहनेवाले रसको पान-कर वमन किया हुआ मक्खियोंका झूठा द्रव्य मधु कह-लाता है। ये मधु महान हिंसासे पैदा होती है। मधु माक्षिकाओं के द्वारा बनाये हुए छत्तेमें मधु संचित रहता है उसमें ढेरके ढेर छोटे २ जानवरोंके बच्चे अंडे सरीखे दीखते हैं; जिससे मधु संचय करनेवाला पामर पुरुष, जंगलमें मधु तोड़नेको जाता है। पहिले वह दिनमें उस स्थानको देख आता है, जहां मधुमक्खियोंका छाता रहता है। रात्रिको या कभी २ दिनमें भी एक बांसके शिरेपर बहुतसा कपड़ा लपेटकर उसपर थोड़ासा तेल डालकर आग लगाकर आप खुद चारों तरफसे कंबलसे लपिटकर वृक्षकी डालीपरसे उस जलते हुए कपड़ेको मधु छत्तेके नीचे कर देता है जिससे कुछ मधुमक्खियां तो उड़ जाती है, बहु भाग जलकर व झुलसकर नीचे गिर जाती हैं। बादमें वह छत्ता तोड़ लिया जाता है उसमेंसे कुछ मधु तो अपने आप चूंचूकर बर्तनमें संचित हो जाता है, कुछ उस छत्तेको दोनों हाथोंसे मसलकर निकाली जाती है उस छत्तेमें जितने मक्खियोंके छोटे २ बच्चे रहते हैं, वे सब मर जाते हैं, और उनके शरीरका पीप सरीखा रस उस शहदमें आ जाता है, जिसको कि शहद खानेवाले खाते हैं। शहदमें बरहमेश नये २ जान-

वर उसी रंगके पैदा होवे रहते हैं, और मरते रहते हैं। शहदके खानेसे त्रसजीवोंके घात करनेका पाप लगता है, इसलिये शहद सर्वथा वर्जनीय है।

रात्रि भोजन—धर्मात्मा जीव को रात्रि भोजन सर्वथा त्याज्य है। क्यों त्याज्य है?:—

यत्र राक्षसपिशाचसञ्चरो यत्र जंतुनिवहो न दृश्यते।
यत्र भुक्तमपि वस्तु भक्ष्यते यत्र घोरतिमिरं विजृम्भते॥
यत्र नास्ति यतिवर्गसंगमो यत्र नास्ति गुरुदेवपूजनम्।
यत्र संयमविनाशिभोजनं यत्र संसजति जीवभक्षणम्॥
यत्र सर्वशुभकर्मवर्जनं यत्र नास्ति गमनागमक्रिया।
तत्र दोषनिलये दिनात्यये धर्मकर्मकुशला न भुंजते॥

अमितगति श्रावकाचारे

अर्थः—जिस ठिकाने राक्षस, पिशाच इनका संचार होता है, जहां कोई भी प्राणीका संचार दिखता नहीं है, जहांपर छोड़ेहुए पदार्थ फिरसे भक्षण करनेमें आजाते हैं, जहांपर भयंकर अंधकार बढ़ता जाता है, जहां मुनि समुदायका संगम नहीं होता, जहां गुरु और देवका पूजन वर्जनीय है, जहां संयमका नाश करनेवाला भोजन होता है, जहां जीवोंके भक्षण करनेका अवसर आजाता है, जिस समय तमाम शुभ कार्य करना मना किये गये हों, जिस

समय किसीकी आना जाना रूपक्रिया भी रुक जाती है, ऐसे रात्रिके समय कौन धर्मात्मा पुरुष भोजन कर सकता है?

इन श्लोकोंमें रात्रि भोजनके दोष बतलाये गये हैं। एक वक्तकी बात है कि एक स्त्री रात्रिके समय भोजन बनारही थी श्रावणका महिना था मेंडकोंका संचार होरहा था, चूलेपर चढी हुई हंडीमें साग उबल रहा था, बाई तो कार्यवश दूसरे स्थानको गई, इतनेमें एक मेंडक उछलता कूंदता उस हंडीमें जागिरा और मरकर सागके साथ उबलने लगा, जब सब भोजन तैयार होगया और जीमनेवाले भाई थाली लेकर बैठ गये, बाईने थालीमें साग रोटी परोसी सागमें मेंडक आगया, जलनेवाले दीपककी टिमकार बिलकुल मद्दी थी, खानेवाले भाईने खाना शुरू किया, दो चार कौर खाये थे कि बादमें मेंडकके खानेकी बारी आई, एक कौरमें आ नहीं सकता था, खानेवालेने मेंडकपर रोटीका कौर जमाकर खूब मश्का पर मेंडकके टुकड़े न हुए, तब उसने दीपकको पास मंगाकर देखा तो बड़ा मेंडक दीखा, बड़ी ग्लानिपूर्वक भोजनको छोड़कर स्त्रीकी मरम्मत करने लगा, ऐसे २ एक नहीं अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं जिनमें जीवोंका भक्षण होता है और उससे भयंकर रोग पैदा होते हैं। जलोदर सरीखे प्राणघातक रोगका होना या और भी दूसरे २ रोगोंका होना इसी रात्रि भोजनके दुष्परिणाम हैं

इसलिये धर्मात्मा भाइयों को रात्रिभोजनका त्याग करना चाहिये।

पंचोदुंबर फलभक्षण त्याग—ऊपर बतलाए हुए पांच उदुंबर फलोंके खानेका त्याग करना चाहिये। इन फलोंमें चलते फिरते उड़ते हुए पंखी सरीखे जानवर प्रत्यक्ष दीखते हैं। इन फलोंका खाना मांस खानेके बराबर है इसलिये धर्मात्मा भाइयोंको इनका भक्षण करना त्याग करना चाहिये। तदुक्तं अमितगतिश्रावकाचारे—

क्षीरभूरुह फलानि भुञ्जते चित्रजीवनिहतानि येऽधमाः।
जन्मसागरनिपातकारणं पातकं किमिह ते न कुर्वते॥

अर्थः—जिनमें अनेक प्रकारके जीव रहते हैं. ऐसे दूधवाले वृक्षोंके फलोंको जो अधम-नीच लोग भक्षण करते हैं, वे संसार समुद्रमें निपात करनेका कारण रूप ऐसे कौनसे पाप हैं जिन्हें वे नहीं करते हैं? जो लोग उदंबर फलोंका भक्षण करते हैं वे लोग उन धीवरोंके समान हैं जो अनेक प्राणियोंका वधकर अपनी जीविका चलाते हैं। जो लोग उदुंबर फलोंके अन्दर प्राणियोंको देखते हुए भी खाते हैं वे जहां अनेक प्रकारके भयंकर दुःख हैं ऐसे नरकोंके भयंकर दुःखोंको बहुत समय तक भोगते हैं।

जीवदया—सच्चा धर्मात्मा वही पुरुष है जो छह काय के जीवोंकी दया पालता है। संसारी प्राणी अनादि काल से कर्मकी परतंत्रतामें रहकर घोर दुःखोको भोगता आ रहा है, अपने ही परिणामों द्वारा उपार्जित शुभाशुभ कर्मोंके उदयानुसार नानायोनियोंमें भिन्न २ जातिके शरीर धारणकर पर्यायबुद्धिसे सुख दुखकी कल्पना कर अपनी शेष आयुको पूर्ण करता है; उनको देखकर कर्मकी प्रक्रियाका विचारकर उनपर दया करनी चाहिये। बिना दया किये किसी प्रकारका संयम नहीं पल सकता। संयम ही संसार समुद्रसे तारनेवाला है। इसलिये संमय के पालने और संसार समुद्रसे तरनेके अभिलाषी भाइयों को जीवदया पालनी चाहिये।

जलगालन—जैनीका खास चिन्ह छानकर पानीका वर्तना है। छालनेका गलना मोटा और ३६ इंच प्रमाण होना चाहिये। छना हुआ पानी ४८ मिनट तक काममें आ सकता है उसके बाद यथा विधि फिर छानना चाहिये, जिवानी (बिल छानी) को एक पात्रमें इकट्ठा कर उसी जलस्थानमें पहुंचाना चाहिये जहांसे जल लाया गया हो, बिल छानी कुवेके ऊपरसे नहीं डालनी चाहिये क्योंकि ऐसा करनेसे छाननेका कोई लाभ न होकर उल्टे पापके भागी होना पड़ता है। बिलछानीके तमाम जीव

मर जाते हैं। ये भी अनुचित है कि किसी एक कुएके जलकी जिवानी दूसरे कुए अथवा नदी तालावमें डाली जाय, क्योंकि ऐसा करनेसे जिन जीवोंकी रक्षाके लिये ये कार्य किया जाता है वह नहीं हो सकता, जो लोग एक बूंद भी अन छने पानी को अपने काममें लाते हैं वे असंख्याते जीवोंके वध करनेके पापके भागी होते हैं। इसलिये जल यथा विधि छानकर काममें लेना चाहिये। बहुतसी जगहोंमें ऐसा रिवाज है कि सवेरेका छना हुआ पानी सारा दिन पीने आदिके काम आता है, उसको छना हुआ ही कहा जाता है, पर वह पानी छना हुआ नहीं है, प्रत्युत अनछना ही है। बहुतसे भाई वा बाइयें भी नलोंपर अनछने जलसे कुल्ले करते हैं कितने ही भाई पीते भी हैं और बहसमें कहते हैं कुल्ला करनेमें कोई पाप नहीं है। कोई गलेके नीचे तो उतरता नहीं। कितने ही भाई प्याऊपर अनछना पानी पीनेसे परहेज नहीं करते ऐसे भाइयोंको अनछने पानीके वर्तनेका जो दोष लगता है वह मांस भक्षण व जीव अदयाके दोषोंके बराबर ही होता है उसका फल भी वही होता है इसलिये अनछना जल वर्तावमें नहीं लेना चाहिये।

पंचकास्तुति—पंच परमेष्टीको नमस्कार करना सिवा पंच परमेष्टीके किसी अन्य कुदेवादिको नमस्कार नहीं

करना। सम्यग्दृष्टि जीव भय आशा स्नेह और लोभके अधीन होकर भी कुदेव कुआगम और कुगुरुको प्रणाम और विनय नहीं करता है। यदि करे तो घोरमिथ्यात्वका बंधकर अनंत संसारमें परिभ्रमण करता है। इसलिए पंच परमेष्ठीका ही शरण ग्रहण करता हुआ उन्हींको प्रणाम और उन्हींकी विनय करनी चाहिये।

ऊपर कहे हुए सात कर्त्तव्योंका पालन भी तभी हो सकता है जब पंच परमेष्ठीका उपासकपना होगा इसलिये पंच परमेष्ठीका उपासक होना प्रथम कर्त्तव्य है।

इस प्रकार पहली प्रतिमामें इन आठ मूलगुणोंका पालन करना जरूरी है और जिस प्रकार निरतिचार इन आठ मूलगुणोंका पालना जरूरी है उसी प्रकार निरतिचार सप्त व्यसनोंका त्याग, संसार, शरीर और इन्द्रियोंके विषयों से विरक्ति होना भी जरूरी है।

व्रत प्रतिमा—

पंच अनुव्रत आदरै तीनों गुणव्रत पाल।
सिच्छाव्रत चारों धरैं यह व्रत प्रतिमा चाल॥

अर्थः—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रतके धारण करने को व्रतप्रतिमा कहते हैं।

विशेष—यहां पांच अणुव्रतोंका निरतिचार पालन होता है, लेकिन गुणव्रत और शिक्षाव्रतके अतिचार सर्वथा नहीं टलते हैं। यदि यहां गुणव्रत और शिक्षाव्रतके भी अतिचार टल जांय तो फिर आगेकी कई प्रतिमाएं बेकाम हो जांय जैसे व्रतमें सामायिक आ ही जाता है फिर सामायिक प्रतिमा बेकाम ठहरती है इत्यादि जानना चाहिये।

सामायिक प्रतिमा—

द्रव्य भाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक।
तजि ममता समता गहै, अंतर्मुहूरत एक॥
जो अरि मित्र समान विचारै, आरत रौद्र कुध्यान निवारै।
संयम सहित भावना भावै, सो सामायिकवंत कहावै॥

अर्थः—मनमें समयकी प्रतिज्ञापूर्वक द्रव्यविधि (बाह्य क्रिया-आसन, मुद्रा, पाठ, शरीर और वचन की स्थिरता आदिकी सावधानी) भावविधि (मनकी स्थिरता और परिणामोंमें समताभावका रखना) सहित एक मुहूर्त अर्थात् दो घटी तक ममत्वभावरहित साम्यभाव ग्रहण करना, शत्रु और मित्रपर एकसा भाव रखना, आर्त और रौद्र दोनों कुध्यानोंका निवारण करना, और संयममें सावधान रहना सामायिक प्रतिमा कहलाती है। सामायिककी विधि सामायिक करते समय पंच नमस्कारकी आदिमें

और अंतमें तथा थोस्सामिकी आदिमें एक २ प्रणाम और हर एक प्रणाममें तीन २ आवर्तन, कायोत्सर्ग तथा वाह्य आभ्यंतर परिग्रह रहितता, और देववंदनाके आरंभमें तथा समाप्तिमें दो वार वैठना ऐसे तीन काल वंदना करें।

प्रोपधप्रतिमा कथन—

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोपधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोपधानशनः॥

अर्थः—प्रत्येक मासकी दो अष्टमी और दो चतुर्दशी ऐसे चार पर्वके दिनोंमें अपनी शक्तिको नहीं छिपा करके आहार पानादिकका त्याग व नीरस आहार, अल्पाहार व कंजिकाहार धारणकर शुभ ध्यानमें लीन हुआ नियम धारण करै सो प्रोपध नामकी चौथी प्रतिमा है।

सचित्तत्याग प्रतिमा—

जो सचित्त भोजन तजे पीवे प्राशुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष पंच प्रतिज्ञा गीर॥

जो सचित्त (जो जीव सहित हो ऐसे पदार्थ) का भोजन नहीं करता अर्थात् मूल, फल, शाक, डाली, करीर माने वंश किरण (कैरिया) कंद, फूल, बीज इन

कच्चे पदार्थोंको नहीं खाता तथा प्रासुक जल पीता है वह दयामूर्ति श्रावक पांचवीं सचित्त त्याग प्रतिमा धारी कहलाता है।

छट्टी रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा कथन—

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
सच रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकंपमानमनाः॥

अर्थः—जो प्राणियोंपर अनुकंपा (दयारूप मनका) धारक पुरुष रात्रिमें अन्नसे बनाये हुए भोजन, पान—जल, दूध, शर्बत आदि पीने योग्य और खाद्य—पेडा, बर्फी, मोदक आदि और लेह्य—चाटने योग्य रबडी आदि आस्वादन करनेका पान, सुपारी, इलायची, लौंग अन्य औषधादिक ऐसे चार प्रकारके भोजनको रात्रिमें भक्षण नहीं करता है उसके रात्रि भुक्ति त्याग नामकी छट्टी प्रतिमा होती है। किसी २ ग्रंथमें छट्टी प्रतिमाका नाम दिवामैथुनत्यागभी है जिसका लक्षण इस प्रकार है:—

जो दिन ब्रह्मचर्यव्रत पालै
तिथि आये निश दिवस सम्हालै।
गहि नौ वाडि करै व्रत रख्या
सो षट् प्रतिमा श्रावक अख्या॥

अर्थः—नौ वाड सहित दिनमें ब्रह्मचर्यव्रत पालन

करना और पर्वकी तिथियोंमें दिनरात ब्रह्मचर्य सम्हालना दिवामैथुनत्याग प्रतिमा है। नव वाड निम्न लिखित हैं-

१ स्त्रियोंके समागममें रहना, २ स्त्रियोंको रागयुक्त दृष्टिसे देखना, ३ स्त्रियोंसे परोक्षमें सराग संभाषणकरना, ४ पूर्वकालमें भोगेहुए भोगविलासोंका स्मरणकरना, ५ आनंददायक गरिष्ठ भोजनकरना, ६ स्नान मंजन आदिसे शरीरको आवश्यकतासे अधिक सजाना, ७ स्त्रियोंके पलंग आसन आदिपर सोना, बैठना, ८ कामकथा व कामोत्पादक कथाएं व गीतोंका सुनना, ९ भूखसे अधिक व खूब पेट भरकर भोजन करना, इन नौ प्रकारके व्यवहारके त्यागको जैनमतमें ब्रह्मचर्यका नव वाड कहा है।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा धारण कथन—

जो ना वाढि सहित विधि साधै
निशि दिन ब्रह्मचर्य आराधै ।
सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता
शीलशिरोमणि जग विख्याता ॥

अर्थ—जो नव वाड सहित सदा ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करता है वह ब्रह्मचर्य नामक सातवीं प्रतिमाका धारी ज्ञानी आत्मा संसारमें प्रसिद्ध शीलशिरोमणि होता है।

क्या समझकर ब्रह्मचर्य पालता है सो बतलाते हैं।

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतगंधिबीभत्सम् ।
पश्यन्नंगमनंगाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥रत्नकांड॥

अर्थ-यह स्त्रीका शरीर माताके रुधिर और पिताके वीर्यरूप मलसे बना हुआ है इसलिये इसका मल ही बीज है मलको ही उत्पन्न करनेवाला है मलकी योनि है और अत्यन्त घृणाका स्थान है। ऐसे शरीरको देखते हुए भी जो काम सेवनसे विरक्त होता है वह ब्रह्मचारी है और उसका सातवां दर्जा होता है। ये ब्रह्मचारी अपनी विवाही हुई स्त्रीका संबंध और निकट एक स्थानमें शयन नहीं करता है। भोगे हुए भोगोंका चिन्तवन नहीं करता है। इत्यादि ऊपर कही हुई नववाड़ से दूर रहता है।

अब आरंभत्याग नामकी आठवीं प्रतिमा कथन--

आठवीं प्रतिमाका धारी धन उत्पन्न करनेका कारण संपूर्ण व्यापारादि पापके आरंभोंका त्याग करता है अपने स्त्री पुत्र आदिको संपूर्ण परिग्रहका विभाग करके अपने पास थोड़ासा धन रखता है फिर नया उत्पन्न नहीं करता है, जो भी अपने पास थोड़ासा धन रक्खा हो उससे भी दुखित बुभुक्षितोंका उपकार करता तथा अपने शरीरका साधन औषधि भोजन वस्त्रादिमें लगता है साधर्मीके दुख दूर करनेके लिये देता है, पर किसी पापोत्पादक दूसरे

कार्यमें व्यय नहीं करता, कभी रक्खे हुए थोड़े धनको भी चोर, राजा अथवा दायाद वगैरह हरण करलें तो किसी प्रकारका संक्लेश नहीं करता, फिरसे उत्पन्न करनेका प्रयत्न नहीं करता, त्याग करने बाद ऊंचा ही चढता है और ऐसी भावना करता है—अहो मैंने रागी मोही होकर इतना परिग्रह रक्खा था सो चला गया, इसनें मेरे कर्मने बड़ा उपकार किया। ममता, आरंभ, रक्षा भयादिक संपूर्ण क्लेश से मैं छूट गया इसका भारी खोटा ध्यान रहता था सो सब सहजमें छूट गया इत्यादि रूप चितवन करनेवालेके आठवीं प्रतिमा होती है।

नवम परिग्रहत्यागप्रतिमा कथन—

जो बाह्य दश प्रकारके परिग्रहमें ममत्व छोड़कर और हमारा कुछ भी नहीं है ऐसे निर्ममत्वपनमें आसक्त रहता है और देहादिक व रागादिक समस्त परद्रव्य परपर्यायोंमें आत्मबुद्धिरहित होकर अपने अविनाशी ज्ञायक स्वभावमें स्थिर रहता है और जो भोजन वस्त्र स्थान कर्म मिला उससे अधिकको नहीं चाहता हुआ संतोषमें तत्पर सबकी इच्छा व दीनतारहित होता हुआ जो परिग्रह परिचित है उससेभी अत्यन्त विरक्त रहता है उसके नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा होती है।

विशेष—नवमी प्रतिमावालेके रुपया, मोहर, सोना, चांदी गहना आभरणादि संपूर्ण परिग्रहका त्याग है। शीत गर्मी आदिकी वेदना दूरकरनेके लिये थोड़े मोलका प्रमाणीक वस्त्र रखता है तथा हाथ पैर धोनेके लिये व जल पीनेके लिये ही पात्रमात्र परिग्रह को रखता है अपने घर में वा अन्य एकान्त स्थानमें शयन आसनादि करता है और भोजन वस्त्रादि जो घरका देवे उसे स्वीकार करे और सिवाय औषध, आहार, पान, वस्त्रादि की तथा शरीरके टहल करानेकी आपके इच्छा होय तो स्त्री पुत्रादिको कहे और घरका स्त्री पुत्रादि करदे तो करो नहीं करे तो उनसे ऐसा न कहे कि मकान, धन, आजीविका सब हमारा है तुम कैसे नहीं करते हो इस प्रकार अपने परिणामोंमें संक्लेशता न आने दे उसीके नवमी प्रतिमा होती है।

अनुमतित्याग नामा दशमी प्रतिमा कथन—

जो आरंभ, परिग्रह तथा इस लोक संबंधी विवाहादि कार्य तथा घरका बनवाना, व्यापार-सेवाकार्य आदिमें कुटुंबके लोग पूछें तो अपनी संमति नहीं देता "तुमने अच्छा किया" ऐसा मन, वचन, कायसेभी नहीं कहता और जिसके रागादि रहित सम भाव होता है उसके अनुमतिविरति नामक दशमी प्रतिमा होती है।

भोजन चाहे खाराहो कडुआहो मीठाहो स्वादरहित व स्वादसहितहो उसमें रागद्वेष रहित होकर ये अच्छा है या बुरा है ऐसा नहीं कहना तथा बेटा, बेटी, लाभ; अलाभ, हानि, वृद्धि, सुख, दुखादि संपूर्ण कार्योंमें हर्ष विषाद रहित होकर अनुमोदना नहीं करना सोही दशमी प्रतिमा है।

ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा कथन—

जो संपूर्ण परिग्रहोंका त्यागकर घरसे जहां मुनिवर्ग रहतेहों ऐसे वनमें जाकर गुरुके समीप व्रतोंको ग्रहण कर तपश्चरण करताहुआ वस्त्रके खंडको धारण करताहुआ भिक्षासे भोजन करता है सो उत्कृष्ठ श्रावक है। भावार्थ- जो घरसे व कुंटुंबसे विरक्त होकर वनमें जाकर मुनीश्वरों के निकट दीक्षा ग्रहण करे और एक लंगोटी या लंगोटी और ऐसा खंड वस्त्र धारण करे जिससे यदि सिर ढके तो पैर उघडे रहें और पैर ढके तो सिर उघडा रहे केवल कुछ डांस, मच्छर, शीत, गर्मी, वर्षा, वायुके परीषहमें सहारा मात्र दे सके और अयाचीक वृत्तिसे मौन धारण करतेहुए भिक्षासे भोजन करे, आपके निमित्तसे बनाये हुए भोजन को ग्रहण न करे, न्योतासे बुलाया हुआ न जावे अपने निमित्तसे कियेहुए कुछभी आरंभको जानलेवे तो भोजन का त्याग करे, वनमें व बाह्य मठ वगैरहमें रहे, उपसर्ग,

परीषह आजावे तो निर्भय होकर सहन करे, कायरता व दीनता न दिखावे, सदाकाल ध्यान व स्वाध्यायमें लवलीन रहे, गृहस्थके घर बिना बुलाया जावे, गृहस्थ यदि अपने बनाये हुए भोजनमेंसे भोजन भक्तिपूर्वक देवे तो ग्रहण करे उसमें ऐसा विकल्प न करे कि ये खारा है, मीठा है, कडुआ है, रसरहित व रससहित है। एक दिनमें एक बारही आहार ग्रहण करे यदि अंतराय होजावे तो उपवास करे, अपनी शक्तिके अनुसार अनशनादि तप करनेमें उद्यमशील रहे सो उद्दिष्टाहारत्यागी नामा ग्यारहवीं प्रतिमावाला उत्कृष्ट श्रावक है। इस प्रकार इस देशव्रत गुणस्थानमें ग्यारह प्रतिमाएँ ग्रहण करनेका उपदेश है सो गुरुसे उत्तरोत्तर अंगीकार करना चाहिये। परंतु नीचेकी प्रतिमाओंकी क्रिया छोडना नहीं चाहिये।

षट् प्रतिमा ताँई जघन मध्यम नौ पर्यंत।
उत्तम दशमी ग्यारमी इति प्रतिमा विरतंत॥

छटमी प्रतिमा तक जघन्य श्रावक, सातमींसे नवमीं अर्थात् सातमीं आठमीं नवमीं प्रतिमावाला मध्यम श्रावक तथा दशमीं और ग्यारहमीं प्रतिमावाला उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है इस प्रकार प्रतिमाओंका वर्णन पूर्ण हुआ।

पंचम गुणस्थानमें ५३ भावोंमेंसे कितने भाव होते?

वा ५७ आस्रवोंमें से कितने आस्रव होते ? तथा कर्म प्रकृतियोंके बंध उदय सत्ता आदिका वर्णन किया जाता है—

इस गुणस्थानमें जीवके ३१ भाव होते हैं उनका खुलाशा निम्न प्रकार है—

उपशमका एक—उपशम सम्यक्त्व।

क्षायिकका एक—क्षायिक सम्यक्त्व।

क्षयोपशमके १३- चक्षुदर्शन १ अचक्षुदर्शन २ अवधिदर्शन ३ मतिज्ञान ४ श्रुतज्ञान ५ अवधिज्ञान ६ दान ७ लाभ ८ भोग ९ उपभोग १० वीर्य ११ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व १२ और संयमासंयम १३।

औदायिकके १४- तिर्यंचगति १ मनुष्यगति २ क्रोध३ मान ४ माया ५ लोभ ६ स्त्रीवेद ७ पुरुषवेद ८ नपुंसकवेद ९ पीत १० पद्म ११ शुक्ललेश्या १२ अज्ञान १३ असिद्धत्व १४

पारिणामिकके दो- जीवत्व, भव्यत्व।

इस गुणस्थानमें ५७ आस्रवोंमेंसे ३७ होते हैं-

अविरति ११- एक त्रसकायिककी हिंसासे विरत बाकी सब।

योगकी ९- मनके ४ वचनके ४ और औदारिक काययोग।

कषाय १७- अनंतानुबंधी ४, अप्रत्याख्यान ४ ऐसी

८ प्रकृतियां घटानेपर शेष १७ प्रकृतियां रहती हैं।

इस गुणस्थानमें बंध योग्य प्रकृतियां ६७ हैं उनका खुलाशा-

९ ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ४- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शनावरण,

९ निद्रा, प्रचला, गोत्रकर्मकी १ उच्चगोत्र अंतरायकी ५ आयुकर्मकी १ देवायु,

१७ वेदनीयकी २ चारित्रमोहमें- प्रत्याख्यानावरण की ४ संज्वलनकी ४ और नोकषायकी स्त्री और नपुंसकवेदके बिना ७

३२ नामकर्मका- देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण ऐसे ३ शरीर वैक्रियिकांगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, स्पर्शादि ४, देवगत्यानुपूर्वी अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर।

४ बंधकी व्युच्छित्ति प्रकृतियां- प्रत्याख्यान कषायकी चौकडी।

८७ उदय योग्य प्रकृतियां ८७ हैं–

४३ ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ९ मोहकी १८- दर्शनमोहमें सम्यक्त्वप्रकृति चारित्रमोहमें- प्रत्याख्यानकी ४ संज्वलन ४ हास्यादिक ९ अंतराय की ५ आयुकी २ मनुष्य, तिर्यंचायु। गोत्रकी २ वेदनीयकी २

४४ नामकर्मकी- मनुष्यगति, तिर्यंचगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्माणशरीर, औदारिकांगोपांग, संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्शादिक ४ अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, विहायोगति, त्रस, बादर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, पर्याप्त, यशःकीर्ति, निर्माण, प्रत्येक शरीर।

८ उदययोग्य व्युच्छित्ति प्रकृतियां- प्रत्याख्यान ४ तिर्यंचगति १ तिर्यंचायु १ नीचगोत्र और उद्योत।

१४७ सत्वयोग्य प्रकृतियां १४७ होती हैं–

५० ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ९ मोहकी २८ अंतराय ५ आयु ३ नरक बिना,

४ गोत्र २ वेदनीयकी २

९३ नामकर्मकी- गति ४ जाति ५ शरीर ५ आंगोपांग ३ बंधन ५ संघात ५ संस्थान ६ संहनन ६ वर्ण ५ रस ५ गंध २ स्पर्श ८ आनुपूर्वी ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ आतप १ उद्योत १ विहायोगति २ उच्छ्‌वास १ त्रस १ बादर १ सूक्ष्म १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ प्रत्येक १ निर्माण २ साधारण १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुस्वर १ आदेय १ अनादेय १ यशःकीर्ति १ अयशःकीर्ति १ तीर्थंकर १

१ सत्वसे व्युच्छित्ति सिर्फ तिर्यंचायुकी ।

छट्ठा प्रमत्तगुणस्थान कथन—

यह गुणस्थान परम निर्ग्रंथ दिगंबर साधुकेही होता है यहांसे साधुके गुणस्थान प्रारंभ होते हैं, साधुका आचरण संसारी जीवोंसे उत्कृष्ट होता है फिरभी संज्वलन कषाय के उदयसे चित्रलाचरण होता है साधु अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करता हुआ अपने उत्तरगुणोंकी वृद्धि करनेमें प्रवृत्त होता है। साधु संसार शरीर और भोगोंसे निष्प्रह होता है शरीरमात्रही परिग्रह और आकाशही उसका वस्त्र होता है। ज्ञान ध्यान और तपमें रत रहता हुआ अपने आत्माके साधन करनेमें तत्पर रहता है। सो ही गोमटसार

जीवकांडके गुणस्थानाधिकारमें कहा है:—

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा ।
मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ॥

अर्थः–सकल संयमको रोकनेवाले प्रत्याख्यान कषाय के उपशमहोनेसे पूर्ण संयम तो होचुका है परंतु संयमके साथ संज्वलन और नोकषायके तीव्रोदयसे संयममें मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद होता है इसलिये इस गुणस्थान को प्रमत्तविरत कहते हैं। आचार्य, उपाध्याय, और साधु ये तीन परमेष्टी इसी गुणस्थानमें होते हैं। जो महाव्रती संपूर्ण मूलगुण (२८) और शीलसे युक्त होता हुआ भी व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकारके प्रमादोंको करता है उस प्रमत्तसंयतका आचरण चित्रल होता है।

भावार्थः-जिसका स्वयं अनुभव हो उसको व्यक्त और इससे विपरीतको अव्यक्त प्रमाद कहते हैं। चित्रल याने चितकबरा अर्थात् जिसमें किसी दूसरे रंगकाभी सद्भाव हो, क्योंकि छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनिका आचरण कषाय सहित होता है इसलिये चित्रल कहलाता है। प्रमाद १५ प्रकारके होते हैं- चार विकथा (संयमविरोधी कथा) स्त्रीकथा, भक्तकथा, राष्ट्रकथा, अवनिपालकथा, चार कषाय- क्रोध, मान, माया और लोभ। पांच इन्द्रियां- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण, एक निद्रा

और एक स्नेह (प्रणय) इस प्रकार प्रमाद १५ तरहके होते हैं। प्रमादोंके विषयमें विशेष जाननेके लिये पांच बातोंका ज्ञान होना चाहिये- संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और उद्दिष्ट। भेदोंकी गणनाको संख्या कहते हैं संख्याके रखने या निकालनेके क्रमको प्रस्तार, और एक भेदसे दूसरे भेदपर पहुंचनेके क्रमको परिवर्तन, संख्याके द्वारा भेदके निकालनेको नष्ट और भेदोंको रखकर संख्या के निकालनेको उद्दिष्ट कहते हैं। इनकी विशेष रचना जाननेके अभिलाषी श्री गोमट्टसार जीवकाण्डका स्वाध्याय करें।

जिनके आचरण रूप ये गुणस्थान हैं और जो बडे २ इन्द्रादि देवोंके द्वारा पूज्य हैं वे महात्मा लोग सदा जयवंत रहें। जोकि २८ मूलगुणोंके साथ ८४०००० उत्तरगुणों तथा १८००० शीलोंके भेद और १३ प्रकारके चरित्रको पालते, ध्यान, स्वाध्याय ही जिनका व्यापार है, बारह भावनाओंका सदा चिंतवन करते हुए सदा दर्शनविशुद्धयादि सोलह भावनाओंको भाकर तीर्थंकर सरीखी तीन लोक पूज्य प्रकृतिका बंध करना, संसारके समस्त प्राणियोंको रक्षा करनेके लिये व उनका हितसाधनके लिये स्वदया व परदया रूप प्रवृत्ति करने वाले, त्रैकालिक योगी निज और परके हितसाधन में सदा-

उद्योगी, वादर प्रमादको छोडकर शुक्ल लेश्याके धारक कामदेवके जीतने वाले, कषायके वैरी, ऐसे महात्माओं के भी इस गुणस्थानमें ३१ भाव और २४ प्रकारके आश्रव व प्रकृतियोंका बंध उदय और सत्व है। इन्हीं का वर्णन नीचे किया जाता है:—

इस गुणस्थानमें ५३ भावोंमेंसे ३१ भाव इस प्रकार होते हैं:—

१–उपशमका—उपशमसम्यक्त्व।

१–क्षायिकका—क्षायिकसम्यक्त्व।

१४–क्षयोपशमके–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य और क्षयोपशम चारित्र।

१३–औदयिकके–मनुष्यगति, संज्वलन कषायके चारों भेद, ३ वेद, पीत, पद्म शुक्ललेश्या, अज्ञान और असिद्धत्व।

२–पारिणामिकके–जीवत्व और भव्यत्व।

इस गुणस्थानमें होनेवाले २४ प्रकारके आस्रव निम्न प्रकार हैं:—

११–मनोयोग ४ वचनयोग ४ काययोग ३ औदारिक,

आहारक और आहारकमिश्र ।

१३-कषाय—संज्वलन ४ नोकषाय ९ १३

इस गुणस्थानमें बंध योग्य प्रकृति ६३ होती हैं:—

१० ज्ञानवरण ५ दर्शनावरण ५—चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा ।

१० और प्रचला, उच्चगोत्र, अंतरायकी ५, देवायु १, वेदनीय २ ।

११ चारित्रमोहमें संज्वलन ४ नोकषायकी ७ स्त्री नपुंसकवेदविना ।

३२—नामकर्मकी-देवगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ३-वैक्रियिक, तैजस और कार्माण, वैक्रियिक आंगोपांग, समचतरस्र संस्थान, स्पर्शादि ४, देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ प्रशस्तविहायोगति १ त्रस १ बादर १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुस्वर १ आदेय १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ तीर्थंकरत्व १

६—बंधसे व्युच्छित्ति—असातावेदनीय १ चरित्रमोहकी २ अरति, शोक । नामकर्मकी ३ अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति ।

८१—उदययोग्य प्रकृतिएं—

१५—ज्ञानावरण ५ दर्शनवरणकी ९ दर्शनमोहकी १ सम्यक्त्वप्रकृति ।

१९—चारित्रमोहकी १३-संज्वलनकी ४ नोकषाय की ९ अंतरायकी ५ आयुकी १

३—मनुष्यायु १ उच्चगोत्र १ वेदनीय १

४४—नामकर्मकी—मनुष्यगति १ पंचेन्द्रिय जाति १ शरीर ४—औदारिक, आहारक, तैजस, कार्माण । आंगोपांग २ औदारिक और आहारक। संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्शादि ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ विहायोगति २ त्रस १ वादर १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ सुस्वर १ दुस्वर १ आदेय १ पर्याप्त १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ प्रत्येक शरीर १

५—उदयमें व्युच्छित्ति—दर्शनावरणकी ३ निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि । नामकर्मकी २ आहारक, आहारकमिश्र ।

१४६—सत्त्वयोग्य प्रकृतियां—ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ९ मोहकी २८ अंतराय ५ आयु २ देवायु, मनुष्यायु गोत्रकी २ वेदनीय २ नामकर्मकी ९३

०—सत्वयोग्य व्युच्छित्ति इस गुणस्थानमें नहीं है।

इस प्रकार छट्टागुणस्थानका कथन समाप्त हुआ।

सप्तम अप्रमत्तगुणस्थान स्वरूपकथन—

संजलणणोकसायाणुदओ मंदो जदा तदा होदि।
अपमत्तगुणो तेण य अपमत्तो संजदो होदि ॥४५॥
गो. जीवकाण्ड।

अर्थ—जब संज्वलन और नोकषायका मंद उदय होता है तब सकल संयमसे युक्त उस मुनिके प्रमादका अभाव हो जाता है इसलिये इसगुणस्थानको अप्रमत्त संयत कहते हैं। इसके भी २ भेद होते हैं (१) स्वस्थान अप्रमत्त (२) सातिशय अप्रमत्त।

जिस संयतमें संपूर्ण व्यक्त और अव्यक्त प्रमाद नष्ट हो चुके हैं और जो समग्र ही महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण तथा शीलसे युक्त है तथा शरीर और आत्माके भेदज्ञानसे मोक्षके कारणभूत ध्यानमें लीन रहता है, ऐसा अप्रमत्त जबतक उपशमक या क्षपक श्रेणीका आरोहण नहीं करता तबतक उसको स्वस्थान अप्रमत्त अथवा निरतिशय अप्रमत्त कहते हैं।

दूसरा सातिशय अप्रमत्त—जहां अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलनके क्रोध मान माया लोभके

भेदसे १२ और हास्यादिक नव नोकषाय ऐसी २१ प्रकृतियोंका उपशम या क्षय करने और श्रेणी चढ़नेके लिये अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण करता है इनमें जो अधःकरण करता है वही सातिशय अप्रमत्त है अपूर्वकरण आठवां और अनिवृत्तिकरण नौवां गुणस्थान है। यह गुणस्थान छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनिके ध्यानस्थ योगरूप हुआ ही करता है जैसे-खाते पीते बैठते, चलते, फिरते, सोते तथा आत्मध्यान करते समय भी रहता है। इसकी स्थिति कम से कम स्वासके १४ वें भागसे लेकर एक समय कम एक मुहूर्त होती है (इस तरहके अंत मुहूर्तके असंख्यात भेद होते हैं) इसको स्वस्थान अप-मत्त कहते हैं।

जहां श्रेणी चढ़नेके लिये अधःकरणवाला शेष २१ प्रकृतियोंका उपशम या क्षयकरनेके संमुख होता है उसको सातिशय अप्रमत्त कहते हैं। इसका विशेष वर्णन ऊपर आचुका है इसलिये विशेष अब नहीं लिखा जाता है। जो विशेष यहां नहीं कहा गया है वह वहींसे ऐसा जानना चाहिये कि-इस गुणस्थानमें जो मरण करना होतो मरण समयमें चौथा गुणस्थान हो जाता है अगर मिश्रमिथ्यात्व का उदय आनेवाला होतो पहिले द्वितीय सासादन गुण-स्थान होकर मिथ्यात्व गुणस्थान हो जावे अगर मिश्रका

उदय आवे तो तीसरा गुणस्थान हो जावे अगर मरण नहीं करना हो और न मिथ्यात्वमें जाना हो तो सप्तम-गुणस्थान में ही ठहरकर उपशमसम्यक्त्वको क्षायिक बनाकर पीछे क्षपकश्रेणी चढ़कर कर्मोंका यथाक्रमसे नाशकर केवल ज्ञान पालेता है।

शंका-क्षायिक सम्यक्त्वके प्रादुर्भाव करनेके लिये तो केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलकी जरूरत होती है न?

उत्तर-हां केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलकी जरूरत जरूर रहती है।

शंका-तो वहांपर तो यह जीव स्वयं ध्यानस्थ रहता है उसे केवली या श्रुतकेवलीका संबंध कैसे मिलाया जाता है?

उत्तर-आत्मामें स्वयं अनंत शक्ति मानी गई है जो स्वयं श्रुतकेवली हो वह आत्मा अपने उपशमसम्यक्त्वको क्षायिक सम्यक्त्व रूप परिणमा सकता है। दूसरों की जरूरत नहीं। इस प्रकार सिद्धांत शास्त्रमें आचार्योंने वर्णन किया है।

अगर इस जीवका इस गुणस्थानमें मरण न हो या मिथ्यात्वमें जाना न हो तो यह जीव छट्ठे गुणस्थानमें ही ठहर सकता है।

शंका–ऊपर जो गुणस्थानोंका वर्णन आया है उनका काल कितना है ?

उत्तर–गुणस्थानोंके कालमें मिथ्यात्वका तो अनंत काल है। सासादनका केवल एक अंतर्मुहूर्त ही काल है। तीसरेका भी इतना ही है। सप्तम, अष्टम, नवम, दशम ग्यारहवें बारहवें और चौदहवेंका सबसे कम काल है। चौथा, पांचवां छट्ठा, और तेरहवें इनके समयकी स्थिति भिन्न भिन्न है। ऐसा कथन विशेष ज्ञानियोंका है।

चौथे गुणस्थानकी स्थिति—नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल और एक जीवकी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त और ज्यादा से ज्यादा ३३ सागरसे कुछ अधिक।

पांचवें गुणस्थानकी स्थिति—नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है एक जीवकी अपेक्षा कमसे कम अंतर्मुहूर्त ज्यादा से ज्यादा १ करोड पूर्वमें कुछ कम।

छट्ठे गुणस्थानकी स्थिति—नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है एक जीवकी अपेक्षा कम से कम एक समय होता है ज्यादा से ज्यादा अंतर्मुहूर्त होता है।

तेरहवें गुणस्थानमें जीवके रहनेका समय—पांचवें गुणस्थानकी तरह जानना।

इस प्रकार गुणस्थानोंमें जीवोंके रहनेका समय है।

इन गुणस्थानोंमें यदि जीव मरण करे तो इस प्रकार जन्म लेवे—

मिश्रगुणस्थान, क्षीणमोह और संयोगकेवली इन तीन गुणस्थानोंमें मरण नहीं होता है। क्योंकि ऐसा नियम है कि इन तीन गुणस्थानोंमें मरण होता ही नहीं है ऐसा आचार्योंका कहना है। सातवें, आठवें, नवमें, दशमें, ग्यारहवें गुणस्थानमें मरण करे तो उस समय मरणके पहिले क्रमसे गिरकर चौथे गुणस्थानमें आजावेगा और अंत समयमें अव्रतरूप परिणामोंको प्राप्त होजावेगा और मरणकर देव गति प्राप्त करेगा। उसकी हद सर्वार्थ सिद्धि तककी है। तथा व्रत धारण करनेके पहिले देवायु बांधली होय तो बादमें वह व्रत धारण नहीं कर सकता। अगर सम्यक्त्व तो पैदा नहीं हुआ और अनंतानु- बंधीकी शुक्ल लेश्यामें अव्रतसम्यक्त्वके विना हो तो वह जीव मरणकर या अकामनिर्जराकर भवनत्रिकमें पैदा हो सकता है, जैसे अन्य लिंगी या बालतपस्वी पैदा होते हैं।

अगर वही जीव मिथ्यात्वमें पहुंचकर मरण करे तो चारों गतियोंमें जन्म लेसकता है। अगर व्रत लिया हो तो नव ग्रैवेयक तक जा सकता है। दूसरे गुणस्थानवाला नरक को नहीं जाता है। चौथे गुणस्थानवाला जीव अगर सम्य- ग्दर्शन होनेके पहिले मिथ्यात्व अवस्थामें पर भवकी

आयु बांध चुका हो तो मरण होनेपर वह उसी गतिमें जावेगा जिसका उसने बंध किया है, यदि पहिले परभवकी आयु नहीं बांधी हो और मरण कररहा हो तो नियमसे देवगतिमें ही जावेगा।

शंका- इस प्रकारकी परिणतिवाले जीवकें इस गुणस्थानमें कितने भाव ? कितने आस्रव ? और कितनी प्रकृतियोंका बंध, बंधव्युच्छित्ति, उदय उदयव्युच्छित्ति, सत्व सत्वव्युच्छित्ति होती है सो कहो ?

उत्तर- इस गुणस्थाननमें जीवकें ५३ भावोंमेंसे ३१ भाव होते हैं- जिनमें उपशमका १ क्षायिकका १ क्षयोपशमके १४ औदयिकके १३ और पारिणामिकके २।

१- उपशमसम्यक् उपशमका भाव

१- क्षायिकसम्यक् क्षायिकका भाव

१४- क्षयोपशमके- दर्शनके ३- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, ज्ञानके चार- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान। ५ लब्धि- दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षयोपशमसम्यक्त्व और क्षयोपशमचारित्र।

१३- औदयिकके- मनुष्यगति, संज्वलन चौकड़ी, ३ वेद, ३ शुभ लेश्याएं पीत, पद्म, शुक्ल। अज्ञान

और असिद्धत्व ।

२- पारिणामिकके- जीवत्व, भव्यत्व ।

इस गुणस्थानमें २२ आस्रव होते हैं:- ९ योग और १३ कषाय २२ ।

९- योग- मनयोग ४ वचनयोग ४ काययोग १ औदारिककाययोग ।

१३- कषाय- संज्वलनकी ४ नोकषायकी ९=१३

इस गुणस्थानमें बंध योग्य प्रकृतियां ५९ होती हैं:-

१०- ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ५- चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल तथा निद्रा और

१८- प्रचला, उच्चगोत्र, ५ अंतरायकी, देवायु, साता-वेदनीय, चारित्रमोहकी ९- संज्वलन चौकड़ी, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद ।

३१- नामकर्मकी- देवगति १ पंचेंद्रियजाति १ शरीर ३- वैक्रियिक, तैजस, कार्माण, वैक्रियिकआंगोपांग १ समचतुरस्रसंस्थान १ स्पर्शादि ४ देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ श्वासोच्छ्वास १ प्रशस्तविहायोगति १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येक १ सुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ यशःकीर्ति १ निर्माण १

स्थिर १ आहारकशरीर १ आहारकआंगोपांग १ और तीर्थंकर १

१- बंधसे व्युच्छित्ति १ देवायुकी।

७६- उदययोग्य प्रकृतियां ७६ हैं:-

११- ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ६- चक्षु: अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा और प्रचला।

१९- चारित्रमोहकी १३- संज्वलन चौकड़ी और नोकपाय ९=१३ अंतरायकी ५ उच्चगोत्र १।

४- वेदनीयकी २ मनुष्यायु १ सम्यक्प्रकृति १

४२ नामकर्मकी प्रकृतियां-

मनुष्यगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ३- औदारिक, तैजस, कार्माण। औदारिकआंगोपांग १ संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्शादिक ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ श्वासोच्छ्वास १ विहायोगति २ त्रस १ बादर १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ पर्याप्ति १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ प्रत्येकशरीर १

४- उदयसे व्युच्छित्ति १ सम्यक्प्रकृति, संहनन ३- अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तास्फाटिक।

१४६- सत्व योग्य प्रकृतियां होती हैं-
ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरण ९ मोहनीय २८ अंत-
राय ५ आयु दो- देवायु और मनुष्यायु। गोत्रकर्म
२ वेदनीय २ नामकर्मकी ९३

४- सत्वसे व्युच्छित्ति प्रकृतियां अनंतानुबंधी क्रोध
मान माया लोभ।

इस गुणस्थानका नाम सातिशय है इसमेंही अधः-
प्रवृत्तकरण होता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है।
इसके परिणाम असंख्यातलोक प्रमाण होते हैं। और ये
परिणाम ऊपर २ सदृश वृद्धिको प्राप्त होते गये हैं (यह
जीव चरित्रमोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियोंके उपशम-क्षय
करनेके लिये अधःकरण- अपूर्वकरण- अनिवृत्तिकरणोंको
करता है) उसमेंसे अधःकरण श्रेणी चढनेके संमुख हुए
सातिशय अप्रमत्तके होता है। और अपूर्वकरण (विशुद्धि
से बढतेहुए ऐसे परिणाम जो पहिले कभी न पायेगये हों)
आंठवें गुणस्थानमें होते हैं। अनिवृत्तिकरण (शरीर वर्ण
अवगाहनादिसे भेद रहनेपरभी परिणामोंकी विशुद्धतामें
कोई भेद न हो) नवमें गुणस्थानमें पाये जाते हैं। करण
नाम आत्माके परिणामोंका है। इन परिणामोंमें प्रति
समय अनंतगुणी विशुद्धता होती जाती है जिसके बलसे
कर्मोंका उपशम-क्षय-स्थितिखंडन-अनुभागखंडन होता है।

इन तीनों करणोंका काल यद्यपि सामान्यालापसे अन्तर्मुहूर्तमात्र है तथापि अधःकरणके कालसे संख्यातवेंभाग अपूर्वकरणका काल है और अपूर्वकरणके कालसे संख्यातवें भाग अनिवृत्तिकरणका काल है इनका विशेष कथन गोमट्टसार जीवकाण्ड तथा लब्धिसारसे जानना चाहिये ।

अपूर्वकरण नामक अष्टम गुणस्थानका स्वरूप.

अंतो मुहुत्तकालं गमिऊण अधापवत्तकरणं तं ।
पडिसमयं सुज्झंतो अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥

अर्थः-जिसका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है ऐसे अधःप्रवृत्तकरणको विताकर वह सातिशय अप्रमत्तवर्ती प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धताको लिये हुए अपूर्वकरण जातिके परिणामोंको करता है। इसीको अपूर्वकरण नामक अष्टम गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

यहां पर (अपूर्वकरणमें) भिन्नसमयवर्ती जीवोंमें विशुद्ध परिणामोंकी अपेक्षा कभी भी परिणामोंमें सादृश्य नहीं पाया जाता, परंतु एक समयवर्ती जीवोंमें सादृश्य और वैसादृश्य दोनों ही तरहके परिणाम पाये जाते हैं। इस गुणस्थानमें नियमसे अनुकृष्टि रचना नहीं होती। इन परिणामों वाला जीव मोहनीय कर्मकी शेष २१ प्रकृतियों

का क्षपण अथवा उपशम करनेको उद्यत रहता है।

जिन जीवोंकी निद्रा और प्रचला कर्मकी बंधव्यु-च्छित्ति हो चुकी है और जिनका आयुकर्म विद्यमान है ऐसा उपशम श्रेणीका आरोहण करनेवाला जीव मोहनीय कर्मका उपशम वा क्षपक श्रेणीवाले जीव हैं सो नियमसे मोहनीयका क्षपण करते हैं। उपशम श्रेणीवाले जीवके नीचे उतरते समय मरण भजनीय है परंतु क्षपक श्रेणी वालोंका मरण होता ही नहीं है। इसका विशेष कथन गोमटसार व लब्धिसारसे जानना।

यहां इतना और समझ लेना कि उपशम सम्यग्दृष्टि ही उपशम श्रेणी माड़ता है। परंतु क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणी व क्षपकश्रेणी दोनों तरहकी श्रेणी माड़ता है। उपशमश्रेणी पर चलनेवालेका नियमसे पतन (नीचेके गुणस्थानोंमें उतरना) होता है परंतु क्षपक श्रेणीवाला जीव नियमसे केवलज्ञान उत्पन्न करता है। एक जीव ज्यादेसे ज्यादे श्रेणी आरोहण करता है तो ४ दफे करता है।

संयमकी अपेक्षा एक जीव ज्यादासे ज्यादा संयम ग्रहण करे तो ३२ दफे ग्रहण करे बत्तीसवें दफेमें नियम से मोक्ष जावे। सम्यग्दर्शनके विना जो महाव्रत धारण

किये जाते हैं वह संयम नहीं कहा जाता है क्योंकि सम्य-ग्दर्शन के बिना संयम संयम नहीं कहलाता है। (१) प्रथमोपशमसम्यक्त्व (२) वेदक (क्षयोपशम) सम्यक्त्व (३) देशसंयम (४) अनंतानुबंधीका विसंयोजन इन चारों प्रकारके आवश्यकोंको यह जीव उत्कृष्टपने अर्थात् अधिक से अधिक पल्यके असंख्यातमें भाग समयोंका जितना प्रमाण है उतनी बार छोड़ छोड़के बार २ ग्रहण कर सकता है पीछे अविनाशी सिद्धपदको प्राप्त कर लेता है।

एक पर्यायमें एक जीव श्रेणी माडेतो ज्यादा से ज्यादा दो उपशम और एक क्षपक ऐसे तीन वक्त माड सकता है तीनसे ज्यादा नहीं ऐसा नियम है।

यहांपर कोई २ आचार्यका ऐसा मत है कि जीव श्रेणी माडे तो क्षायिकसम्यग्दृष्टि या द्वितीयोपशम सम्य-ग्दृष्टिही श्रेणी माडे। प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिजीव श्रेणी नहीं माड सकता है। अन्य कोई आचार्यका मत है कि प्रथमो-पशमसम्यग्दृष्टिजीवभी श्रेणीका आरोहण कर सकता है। उसकी विधि इस प्रकार बतलाते हैं कि किसी जीवको काल लब्धि आनेवाली हो और वह जीव कोई पुण्य प्रकृतिके निमित्तसे अनंतानुबंधी संबंधी शुक्ल लेश्यामें मुनिव्रत धारणकर बादमें उसे केवली या श्रुतकेवलीका

संबंध मिलजावे पीछे वह जीव उनके निमित्तसे सम्यग्दर्शनको प्राप्तकर अनंतानुबंधीका विसंयोजनकर दर्शनमोहकी एक मिथ्यात्व प्रकृतिका उपशमकर तीन टुकड़े कर देता है पीछे वह जीव उपशम श्रेणी चढ सकता है। इस विधिसे प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिजीवभी श्रेणीका आरोहण कर सकता है। उस जीवके स्थितिखंडन, अनुभागखंडन, गुणश्रेणीनिर्जरा, गुणसंक्रमणादि स्तोक रूपसे होता है। चारित्रमोहकी प्रकृतियोंके द्रव्यको उत्तरोत्तर कषायोंमें क्षेपणकर पीछे सूक्ष्म लोभमें डार देता है। बादमें उसको उपशमाता है। उसका काल जघन्य अंतर्मुहूर्त है।

इसके बाद उस सूक्ष्म लोभका समय खत्म होनेसे फिरसे सूक्ष्म लोभका उदय आजाता है तब वहांसे गिरकर पहिले ऊपर कह चुके हैं वैसी व्यवस्था होजाती है।

इस गुणस्थानमें जीवके २८ भाव होते हैं:—

उपशमका एक- उपशमसम्यग्दर्शन।

क्षायिकका एक- क्षायिकसम्यग्दर्शन।

क्षयोपशमके १३- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, ५ लब्धि (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) क्षयोपशमचारित्र।

औदयिकके ११- मनुष्यगति १, संज्वलनकी ४, वेद ३, अज्ञान १, शुक्ललेश्या १, असिद्धत्व १।
पारिणामिकके २- जीवत्व, भव्यत्व ।

इस गुणस्थानमें २२ प्रकारके आस्रव होते हैं:—

९- योग- मनके ४ वचनके ४ औदारिककाययोग १
१३- कषाय- संज्वलनकी ४ और नोकषाय ९

इस गुणस्थानमें बंधयोग्य प्रकृतियां ५८ हैं:—

ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ६- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा और प्रचला । उच्चगोत्र १ अंतरायकी ५ वेदनीयकी १ सातावेदनीय, चारित्रमोहनीयकी संज्वलन क्रोध मान, माया, लोभ और हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद ऐसे ५

नामकर्मकी ३१- देवगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ३- वैक्रियिक, तैजस, कार्माण । वैक्रियिक-आंगोपांग १ समचतुरस्रसंस्थान १ स्पर्शादि ४ देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ विहायोगति १ त्रस १ वादर १ पर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ शुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ तीर्थंकर १ आहारक शरीर १ आहारक आंगोपांग १

३६- बंधसे व्युच्छिन्न प्रकृतियां ३६ हैं-

६- दर्शनावरण २- निद्रा, प्रचला। नोकषाय ४- हास्य, रति, भय, जुगुप्सा।

३०- नामकर्मकी- देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ४- आहारक, तैजस, कार्माण, वैक्रियिक। आंगोपांग २- वैक्रियिक, आहारक। स्पर्शादि ४ समचतरस्रसंस्थान १ प्रशस्तविहायोगति १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येकशरीर १ स्थिर १ शुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ निर्माण १ तीर्थंकरत्व १।

७२- उदययोग्य प्रकृतियोंके नाम-

ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ६- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा और प्रचला। चारित्रमोहकी १३- संज्वलन चौकडी और हास्यादिक नव नोकषाय= १३। अंतरायकी ५ आयुमें मनुष्यायु, उंचगोत्र १ वेदनीयकी २।

३९- नामकर्मकी- मनुष्यगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ३- औदारिक, तैजस, कार्माण। औदारिक आंगोपांग १ संस्थान ६ संहनन ३ वज्रर्षभनाराच

वज्रनाराच और नाराच। स्पर्शादिक ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ स्वासोच्छ्वास १ विहायोगति २ त्रस १ वादर १ स्थिर १ अस्थिर १ सुभ १ अशुभ १ सुभग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अपर्याप्ति १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ प्रत्येकशरीर १

६-उदयमें व्युच्छिन्न प्रकृतियां ६- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा।

१४२-सत्वयोग्य प्रकृतियां १४२ होती हैं—

ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ९ मोहनीयमें- दर्शनमोहकी ३ चारित्रमोहकी २१- अनंतानुबंधी संबंधी चौकडीको छोडकर, अंतरायकी ५ आयुकी २- मनुष्यायु और देवायु, गोत्रकी २ वेदनीय २ नामकर्मकी ९३।

४-सत्वसे व्युच्छिन्न प्रकृतियां ४- देवायु १ दर्शनमोहकी ३।

इस प्रकार अष्टम गुणस्थानका वर्णन संपूर्ण हुआ।

अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान स्वरूप कथन—

एकम्हि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहावि य परिणामेहि मिहो जेंहिं ॥५६॥ गो. जीव.

अर्थः—अंतर्मुहूर्तमात्र अनिवृत्तिकरणके कालमेंसे आदि मध्य या अंतके एकसमयवर्ती अनेक जीवोंमें जिस प्रकार शरीरकी अवगाहना आदि बाह्य कारणोंसे तथा ज्ञानावरणादिकर्मके क्षयोपशमादि अंतरंग कारणोंसे परस्परमें भेद पाया जाता है उस प्रकारका जिन परिणामोंके निमित्तसे परस्परमें भेद न हो उन्हें अनिवृत्तिकरण परिणाम कहते हैं।

अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उतने ही उसके परिणाम हैं। इसलिये उसके कालके प्रत्येक समयमें अनिवृत्तिकरणका एक एक ही परिणाम होता है ; ये परिणाम अत्यन्तही निर्मल ध्यानरूपी अग्निकी शिखाओं सहित होने से कर्मरूपी वनको भस्म करनेमें समर्थ होते हैं। यहां पर भिन्नसमयवर्ती परिणामोंमें सर्वथा विसदृशता और एक समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें सर्वथा सदृशता ही पाई जाती है। इन परिणामोंसे ही आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी गुणश्रेणिनिर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन, अनुभागकांडक खंडन होता है और मोहनीयकर्मकी बादरकृष्टि या सूक्ष्मकृष्टि आदि होती हैं।

स्पर्धकके पूर्वस्पर्धक आदिका विशेष वर्णन ऊपर आ चुका है वहांसे जानना चाहिए।

इस गुणस्थानमें जीवके २८ भाव होते हैं:—उपशम

१ क्षायिक १ क्षयोपशमक १३ औदयिक ११ पारिणामिक २ ऐसे २८।

उपशमका १–उपशमसम्यक्त्व।

क्षायिकका १–क्षायिकसम्यक्त्व।

क्षयोपशमके १३–चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शन, लब्धि ५-दान १ लाभ २ भोग ३ उपभोग ४ वीर्य ५, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और क्षयोपशमचारित्र १।

औदायिकके ११—मनुष्यगति १ कषाय ४ क्रोध मान-माया-लोभ, स्त्रीवेद १, पुरुषवेद १, नपुंसकवेद १ अज्ञान १, शुक्ललेश्या १, असिद्धत्व १।

पारिणामिकके २—जीवत्व १, भव्यत्व १।

इस गुणस्थानमें आस्रव १६ होते हैं:—

९–योग होते हैं–मनके ४ वचनके ४ औदारिक काययोग १।

७–कषायके–संज्वलन चौकड़ी और ३ वेद।

इस गुणस्थानमें बंधयोग्य प्रकृतियां २२ होती हैं—

ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ४–चक्षु-अचक्षु-अवधि केवल चारित्रमोहमें संज्वलन चौकड़ी और पुरुषवेद, ऊच-गोत्र १ सातावेदनाय १ अंतराय ५ और नामकर्मकी

यशःकीर्ति १।

५--बंधसे व्युच्छिन्न प्रकृतियां ५ होती हैं:—

चारित्रमोहमें संज्वलन चौकड़ी और नोकषायमें पुरुषवेद।

६६--उदययोग्य प्रकृतियां ६६ होती हैं:—

ज्ञानावरण ५ दर्शनावरणकी ६--चक्षु-अचक्षु-अवधि केवल-निद्रा-प्रचला। चारित्रमोहमें संज्वलन ४ वेद ३। अंतरायकी ५ उच्चगोत्र १ वेदनीयकी २ आयुकर्ममें सिर्फ मनुष्यायु १।

नामकर्मकी ३९—मनुष्यगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ३ औदारिक-तैजस-कार्माण। औदारिक आंगोपांग १ संस्थान ६ संहनन ३ वज्रर्षभनाराच वज्रनाराच और नाराच, स्पर्शादि ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ श्वासोच्छ्वास १ विहायोगति २ त्रस १ बादर १ स्थिर १ सुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ पर्याप्त १ यशःकीर्ति १ अस्थिर १ निर्माण १ असुभ १ दुःस्वर १ प्रत्येक शरीर १।

६--उदयसे व्युच्छित्ति ६ प्रकृतियोंकी होती है:—

संज्वलन क्रोध-मान-माया और स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद।

१३८ सत्वयोग प्रकृतियां होती हैं:—

ज्ञानावर्ण ५ दर्शनावरण ९ चारित्रमोहकी २१ अनंतानुबंधी चतुष्टयके बिना, अंतरायकी ५ आयुमें केवल मनुष्यायु, गोत्रकी २ वेदनीयकी २ नामकर्मकी ९३=१३८

३६-सत्वसे व्युच्छित्ति प्रकृतियां ३६ होती हैं:-

दर्शनावरणकी ३-निद्रानिद्रा, प्रचलप्रचला-स्त्यानगृद्धि। चारित्रमोहकी २०-अप्रत्याख्यान ४ प्रत्याख्यान ४ संज्वलन ३-क्रोध-मान-माया और नोकषायकी ९।

नामकर्मकी १३-गति २-नरक, तिर्यंच। नरकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी। विकलत्रय ३ उद्योत १ आतप १ एकेन्द्रिय १ साधारण १ सूक्ष्म १ स्थावर १।

इस प्रकार नवमें गुणस्थानका कथन समाप्त हुआ।
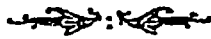
सूक्ष्मसांपराय नामक दशमगुणस्थानका कथन-

धुदकोसुंभयवत्थं होदि जहा सुहुमरायसंजुत्तं।
एवं सुहुमकसाओ सुहुमसरागोत्ति णादव्वो ॥५९॥गो जीव०

अर्थः-जिस प्रकार धुले हुए कसूमी वस्त्रपर सुर्खी (लालिमा) सूक्ष्म रह जाती है उसही प्रकार जो अत्यन्त

सूक्ष्म राग (लोभ) से युक्त जीव है उसको सूक्ष्मसांपराय-जहांपर ऊपर कहे हुए तीन तरहके करणों (परिणामों) से क्रमसे लोभ कषायके विना चारित्रमोहनीयकी शेष २० प्रकृतियोंका उपशम अथवा क्षय होनेपर सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभ कषायका उदय पाया जाता है, उसे सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान कहते हैं।

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहुमसंपराओ जहखादेणूणओ किं चि॥६०॥गो.जीव॥

अर्थः—चाहे उपशम या क्षपक श्रेणी आरोहण करने वाला कोईसा ही जीव हो वह सूक्ष्मलोभका अनुभव करने वाला है इसलिये इस गुणस्थानवाले जीवके परिणाम यथाख्यात चारित्रसे कुछ ही कम हुआ करते हैं। यह परिणाम यथाख्यात चारित्रको प्रगट करनेवाला है इसलिये यथाख्यात चारित्रसे कुछ ही कमीका स्वामी होता है।

इस गुणस्थानमें जीवके ५३ भावोंमेंसे २२ भाव होते हैं:-

उपशमका १--उपशम सम्यक्त्व।

क्षायिकका १--क्षायिक सम्यक्त्व।

क्षयोपशमके १३--दर्शन ३-चक्षु-अचक्षु-अवधि। लब्धि ५--दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य। ज्ञान ४--मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान।

क्षयोपशमचारित्र १

औदायिकके ५--मनुष्यगति १, लोभ १, अज्ञान १, शुक्ललेश्या १, असिद्धत्व १।

पारिणामिकके २--जीवत्व, भव्यत्व।

इस गुणस्थानमें जीवके ५७ आश्रवोंमेंसे केवल १० ही आस्रव होते हैं:—

९ योग--मनके ४, वचनके ४, औदारिक काययोग १।

१ कषाय--सूक्ष्मलोभ सिर्फ।

१७ इस गुणस्थानमें बंधयोग्य प्रकृतियां १७ होती हैं:

१७ ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ४ (चक्षु-अचक्षु-अवधि और केवलदर्शन) अयशस्कीर्ति १ अंतराय की ५ उच्चगोत्र १ वेदनीय १ साता १।

१६--बंधसे व्युच्छित्ति--ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ४ (चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल) अंतरायकी ५ उच्चगोत्र १ अयस्कीर्ति १।

६०.-उदययोग्य प्रकृतियां ६० हैं:-

ज्ञानावरण ५ दर्शनावरणकी ६ (चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल-निद्रा-प्रचला) अंतरायकी ५ उच्चगोत्रकी १ वेदनीय २ मनुष्यायु १ संज्वलन लोभ १।

३९ नामकर्मकी–मनुष्यगति १ पंचेन्द्रिय जाति १ शरीर ३ (औदारिक-तैजस-कार्माण। औदारिक आंगोपांग १ संस्थान ६ संहनन ३ (वज्रर्षभनाराच-वज्रनाराच-नाराच) स्पर्शादिक ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ विहायोगति २ त्रस १ बादर १ स्थिर १ अस्थिर १ सुभ १ असुभ १ सुभग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अपर्याप्त १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ प्रत्येक शरीर १।

२ उदयमें व्युच्छिन्न प्रकृतियां संहनन २–वज्रनाराच और नाराच।

१०२ सत्त्वयोग्य प्रकृतियां १०२ होती हैं:—

११–ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ६ (चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल-निद्रा प्रचला)

११–संज्वलनलोभ १ अंतरायकी ५ मनुष्यायु १ गोत्र २ वेदनीयकी २

८०–नामकर्मकी–गति २ (मनुष्य, देव) पंचेन्द्रिय-जाति १ शरीर ५ (औदारिक वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्माण) आंगोपांग सब, बंधन ५, संघात ५, संस्थान ६ संहनन ६ वर्ण ५ रस ५ गंध २ स्पर्श ८ आनुपूर्वी २-(मनुष्य और देव) श्वासोच्छ्वास १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ विहायोगति २

जाता है और उसके उपशम होते ही जो परिणामोंमें निर्मलता उत्पन्न होती है उसको उपशांतमोह नामका ११वां गुणस्थान कहते हैं।

इस गुणस्थानमें यह जीव चारित्रमोहकी २१ प्रकृतियोंका उपशम पूर्णरूपसे कर लेता है, इस समय इसकी परिणति क्षपककी तरह होती है। इसका काल भी अंतर्मुहूर्त मात्र ही होता है। पीछे उनमें से जो प्रथम प्रकृति सूक्ष्मलोभ की है उसका उदय आजानेसे वह जीव जो यथाख्यातचारित्र का अनुभव कर रहा था वहांसे गिरकर नीचे आता है सो सूक्ष्मलोभका अवलंबी होनेसे सूक्ष्मसांपरायनामक गुणस्थानको स्पर्श करता हुआ कर्म प्रकृतियोंके लोकप्रमाण अविभागी प्रदेशोंको बांधनेवाला होता है। अगर इसको मरण करना हो तो जिस क्रमसे चढा था उसी क्रमसे उतरता हुआ चतुर्थ गुणस्थानमें जाकर ठहर जाता है। अगर सम्यग्दर्शनकी सत्तामें आयुका बंध किया हो तो इस गुणस्थानमें मरण करेगा। यदि सम्यग्दर्शन होनेके पहिले मिथ्यात्वदशामें आयुकर्मबंध किया हो तो मिथ्यात्व गुणस्थानमें जाकर मरण कर व्यंतरादिक देवोंमें जा उपजेगा। विना सम्यग्दर्शनके कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न नहीं होता। अगर मरण नहीं करना हो तो ग्यारहवें गुणस्थान से उतरकर नीचे आ क्षपक श्रेणी चढ सकता है। कदा-

चित् क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि हो, तो अपने सम्यक्त्वको क्षयोपशम सम्यक्त्व बना लेता है। अगर ऐसा नहीं करे तो चौथेसे तीसरे और फिर तीसरेसे मिथ्यात्वको पा जाता है, अगर ऐसा भी न करे तो चौथेसे दूसरा सासादन और फिर मिथ्यात्वमें जा पहुंच सकता है। इसमें कोई विरोध नहीं आता।

अगर ऊंचा चढना चाहे तो फिर ऊंचा चढ सकता है। पुनः अपने सम्यक्त्वको उपशम बनाकर श्रेणी चढ सकता है। मिथ्यात्वसे पुनः मिथ्यात्वमें न आकर सातवें गुणस्थानको स्पर्शकर फिर ऊपर चढ़ सकता है। ऐसा होनेमेंभी कोई विरोध नहीं आ सकता है।

जो जो आवश्यक क्रियाएं तथा भाव आश्रव व प्रकृतियोंका परिस्पंद गुणश्रेणीनिर्जरा, स्थितिखंडन अनुभागकाण्डखंडन व गुणसंक्रमणादिक आवश्यक जितनाभी कार्य पहिले चढ़ते वक्त बतलाया था जो स्वस्थानाप्रमत्तसे ऊपर था वही कार्य नीचे गिरते समय उसी शीघ्रतासे असंख्यात असंख्यातगुणा चढ़कर पीछे फिर बंध करता है।

जब यह जीव उपशमश्रेणीमें रहकर उसको पूर्ण कर लेने बाद जब गिरता है, तब इसका परिणाम सम्यग्दर्शन

सहित है तबभी चढ़ती समयके सम्यग्दर्शन भावसे महान पतनशील है। क्योंकि उस समय तो उत्साहरूप और इस सयम पतनशील है।

इनमें उनमें रात दिन सरीखा फरक है। इसका विशेष कथन धवलसिद्धांत व गोमट्टसारके जीवकांडकी बड़ी टीका व लब्धिसार क्षपणासारसे समझना चाहिये। यह एक छोटासा संग्रहीत ग्रंथ है इसलिये संक्षेपमेंही लिखा गया है।

इस गुणस्थानमें जीवके २२ भाव होते हैं:-

२- उपशमके- उपशमसम्यक्त्व, उपशमचारित्र

२- क्षायिकके- क्षायिकसम्यक्त्व, उपशम यथाख्यात

१२- क्षयोपशमके- दर्शन ३- चक्षु, अचक्षु, अवधि लब्धि ५- दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य ज्ञान ४- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान।

४- औदयिकके- मनुष्यगति १ अज्ञान १ असिद्धत्व १ शुक्लेश्या १

२- पारिणामिकके- जीवत्व, भव्यत्व।

इस गुणस्थानमें आश्रव ९ प्रकारके होते हैं:-

९- योग- मनके ४ वचनके ४- औदारिक काययोग १

इस गुणस्थानमें बंधयोग्य प्रकृति सिर्फ १ साता वेदनीय होती है।

बंधकी व्युच्छित्ति नहीं होती।

५९- उदययोग्य प्रकृतियां होती हैं:—

१०- ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ६- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा—

१०- प्रचला। अंतरायकी ५ मनुष्यायु १ उच्च-गोत्र १ वेदनीय २

३९- नामकर्मकी- मनुष्यगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ३- औदारिक, तैजस, कार्माण। औदारिकआंगोपांग १ संस्थान ६ संहनन शुरुके ३ स्पर्शादि ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ श्वासोच्छ्वास १ विहायोगति १ त्रस १ बादर १ स्थिर १ सुभ १ अशुभ १ सुभग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अपर्याप्ति १ अस्थिर १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ प्रत्येकशरीर १

२- उदयसे व्युच्छिति २- वज्रनाराच और नाराच

ऐसे दो संहनन

१०१- सत्व योग्य प्रकृतियां होती हैं:-

११- ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ६- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा, प्रचला

१०- अंतराय ५ मनुष्यायु १ गोत्र २ वेदनीय २

८० नामकर्मकी-

मनुष्यगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ५ आंगोपांग ३ बंधन ५ संघात ५ संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्शादि २० आनुपूर्वी २ मनुष्य तथा देव। अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ विहायोगति २ उच्छ्वास १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अनादेय १ अयशःकीर्ति १ निर्माण १ तीर्थंकर १ यशःकीर्ति १ देवगति १।

१- सत्वमें व्युच्छित्ति १ संज्वलन लोभकी।

इस प्रकार ग्यारहवें गुणस्थानका वर्णन समाप्त हुआ।

क्षीणमोह नामक १२ वें गुणस्थानका स्वरूप–

णिस्सेसखीणमोहो फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णदि णिग्गंथो वीयरायेहिं ॥ ६२ ॥

॥ गो. जीव. ॥

अर्थः–जिस निर्ग्रंथ महामुनिका चित्त मोहनीयकर्मके सर्वथा क्षीण होजानेसे स्फटिकके निर्मल पात्रमें रक्खे हुए जलके समान निर्मल होगया है उसको वीतरागदेवने क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानवर्ती कहा है ।

इस प्रकारके स्वरूपको प्राप्त होनेवाले श्री महामुनि जब श्रेणिका आरोहण करते हैं उस समय तीनों योगोंसे युक्त होतेहुए आत्मध्यानमें लवलीन होते हैं तब गुण से गुणांतर, द्रव्यसे द्रव्यांतर, और पर्यायसे पर्यायांतर, भावसे भावांतर, सर्पकी चाल तथा अश्वकर्णविधि–घोड़के जैसे कर्ण होते हैं– मस्तकके पासमें कुछ कम जाड़े, बीचमें और बड़े, ऊपर तीखेपनसे युक्त, इस प्रकारके भावोंमें वह निर्ग्रंथ मुनि असंख्यातबार अधःकरणमें नीचे से ऊपर और ऊपरसे नीचे जाया आया ही करता है । सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवाला श्रेणि चढनेके संमुख होता हुआ गुणस्थानसे जब आगे बढता है तब उसका नाम अपूर्वकरण होता है । इस गुणस्थानमें उस निर्ग्रंथ मुनिके

ऐसे भाव होते हैं जो उसकी अनुभूतिके अगम्य है, क्योंकि इस महामुनिने अपने परिणामोंकी विशुद्धि द्वारा ऐसे अपूर्व-भाव जो आजसे पहिले कभी नहीं पाये थे, पाये हैं। परंतु परोक्षरूप प्रमाणको मानकर उस पर श्रद्धाकर सिद्धान्तानुसार अपने कर्तव्यके अनुकूल प्रवृत्ति करनेसे अपने आप यह आत्मदेव कर्मोंकी असंख्यातगुणी निर्जरा करता है।

आगे अनिवृत्तिकरणको भी ये जीव तब प्रारंभ करता है जब उन कर्मोंकी स्थितिखंडन व अनुभागखंडन के द्वारा कषाय वेदादिकका तथा हास्यादिकका नाशकर बादरकृष्टिसे सूक्ष्मकृष्टिको करता है तब लोभके द्रव्यमें तमाम कषायको क्षेपणकर संज्वलनलोभको इतना सूक्ष्म बना देता है कि वह लोभ टिमटिमातेहुए दीपककी तरह समयमात्रमेंही निःशेष होनेवाला होजाता है इसके दो भेद होते हैं (१) उपशमी- तो ग्यारहवें गुणस्थानमें जाता है (२) क्षपक-ऊपर बतलायेहुए कर्तव्य द्वारा चारित्रमोहकी जो २१ प्रकृतियां हैं उनको क्षिपा देता है अर्थात् क्षय कर देता है। ऐसा मुनि ११ वें गुणस्थानमें न जाकर दशवें गुणस्थानसे सीधा क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानमें जाता है।

यह गुणस्थान कैसा है? जिसमें एक अंतर्मुहूर्त पीछे साम्राज्यरूप जाज्वल्यमान केवलज्ञानरूपी सूर्यको

प्राप्त कर लेता है (अर्हंत पदको पाजाता है) इस गुणस्थान के नीचेके जो गुणस्थान बतलाये हैं उनका पृथक् २ अंतर्मुहूर्तकाल है परंतु वह काल छोटा है सप्तम गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक जो कालकी मर्यादा अंतर्मुहूर्त मानी है वह ऊपर २ अंतर्मुहूर्त बडा है। अंतर्मुहूर्तके असंख्यात भेद सिद्धांतमें बताये गये हैं।

शंका- यहां आपने ऐसा बतलाया है कि एक अंतर्मुहूर्तमें जीव सप्तम गुणस्थानसे बारहवें गुणस्थानतक जाता है। हमने तो ऐसा सुना है कि जीव नित्यनिगोद से निकलकर अंतर्मुहूर्तमें मोक्षतक पहुंच जाता है ऐसा कैसे होता होगा सो कहो ?

उत्तर- आपका कहना ठीक है। जो आपने कहा वह सामान्य वचन है और जो हमने कहा वह विशेष वचन है। इसमें उसमें कुछ फरक तो है नहीं सिर्फ थोडा सो समझकाही फरक है वास्तवमें देखाजाय तो अपेक्षा जन्य बात है और कोई फरक नहीं।

इस गुणस्थानमें चारित्रमोहका क्षय हो गया है इससे एकप्रकारसे मोहका अभावही होगया अतएव क्षपक और उपशमक इन दोनोंके परिणामोंमें कषायका अभाव है

इसलिये दोनोंके यथाख्यातचारित्र समान है उसीसे वाह्य आभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहके अभाव होनेसे दोनो निग्रंथ हैं।

इस गुणस्थानवर्ती जीवके ५३ भावोंमेंसे २० भाव होते हैं:- क्षायिक २- क्षयोपशमके १२ औदायिकके ४ और पारिणामिकके २।

२- क्षायिकके- क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्र

१२- क्षयोपशमके- दर्शनके ३- चक्षु अचक्षु, अवधि अंतरायके ५- दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। ज्ञानके ४- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान।

४- औदयिकके- मनुष्यगति १ अज्ञान १ असिद्धत्व १ शुक्लेश्या १

२- पारिणामिकके- जीवत्व, भव्यत्व।

इस गुणस्थानमें आश्रव ९ होते हैं:-

९- योग- मनके ४ वचनके ४ औदारिक काययोग १

इस गुणस्थानमें बंधयोग्य प्रकृति सिर्फ १ सातावेदनीय है।

बंधयोग्य प्रकृतिका विच्छेद नहीं है।

५७- उदययोग्य प्रकृतियां हैं:-

११- ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ६- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा, प्रचला।

९- अंतरायकी ५ मनुष्यायु १ उच्चगोत्र १ वेदनीय २

३७- नामकर्मकी- मनुष्यगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ३- औदारिक, तैजस, कार्माण। औदारिक अंगोपांग १ संस्थान ६ संहनन १ वज्रर्षभनाराच, स्पर्शादिक ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ श्वासोच्छ्वास १ विहायोगति २ त्रस १ बादर १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ असुभ १ सुभग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अपर्याप्ति १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ प्रत्येकशरीर १

१६- उदयमें व्युच्छिन्न प्रकृतिया:-

१६- ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ६- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा, प्रचला। अंतरायकी ५

१०१- सत्वयोग्य प्रकृतियां इस गुणस्थानमें होती हैं:-

११- ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ६- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा, प्रचला।

१०- अंतरायकी ५ मनुष्यायु १ गोत्र २ वेदनीय २

८०- गति २- मनुष्य, देव। जातिपंचेन्द्रिय १ शरीर ५ आंगोपांग ३ बंधन ५ संघात ५ संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्शादिक २० (वर्ण ५ रस ५- गंध २ स्पर्श ८) आनुपूर्वी २- मनुष्य, देव। अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ विहायोगति २ श्वासोच्छ्वास १ त्रस १ बादर १ पर्याप्ति १ अपर्याप्ति १ प्रत्येक १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अनादेय १ यशःकीर्ति १ अयशस्कीर्ति १ निर्माण १ तीर्थंकर १

१६- सत्त्वसे व्युच्छित्ति-

ज्ञानावरण ५ दर्शनावरणी ६- च. अ. अ. के- निद्रा प्रचला अंतरायकी ५=१६

इस प्रकार क्षीणमोहनामक गुणस्थानका कथन समाप्त हुआ।

सयोगकेवलि गुणस्थान निरूपण–

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवललद्धुगमसुजणियपरमप्पववएसो ॥ ६३ ॥
॥ गो. जी. ॥

अर्थः- जिसका केवलज्ञानरूपी सूर्यकी अविभागप्रतिच्छेदरूप किरणोंके समूहसे (उत्कृष्ट अनंतानंत प्रमाण) अज्ञान अंधकार सर्वथा नष्ट होगया हो और जिसको नव केवल लब्धियोंके (क्षायिकसम्यक्त्व- ज्ञान, चारित्र, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होनेसे " परमात्मा " यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त होगया है, वहः-

असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण
जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो ॥६४॥

अर्थः- इन्द्रिय आलोक (प्रकाश) आदिकी अपेक्षा न रखनेवाले, ज्ञान दर्शनसे युक्त होनेके कारण केवली, और काययोगसे युक्त रहनेके कारण सयोगी, तथा घातियाकर्मों से रहित होनेके कारण जिन कहा जाता है ऐसा अनादि निधन आर्ष आगममें कहा है।

भावार्थ- बारहवें गुणस्थानका विनाश होतेही जिसके ज्ञानावरणादि तीन (मोहनीय कर्म पहिलेही नष्ट होचुका है इसलिये यहां तीन ही ग्रहण करना चाहिये) घाति

और सोलह अघाति प्रकृति संपूर्ण मिलकर ६३ प्रकृतियों के नष्ट होनेसे अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्य इन चार अनंत चतुष्टय तथा नव केवललब्धि प्रकट होचुकी हैं। और जो काययोगसे युक्त है उस अर्हत को तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहते हैं। ६३ प्रकृत्तियां इस प्रकार हैं–

आयु गति गत्यानुपूर्वी नर्क तथा तिर्यंच मिलान ।
विकलत्रय अरु देवायु है उद्योतातप एकेन्द्रियज्ञान ॥
साधारण सूक्ष्म अरु थावर घातिकर्म सेंतालिश मान ।
यों मिल नाशी त्रेसठ प्रकृति ताहीको अर्हत बखान ॥

इस सवैयामें कहीहुई त्रेसठ प्रकृतियोंको अर्हत परमात्मा नाश करते हैं वे त्रेसठ प्रकृतिया–

ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ९ मोहनीयकी २८ अंतरायकी ५ इसतरह ४७ तो घातिया कर्मकी और आयुकी ३ (नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु ऐसी तीन) विकल चतुष्क (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) गति- नरक, तिर्यंच । आनुपूर्वी- नरक, तिर्यंच । उद्योत, आतप, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, ऐसी १६ नाम कर्मकी ।

इस प्रकार ४ घातिया कर्मों सहित त्रेसठ प्रकृतियों के नाश करनेपर तेरहवां गुणस्थान और केवलज्ञान प्राप्त करता है इसी बातको आचार्य श्री उमास्वामीजी अपने मोक्षशास्त्रमें बताते हैं-

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलम् ।

अर्थः- मोहनीयकर्मका क्षय सूक्ष्मसांपराय नामके दशम गुणस्थानके अंत समयके चरम समयमें हो जाता है (तत्पश्चात् अंतर्मुहूर्त प्रमाण बारहवें क्षीणकषाय नामक गुणस्थानमें विश्राम करता है) यहांपर (क्षीणकषाय गुणस्थानमें) मोहनीयके नष्ट होजानसे आत्मामें ऐसी विशुद्धिता जाग्रत होजाती है जिससे कि इस गुणस्थानके पूर्ण होते २ अंतमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्म का क्षयकर केवलज्ञान उत्पन्न होता है इसी आत्माको अर्हंत परमेष्ठी कहते हैं ।

शंका-परमेष्ठी किसे कहते हैं वे कितने और कौन २ होते हैं सो कहो ?

उत्तर-परमेष्ठी उन्हें कहते हैं जिनका दर्जा सबसे ऊंचा होता है ऐसा दर्जा जो सब जीवोंको इष्ट हो मोक्ष हैं उसमें स्थित होगये हों अथवा नियमसे स्थित होनेवाले हों । ऐसे परमेष्ठी पांच होते हैं- अर्हंत,

सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु।

जिन्होंने चार घातिया कर्मोंका अभाव अपनी आत्मासे किया हो, तथा समवसरणमें गंधकुटीसे चार अंगुल अंतरीक्ष विराजमान हों, महामंडलेश्वरके प्रश्नका निमित्त पाकर दिन रातके सुबह, दुपहर, साम और आधीरातके समय अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भव्यजीवोंको विना इच्छा मोक्षमार्गका उपदेश देतेहुए शरीर सहित हों उन्हें अर्हंत सकल परमात्मा कहते हैं।

ज्ञानही जिनका शरीर होता है, द्रव्यकर्म-ज्ञानावरणादि भावकर्म-चैतन्यकर्म रागद्वेषादि और नोकर्म-शरीरादि ऐसे तीन प्रकारके कर्मसे रहित, शरीर विहीन जो निरंतर आत्माके सुखके अनुभोक्ता होते हैं ऐसे निकल परमात्मा सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं।

जो पांच प्रकारके आचारको खुद आचरते हैं और अपने शिष्योंसे आचरवाते हैं, जो दीक्षाविधान व प्रायश्चित विधान कराते हैं ऐसे मुनि जो गणके मुखिया होते हैं आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं।

जो ग्यारह अंग चौदह पूर्वके पाठी हैं, आप खुद पढते हैं और दूसरे साधुओंको पढाते हैं, तथा आत्मानुभव करनेमें तत्पर रहते हैं उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

जो इन्द्रियोंके विषयोंकी आशासे विमुख रहते हैं, कोई प्रकारका आरंभ नही करते, परिग्रह नहीं रखते; ज्ञान ध्यान और तपमें ही लवलीन रहतेहुए रत्नत्रयका आराधन करते हैं ऐसे मुनि साधु परमेष्ठी कहलाते हैं।

पंच परमेष्ठी वाचक मंत्रोंको बतलानेके लिये द्रव्य संग्रहमें कहा हैं—

पणतीससोल छप्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह
परमेट्ठीवाचयाणं अण्णं च गुरुवएसेण ॥४९॥

अर्थः— परमेष्ठीके वाचक ऐसे—पैंतीस—सोलह—छ—पांच—चार—दो—और एक अक्षरवाले मंत्रोंका जपन और ध्यान करना चाहिये तथा गुरुओंके उपदेशसे दूसरे २ मंत्रोंका भी जपन और ध्यान करे।

शंका—जो शब्द पंचपरमेष्ठी वाचक हैं उनकी व्युत्पत्ति क्या है? सोभी कहो।

उत्तर-एक अक्षर वाला मंत्र ओं ही ले लीजिये ये ओं शब्द पांचों परमेष्ठीको ध्यानमें लाता है। वह कैसे? सो बतलाते हैं—

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेष्ठी ॥

अर्थ–अर्हंत, अशरीर, आचार्य, उपाध्याय और मुनि इन वाचक शब्दोंके प्रथम अक्षरको लेनेसे व्याकरणके सूत्रोंके नियमके अनुसार संधि करदेनेसे ओंकार शब्द निष्पन्न होजाता है जो पंच परमेष्ठी अर्थका ज्ञापक है। जैसे-अर्हंतका अ और अशरीर (सिद्ध) का अ दोनोंकी संधि व्याकरणके "अकःसवर्णे दीर्घः" इस सूत्रसे कर देनेसे बडा आ होजाता है बादमें उसी सूत्रसे आचार्यके आ के साथ संधि करदेनेसे भी बडा आ होजाता है फिर उपाध्यायकी उ के साथ "आद्गुणः" इस सूत्रके नियमके अनुसार गुण संधि करनेसे आ+उ=ओ हो जाता है बादमें मुनि (साधु) का प्रथमाक्षर म को जोडदेनेसे 'ओम्" शब्द निष्पन्न हो जाता है। इस ओम् शब्दका यदि ध्यान किया जाता है तो ध्यानमें पांचों परमेष्ठीका चिंतवन हो सकता है। ऐसेही दो अक्षर का मंत्र "सिद्ध" है। चार अक्षर का मंत्र "अरहंत" है पांच अक्षरकामंत्र "अ सि आ उ सा" है। छ अक्षर का मंत्र "अरहंत सिद्ध" है सोलह अक्षर का मंत्र-अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु है। ३५ अक्षर का मंत्र "णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो-लोए सव्वसाहूणं" है। इन अक्षर वाले मंत्रोंका जपन और ध्यान करनेसे परमेष्ठीका ही ध्यान सिद्ध होता है। सो

ध्यान इन्हीं मंत्रोंका ही करे, सो तो करे पर श्री वीतराग परमगुरु आचार्य महाराज और २ भी सिद्धचक्रादि मंत्रों को बतलावें तो उनका भी ध्यान व जपन करना चाहिये। क्योंकि हर एक मंत्रके जपन व ध्यानका मूल उद्देश्य पंचपरमेष्ठीके गुणोंकाही स्मरण करना है।

इन पंच परमेष्ठीमें पहिले चार घातिया कर्म नाश करने वाले अरहंत और आठों कर्म नाश करनेवाले सिद्ध कहलाते हैं, इनमें ज्यादा महत्व सिद्धोंका है। प्रथम उन्हींका स्मरण करना चाहिये परंतु ऐसा न कर प्रथम अरहंतको क्यों स्मरण किया गया है?

समाधान-संसारी प्राणी स्वार्थसे भरा हुआ है, स्वार्थी आदमी सबसे पहिले अपने साक्षात् उपकार करने वालेका पहिले ख्याल रखता, जो पहिले उपकार कर गये हैं उनका बादमें। अरहंतके स्वरूपके वर्णनमें ऊपर बतलाया जा चुका है कि अरहंत भगवान परमौदारिक शरीरमें रहकर बहुत समय तक अपनी अलौकिक दिव्य-ध्वनि द्वारा भव्य जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुटने और मोक्षमार्गमें लगनेका उपदेश देते हैं। इनका वर्तमान काल है। जैसा ये उपदेश करते हैं वैसा उपदेश सिद्धोंनेभी पहिले किया है, जिस समय वे भी परमौदारिक शरीरमें रहतेहुए अघातिया चार कर्मों सहितथे, संसारीथे। अब उनके शरीर

नहीं है, शब्दोंका अधिष्ठान वर्तमान शरीर है, अतएव उनके द्वारा उपदेश हो नहीं सकता, इससे यह बात सिद्ध हुई कि उपदेशादि द्वारा साक्षात उपकार अरहंतसे होता है इससे सबसे पहिले मंत्रमें उन्हींका नामोच्चारण हुआ है बादमें सिद्धोंका।

अरहंत परमात्मा वीतराग-सर्वज्ञ और हितोपदेशी आप्त हैं। शास्त्रोंमें आप्त सच्चे-देवका स्वरूप ऐसा ही वर्णन किया गया है, जैसे रत्नकरण्डश्रावकाचारमें भगवान समंतभद्र स्वामीने कहा है कि—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥

॥ श्लोक नं० ५ ॥

अर्थ—नियमसे दोषोंसे रहितही आप्त (सच्चादेव) हो सकता है। वह आप्त सर्वज्ञ वीतरागी और परमहितोपदेशी होना चाहिये, विना इन तीन विशेषणोंके सच्चादेव हो नहीं सकता। जिसके भूख प्यास बीमारी बुढापादि दोष नाशको प्राप्तहो जाते हैं वही निर्दोष माना जाता है वही त्रिकालवर्ती संपूर्ण गुण पर्यायों सहित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालकी अनंत परिणतिको हाथकी अंगुलीकी पोरोंकी तरह साक्षात प्रत्यक्ष

जानने वाला सर्वज्ञ कहलाता है। परमहितोपदेशकपनेसे जो द्वादशांग रूप आगम उसका मूल कर्ता होनेसे आगमका स्वामी कहा जाता है, इस प्रकार कहे हुए इन गुणोंसे विशिष्ट जो होता है, वही निश्चयसे आप्त हो सकता है। इसीको देव, अर्हंत, सर्वज्ञ, परमेष्ठी, परमज्योति, विरागी, विमल, कृती, सार्व, शास्ता आदि बहुतसे नामोंसे कह सकते हैं। जिसमें ये तीन गुण नहीं होते वह कदापि आप्त या सच्चा देव नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि जो खुद दूषित होगा वह दूसरोंको निराकुल, सुखित, निर्दोष कैसे बना सकता है। जो भूख प्यास आदिकी बाधाओंसे दुखित होगा वह दूसरोंको सुखित कैसे कर सकता है? और ऐसे व्यक्तिके ईश्वरपना कैसे हो सकता है? दोषके सद्भावमें यथार्थ वक्तापनाभी नहीं आ सकता है। आत्मामें राग द्वेषका होना भारी दोष है। रागी द्वेषी तो अपना और दूसरेका राग द्वेष पुष्ट करनेके ही वचन कहेगा फिर यथार्थ वक्तापना कैसे हो सकता है? यथार्थ वक्तापना तो निर्दोष वीतरागीके ही हो सकता है इसलिये आप्त निर्दोष होना चाहिये।

यदि आप्त सर्वज्ञ न हो तो अनंत संसारियोंकी तरह इन्द्रियज्ञानीही होगा, जो इन्द्रियज्ञानीही होगा वह पहिले होगये राम रावणादि, कृष्णबलभद्रादि, ऋषभ वीर आदि

व आगे होने वाले तीर्थंकरादि तथा सूक्ष्म परमाणु आदि दूरवर्ती मेरु आदिको कैसे जान सकता है? क्योंकि इन्द्रियज्ञान तो स्थूल, विद्यमान अपने सन्मुख ही को स्पष्ट नहीं जानता है। संसारमें जीव पुद्गलादि पदार्थ तो अनंत हैं अर एककाल अपनी २ भिन्न २ परणतिसे परिणमते हैं, एक समयवर्ती अनंत पदार्थोंकी भिन्न २ अनंतही पर्यायें हैं, और इन्द्रियजनित ज्ञान क्रमवर्ती स्थूल पुद्गलकी अनेक समयमे होनेवाली जो एक स्थूल पर्याय उसकोही जानने वाला है। अनेक पदार्थोंकी अनेक पर्यायें हैं, जो एक समयवर्ती पर्यायके जाननेको ही समर्थ नहीं है तो अनंत काल तो बीत चुका और आगे अनंत काल बीतेगा उनकी अनंतानंत पर्यायोंको इन्द्रियजनित ज्ञान कैसे जान सकता है? इसलिये संपूर्ण त्रिकालवर्ती द्रव्योंकी परणितिको एक साथ जाननेको समर्थ सर्वज्ञही हो सकता है, इसलिये सर्वज्ञको ही आप्तपना हो सकता है। और जो दूसरोंकी भलाईका सच्चा उपदेश दे सकता है, वही आप्त हो सकता है। ये तीन गुण जिसमें पाये जाँय वही सच्चा देव हो सकता है।

शंका—आपने सच्चे देवका निर्दोष होना कहा है तो समुझाइये कि वे दोष कौन २ से हैं जो सच्चे देवमे नहीं होने चाहिये?

समाधान-सच्चे देवमें नीचे लिखे दोष नहीं होने चाहिये—

क्षुत्पिपासाजरातंकजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तःस प्रकीर्त्यते ॥६॥

अर्थः-क्षुत्-भूख, पिपासा-प्यास, जरा-बुढापा, आतंक-शरीर संबंधी व्याधि, जन्म- कर्मके वशसे चारोंगतियोंमें उत्पत्ति, मृत्यु, भय-इहलोक, परलोक, मरण, वेदना, अनुप्ति, अकस्मात् इन सात प्रकारके भय, स्मय-गर्व या मद, राग, द्वेष मोह, चशब्दसे- चिंता, रति, निद्रा, विस्मय- आश्चर्य, विषाद, स्वेद और खेद-व्याकुलता इस प्रकारके १८ दोष बतलाये गये हैं। इनमेंसे एकभी दोष जिसमें पाया जाय वह देव कभी सच्चा देव नहीं हो सकता है। सच्चा देव ही सूक्ष्म स्थूल रूपी अरूपी आदि सारे पदार्थोंका ज्ञाता दृष्टा हो सकता है, जो ज्ञाता दृष्टा है वही परमात्मा अरहंत है, जगत्तारक है, जिसके वचनोंको सारे संसारके वादी प्रतिवादी खंडन करनेको सर्वथा असमर्थ हैं। यही आत्मा बड़े २ ज्ञानियोंके आराधने योग्य है दूसरा नहीं। जो भी इनके घातिया कर्मोंका नाश होगया है तो भी अभी अघातिया कर्मोंकी सत्ता रहती है। इनके पुण्यके प्रभावसे इन्द्रके हुक्मसे कुबेर असंख्याते अमूल्य रत्नोंसे सुन्दर समोसरणकी रचना करता है

जिसका थोड़में यहां वर्णन किया जाता है:—

मानस्थंभाः सरांसि प्रविमलजलसत्खातिका पुष्पवाटी ।
प्राकारो नाट्यशाला द्वितियभुववनं वेदिकान्तर्ध्वजाद्याः ।
शालकल्पद्रुमाणामुपरि वृत्तिवनं स्तूपहर्म्यावली च ।
प्राकारःस्फाटिकोऽन्तः सुरमुनिसभापीठकाग्रस्वयंभूः ॥

अर्थः—समोसरण रूपी विभूतिकी जो रचना देवोंके द्वारा इन्द्रने करवाई थी उसकी महिमा कहनेको सुरगुरु बृहस्पति भी असमर्थ हैं तो दूसरा कौन कह सक्ता है ? फिर भी कुछ संक्षेपमें कहते हैं- दरवाजेके सामने जिसके दर्शन मात्रसे बड़े २ मानियोंका मान गल जाता है ऐसा मनस्थंभ होता है, भीतर बड़े २ तालाव होते, तथा निर्मल जलसे भरी हुई वापिकाएं (बावड़ीं) जिसमें भव्य पुरुष अपने तीन भव (भूत-भविष्य-वर्तमान) को यथार्थ देखते हैं, जैसे निर्मल दर्पणमें अपने मुँहको देखते हैं। तथा उसमें क्रीडा करनेके लिये सुन्दर पुष्पवाटिकाएं होती हैं तथा देव देवांगनाओंके नृत्य करनेके लिये अनेक नाट्यशालाएं होती हैं। दूसरे परकोटामें कई प्रकारके वन भवन व चंपकवन, आम्रवन व हजारों प्रकारकी पताकाएं होती हैं। इसके बाद कल्पवृक्षोंका वन होता है जिसमें ज्योतिरांग जातिके कल्पवृक्षोंकी ज्योतिसे करोड़ों सूर्योंकी ज्योति (प्रभा) दब जाती है। जहां पर छहों ऋतुओंके कार्य

एक साथ दिखनेसे ऋतु संबंधी कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता। वहां पर मकानोंकी ऐसी सुन्दर पंक्तिबद्ध रचना होती है जिनमें आते जाते देव देवांगनाएं नृत्य गानादि रूपभक्ति द्वारा चित्तको हर्षित करते रहते हैं।

उसके आगे स्फटिक मणियोंका कोट होता है जिसमें १२ सभाके विभाग रूप कोठे होते हैं जिनमें देव, देवांगनाएं, मनुष्योंमें- श्रावक श्राविकाएं मुनि व अर्जिकाएं तथा पशुओंमें- सिंहादिक पशू अपने २ कोठेमें बैठकर भगवानकी दिव्यध्वनिको सुनते हैं। मुनियोंमें सब तरहके ज्ञानधारी व ऋद्धिधारी मुनि होते हैं। दिव्य-ध्वनि कैसी होती है ?

गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषैरपेतं हितम्।
कंठोष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतम्॥
स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकम्।
दूरासन्नसमं समं निरुपमं जैनं वचः पातु नः॥

॥ २९ ॥ समोसरण ॥

अर्थः- जैसे मेघकी ध्वनि गर्जन करतीहुई वर्षती है ऐसी तो गंभीर, और सुस्वररूप मधुर, जिसतरह जीवोंको सुननेमें अमृततुल्य अत्यंत प्रिय (मधुर) मालूम हो ऐसी, तथा संसारमें पाप रूप अंधकारको नष्ट करनेवाली

सब जीवोंका सब प्रकार हित करनेवाली, जिसमें संपूर्ण भाषाएं गर्भित रहती हैं ऐसी सर्वभाषात्मक शरीरके अवयव- कंठ, ओष्ठ, जीव्हादिकी हलन चलन रूप क्रिया रहित, अक्षर रहित, जैसे होठोंको रोकना खोलना कर हवा के रोकने आदिसे नहीं उत्पन्न हुई, परंतु फिरभी उत्तम जीवके कल्याणका प्रतिपादन करनेवाली, मिथ्यात्वरूप अंधकारसे रक्षा करनेवाली, दूरभव्य हो या निकटभव्य हो सबको स्व स्वरूपकी प्राप्ति करानेवाली, कहांतक कहा जावे अभव्य भी यदि इस दिव्यध्वनिका श्रद्धान कर लेवे तो मुनि होकर अंत समयमें मरणकर नव ग्रैवेयिक तकके सुख ३१ सागर तक भोगता है ऐसा महात्म्य इस जिनवाणीका है।

यत्सर्वात्महितं न वर्णरहितं न स्पंदितौष्ठद्वयम् ।
नो वांछाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम् ॥
शांतामर्षविषैःसमं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभि ।
स्तन्नः सर्वविदः प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥

॥ ३० ॥ समोसरण स्तोत्रम् ॥

अर्थः- इस श्लोकका सार ऊपरकी भाषामें आगया इससे पुनः अर्थ नहीं किया जाता है।

शंका- इस प्रकारकी दिव्यध्वनि कौन २ से समय खिरती है ?

उत्तर- दिव्यध्वनिका समय इस प्रकार है-

पुव्वह्ने मज्झह्ने अवरह्ने मज्झिमाय रत्तीए ।
छच्छग्घडियाणिग्गादि वज्झुण्णी कहइ सुत्तत्थे ॥१॥

अर्थः- जिनेन्द्र भगवान अर्हंत देवकी दिव्यध्वनि रात और दिनमें चार समय- तीन घड़ी रात्रि रहे तबसे तीन घड़ी दिन चढे तब तक, दिनके मध्यान्ह समयके तीन घड़ी बाकी रहे तबसे तीन घड़ी पीछे तक, तीन घड़ी दिन रहे तबसे तीन घड़ी रात्रि बीते तब तक फिर रात्रिके मध्यान्हमें जब तीन घड़ी बाकी रहे तबसे तीन घड़ी ऊपर बीते तब तक, ऐसे चार समय छह २ घड़ी तक बराबर भव्य जीवोंके हितार्थ बिना स्वार्थके खिरती है। एक घड़ीका प्रमाण चौबीस मिनटका होता है ऐसा जानो।

रागांतकबुभुक्षाः पीडा च न विद्यते क्वापि ।
संख्यातयोजने अपि प्रवेशनिर्गमयुजोत्र भव्याः स्युः ।
अंतर्मुहूर्तमात्रा जिनमाहात्म्येन वृद्धाद्यः ॥
मिथ्यादृष्टिरभव्योऽसंज्ञी जीवोत्र विद्यते नैव ।
यश्चानध्यवसायो यः संदिग्धो विपर्ययस्तश्च ।

तत्र न मृत्युर्जन्म च विद्वेषो न च मन्मथोन्मादः ।
॥ समोसरणस्तोत्रे ॥

अर्थः-जिनेन्द्र भगवानके माहात्म्यसे बालक आदि जीव भी प्रवेश करने अथवा निकलनेमें, तथा अंतरमुहूर्तमें वे भव्य जीव असंख्याते योजन तक जाने आनेमें समर्थ होजाते हैं। मिथ्यादृष्टि, अभव्य, असंज्ञी तथा अनध्यवसाई, संदेहज्ञानवाले तथा विपर्यय ज्ञानवाले जीव वहां नहीं होवे। समोसरणमें न जन्म होता, न मृत्यु होती, न विद्वेष होता है, और न कामजन्य उन्माद होता है। न जातिमद रूपमद, कुलमद, तपमद, ज्ञानमद, बलमद, विभवमद, विद्यामद होते हैं। वहां असाता वेदनीयके उदयजन्य कोई पीड़ा नहीं होती, न भूखकी पीड़ा, न और प्रकारकी ही सांसारिक पीड़ा होती है।

सिंहासणाणि मज्झे गंधउडीणं सपादपीढानि ।
वर फलिह णिमिदाणि घंटाजालादिरम्माणि ॥८९३॥
॥ त्रिलोकप्रज्ञप्ति अध्याय ४ ॥

अर्थः-उसमें कटनीके ऊपर गंधकुटी, उसके मध्य पाद-पीठ (सिंहासन) सहित उत्तम स्फटिक मणियोंसे निर्मित और घंटाओंके समूहसे रमणीय सिंहासन होते हैं, रत्नोंसे रचित उन सिंहासनोंकी ऊंचाई तीर्थकरोंकी ऊंचाईके ही योग्य हुआ करती है, इस सिंहासनका आकार सहस्रदल

वाले कमलके आकार होता है। उसके ऊपर लोक और अलोकको प्रकाशित करनेके लिये सूर्यके समान भगवान अर्हंतदेव आकाशमार्गसे चार अंगुलके अंतरालसे विराजते हैं। यह तीर्थंकर भगवान चौंतीस अतिशयोंसहित तथा आठ प्रकारके प्रातिहार्योंसे सुशोभित तथा ६४ चमरोंसे युक्त होते हैं यक्ष जातिके देव भगवानके ऊपर चमर ढुराते हैं, अशोकवृक्ष तथा शरीरकी प्रभाका भामण्डल, व १२॥ करोड जातिके आकाशमें बाजे, मंद सुगंधवाली पवन, सौ सौ योजन तक सुभिक्ष, चारों कालोंमें दिव्यध्वनिका होना तथा कोई पुण्यवान पुरुष विशेष समयपर आजावे और प्रश्न करै तो पुण्य प्रकृतिके अनुसार जिनेन्द्रकी फिर भी दिव्यध्वनि का खिरना होता है। जिसमें ६ द्रव्य, सप्त तत्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकायका नाना प्रकारके हेतुओं द्वारा निरूपण होता है। जिनेन्द्रदेव के शरीरके प्रभामंडलको देखते ही भव्यजीवोंको अपने सात भवका स्मरण होजाता है। "भूतकालीन तीन और आगे होनेवाले भाविकालीन ३ तथा १ वर्त्तमानका ऐसे सात भव जानना चाहिये"। जहांपर "जयवंतो, नांदो, वरधो, जयवंत रहो" ऐसे शब्दोंसे गुंजायमान ध्वनि होती रहती है। समोसरणमें भगवानका ऐसा अतिशय है कि उनका मुखारविन्द चारों तरफ प्रतिभासित होता है।

अतिशय होनेसे जो जिस तरफ खडा होता है वह कहता है कि भगवानका मुख मेरी तरफ है दूसरा कहता है मेरी तरफ है।

इस प्रकारकी गंधकुटीके नीचेकी कटनीके नीचे द्वादश प्रकारकी सभाएं होती हैं, जिनमें देव, मनुष्य, पशु बैठते हैं, और अपने आत्मकल्याणके मार्गको जो भगवान की दिव्यध्वनिमें सुननेको मिलता है सुनते हैं। समोसरणका एक प्रभाव ऐसा भी है कि वहां जितने जीव होते हैं एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते अर्थात् उनमें जाति वैर नहीं रहता। सिंह और गाय, नाहर और बकरी, न्यौला और सर्प, चूहा और बिल्ली पास २ बैठते हैं लेकिन मित्रभावसे, एक दूसरेको कभीभी सताते नहीं है, सो ही-त्रिलोकसार-लोक प्रज्ञप्तिमें कहा है—

कोट्ठाणं खेत्तादो जीवखेत्तं फलं असंख्यगुणं।
तोदूण अपुट्ठत्ति हु जिणमाहप्पेण ते सव्वे ॥९३०॥

अर्थः- इसका अर्थ वही है जो ऊपर कहा गया है कि समोसरणमें जातिविरोधी जीव भी भगवानके पुण्यके अतिशयसे परस्परमें मिलकर रहते हैं कोई किसीको सताता नहीं है। दिशाएं और आकाश अत्यंत निर्मल दिखते हैं। वहां पर—

अंधाःपश्यंति रूपाणि शृण्वंति बधिराःश्रुतिम् ।
मूकाःस्पष्टं विभाषंते चंक्रम्यंते च पंगवः ॥समो. स्तो.॥

अर्थः- जन्मजात अंधे जीव तो देखने लगते हैं, जिनको पहिले कभी सुन नहीं पड़ता था ऐसे बहरे सुनने लगते हैं । जिनकी जुबान कभी नहीं खुली ऐसे मूक प्राणी स्पष्ट बोलने लगते हैं और पैरसे लंगड़े जीव जो चलने फिरनेमें हमेशासे असमर्थ रहते हैं वे खूब चलने फिरने लगते हैं। ऐसा माहात्म्य तीर्थंकर-देवका समोसरणमें होता है ।

शंका-ऐसा समोसरण तीर्थंकरका ही होता है या सामान्यकेवलीका भी होता है ?

उत्तर-समोसरण तो केवल तीर्थंकर केवलीका ही होता है। सामान्य केवलीकें तो केवल गंधकुटीही होती हैं। ये सब पुण्यकी विशेषतासे होता है।

शंका-केवली कितने प्रकारके होते हैं ?—

उत्तर-केवली ६ तरहके होते हैं -तीर्थंकरकेवली, सामान्यकेवली, मूककेवली, उपसर्गकेवली, अंतःकृतकेवली, समुद्घातकेवली ।

शंका-तो क्या सब केवली एकसे होते हैं ?

उत्तर—विदेहक्षेत्रकी अपेक्षा भरतक्षेत्रमें होने वाले केवलियोंमें जो फरक होता है उसको बतलाते हैं कि—

(१) भरत और ऐरावत क्षेत्रमें जो तीर्थंकर केवली होते हैं उनके तो पांच कल्यानक होते हैं, वहां तीन दो कल्यानक वाले तीर्थंकर नहीं ही होते हैं। पर विदेहक्षेत्रमें कोई पांच कल्याणकके धारी होते हैं, कोई तीनके ही होते हैं, तो कोई दोके ही होते हैं। जिनके-गर्भ-जन्म तप-ज्ञान और निर्वाण ऐसे पांच कल्याणक होते हैं उनमें इन्द्रादिदेव आकर उत्सव करते हैं।

(२) तीन कल्याणकके धारी वे होते हैं जो गृहस्थावस्थामें सोलह कारण भावनाको भाकर दीक्षा लेकर मुनि हुए हों, उनके तप, ज्ञान और निर्वाण ऐसे ३ कल्याणक होते हैं अर्थात् इनकी तीन क्रियाओंमें इंद्रादिकदेव आकर उत्सव मनाते हैं।

(३) दीक्षा लेलेने बाद जो आठवें गुणस्थानके छट्ठे भागमें प्राप्त होकर सोलह कारण भावना भाकर तीर्थंकर गोत्र बांधते हैं वे दो कल्याणकके धारी तीर्थंकर हैं अर्थात् उनके केवलज्ञान और निर्वाण ऐसे दो कल्याणक ही होते हैं क्योंकि गर्भ-जन्म और तप लेते समय तीर्थंकर प्रकृतिका बंध तो था ही नहीं, दीक्षा लेने बाद तीर्थंकर प्रकृतिका

बंध किया, उसके बाद कल्याणक होते हैं, बिना तीर्थंकर प्रकृतिके बांधे कल्यानक होते नहीं। ऐसे कल्याणक विदेह क्षेत्रमें ही होते हैं।

(२) जिनके आयुकर्ममें छह माह बाकी रहनेपर केवलज्ञान उत्पन्न हुवा होवे वे केवली अलंकृतकेवली हैं।

(३) नियमसे केवलज्ञानके लिये दंड, कपाटादि क्रियां करते हैं वे समुद्धातकेवली हैं।

(४) सामान्यकेवली जो हुवा करते हैं वे तीर्थंकर नहीं होते, पर उनके ज्ञान और निर्वाण ऐसे दो कल्यानक होते हैं।

(५) उपसर्गकेवली—वे केवली कहलाते हैं जिन्होंने तप अवस्थामें नाना उपसर्गोंको सहकर केवलज्ञान उत्पन्न किया हो जैसे- देशभूषण कुलभूषण या श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर भगवान।

(६) मूककेवली—मूककेवली वे कहलाते हैं जिनको केवलज्ञान तो होगया हो परंतु जिनकी दिव्यध्वनि न होती हो। क्यों नहीं होती ? इसका समाधान इस प्रकार है कि जिन्होंने गृहस्थावस्थामें या दीक्षा लेने बाद मुनिपनरूप छमस्थावस्थामें अधिक वचनोंका उपयोग किया हो अब जिनकी वचन वर्गणा क्षीण होगई हों वे केवली

मूक होते हैं। इसलिये छद्मस्थावस्थामें मुनियोंको कम बोलना चाहिये, जिससे केवलज्ञान होनेपर अपनी दिव्यध्वनिरूपी वचन वर्गणाओंसे लोकमें भव्यजीवोंको कल्याणकारी उपदेश दे सकें क्योंकि उसीसे संसारमें मोक्ष मार्गकी प्रवृत्ति होती है।

शंका- दिव्यध्वनिमें अक्षर होते या नहीं ?

उत्तर- दिव्यध्वनि जब केवली भगवानके सर्वांगसे खिरती है तब तो जैसे बादल गंभीर गर्जना करता है उसी प्रकारकी दिव्यध्वनि होती है, परंतु जब वही दिव्य-ध्वनि भव्य जीवोंके कर्णगोचर होती है तब उन केवली भगवानके पुण्यका ऐसा अतिशय होता है कि चाहे देव हो या मनुष्य या पशु हो सबका ऐसा क्षयोपशम होजाता है जिससे सब जीव अपनी २ भाषामें समझ जाते हैं सबकी शंकाका समाधान होजाता है, सभी अपने २ कल्याण मार्गको प्राप्त करते हैं। अर्थात् भगवानकी दिव्य-ध्वनि निरक्षरी होती है।

शंका- क्या समोसरणमें सब जीव एक साथ बैठते हैं ?

उत्तर- समोसरण एक प्रकारके सभामंडपका नाम है उसमें बारह विभाग होते हैं- उन बारह विभागोंमें

(१) मुनि (२) कल्पवासिनी (३) अर्जिका (४) ज्योतिषी (५) व्यंतरिणी (६) भवनवासिनी (७) भवनवासी देव (८) व्यंतर देव (९) विद्याधर (१०) कल्पवासी देव (११) महामंडलेश्वरादि मनुष्य (१२) वें विभागमें पशु बैठते हैं। जैसा कि नीचे लिखे छंदसे ज्ञात होता है—

द्वादश सभा समोसरणमाही गणधरमुनि आर्ये सु विचार
कल्पवासि ज्योतिषी अरु व्यंतर भवनवासि देव्यांकी चार
चार निकाय देवोंकी चारों नर तिर्यंच मिलाकर सार।
तीर्थेश्वरकी महिमा वर्णी गणधर देव वचन अनुसार ॥

इस सभामें जाति विरोधी जीव रहते हैं, परंतु भगवान केवलीके पुण्यप्रतापसे उनमें परस्पर विरोध नहीं रहता है। इसी बातको एक छंदमें बतलाया है—

अडिल्ल—जाति विरोधी जीव मिलें हित लायकें।
करें निजारथ काल लब्धि बल पायकें ॥

इसका यही अर्थ है कि सर्प मोर, बकरी का बच्चा और सिंह का बच्चा, मार्जार हंस ये जीव जाति विरोधी हैं, फिर भी आपसमें एक दूसरेके गले मिलते हैं। कोई किसीका विरोध नहीं करता है। सो ही कहा है—

"मोर मृगी हरि (सिंह) जाति विरोध नसाया है।"

यह माहात्म्य समोसरणमें उन आत्मध्यानी महात्मा-

ओंका ही है।

शंका—समोसरणमें केवली भगवान आहार किस तरह करते हैं।

उत्तर—केवली भगवानके नोकर्माहार होता है कवलाहार नहीं।

शंका—आहार कितने प्रकारका होता है और वे किस किस के होते हैं?

उत्तर—केवली भगवानका ऐसा माहात्म्य है कि उनके मोहनीय कर्मका सर्वथा अभाव होचुका है इससे भूख लगानेवाला वेदनीय कर्म कुछ भी कार्य करनेमें असमर्थ है। दूसरे असाता वेदनीयकी उदीरणा सप्तम गुणस्थानमें ही होजाती है, आगेके गुणस्थानोंमें उसकी उदीरणा नहीं होती है, इसलिये केवलीके आहार (जैसा कि हम लोग ग्रास २ आहार लेते ऐसा आहार) नहीं है। हां जो तुमने आहार होनेकी शंका की उस विषयमें इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि केवलीके पुण्यकर्मके उदयसे ऐसे नोकर्म वर्गणाओंका आकर्षण होता है जिससे शरीरमें बलाधान रहता है, और इस देहमें रहते हुए केवली कोटिपूर्व वर्ष प्रमाण अवस्थित रहकर देश देशमें विहार करते हुए भव्यजीवोंको हितमार्गका प्रदर्शन करते हैं। सिद्धान्तमें आहारके ६ भेद

बतलाये हैं, प्रवचनसारकी गाथा नं. २० में जयसेनाचार्य कृत टीकामें क्षपक गाथा आई है उसमें बतलाया है कि—

णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो ।
ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो ॥

अर्थः—आहारके छह भेद होते हैं (१) नोकर्माहार (२) कर्माहार (३) कवलाहार (४) लेप्याहार (५) ओजाहार (६) मानसिकाहार ।

(१) नोकर्माहार—केवली भगवान तेरहवें गुणस्थानवर्तीके होता है । इस गुणस्थानमें सात प्रकारके आस्रव होते हैं ।

(२) कर्माहार—नारकी जीवोंके होता है, वहां कर्मके उदयसे हमेशा काटमार बनी रहती है, एक निमेषमात्र भी सुख नहीं मिलता है ।

(३) कवलाहार—मनुष्य और पशुओंके आहारको कवलाहार कहते हैं, क्योंकि इनका आहार ग्रास-ग्रास होता है ।

(४) लेप्याहार—एकेन्द्रिय वृक्षके होता है, क्योंकि वृक्ष जड़से आहार पानी खींचते हैं ।

(५) ओजाहार—अंडोंमें रहनेवाले पक्षियोंके होता है। अंडेवाले पक्षियोंकी माता अंडेमें अपनी गर्मी पहुंचाती है,

उसीसे अंडे और अंडेमें रहनेवाले जीवके देहकी वृद्धि होती है।

(६) मानसिक आहार-देवोंके होता है, उनकी जितने सागरकी आयु होती है उतने हजार वर्ष बाद उनको आहार करने की इच्छा होती है इच्छा होते ही कंठसे अमृत झडता है उसीसे उनकी इच्छाकी पूर्ति होती है।

यहां कोई ऐसी शंका करे कि ऊपर आपने बतलाया है कि केवली कवलाहार नहीं करते, किंतु नोकर्माहार करते हैं, क्योंकि उनके क्षुधा तृषाका अभाव है, तो आहारादिमें प्रवृत्तिके अभाव होनेसे केवलीके देहकी स्थिति नहीं रहनी चाहिये ? परंतु देहकी स्थिति तो आप मानते ही हैं, इसलिये केवलीके आहार होना सिद्ध होता है। जैसे हमारे आहार बिना देहकी स्थिति नहीं रहती वैसेही केवलीके भी आहार बिना देह नहीं रह सकता है ? यदि देहकी अवस्थिति है तो अवश्य आहार होना ही चाहिये ?

समाधान-तुम केवलीके आहार सिद्ध करना चाहते हो कि कवलाहार ? जो आहारमात्र सिद्ध करना चाहते होतो तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोग केवलीपर्यंत सभी जीव आहारक ही हैं ऐसा परमागमका कथन है, क्योंकि समस्त ही एकेन्द्रियका आदि से सयोगीपर्यंत जीव समय समयमें सिद्ध राशिके अनंतवें भाग और अभव्य राशिसे अनंतगुणे कर्मके

परिमाणुओंको ग्रहण करते हैं। तुम्हारा ऐसा कहना हो कि हम तो केवलीकें ग्रास २ मुखमें लेकर अन्न जलादिक अपने भोजनकी तरह आहार करना कहते हैं? क्योंकि कवलाहारके विना केवलीके देहकी स्थिति रह नहीं सकती। जैसे अपनी देह कवलाहार विना नहीं रहती है? तो इसका समाधान ऐसा है कि देवोंकी देह कवलाहार के विना सागरोंपर्यंत कैसे रहती है? क्योंकि देवोंके ग्रासाहार होता नहीं है। देहकी स्थिति बराबर रहती ही है। इसलिये तुम्हारा हेतु दोषीक है। यदि तुम ऐसा कहो कि देवोंकी देहकी स्थिति मानसीक आहारसे रहती है, मनमें आहारकी इच्छा होतेही कंठसे अमृत झड़ता है, और उससे तृप्ति होजाती है ऐसा मानसीक आहार भवनवासी आदि चारों निकायके देवोंकें कवलाहार विना मानसीक आहार होता है और उससे देहकी स्थिति रहती है, उसी प्रकार केवली भगवानके भी कर्म नोकर्म वर्गणाके आहारसे देहकी स्थिति रहती है। यदि तुम ऐसा कहो कि केवली की देह तो मनुष्यदेह है, इसलिये अपनी देहके समान केवलीकी देहकी स्थिति भी कवलाहारसे ही मानना चाहिये? तो अपनी देहकी तरह केवलीकी देहमें पसीना का होना, खेद होना, उपसर्ग होना भी मानना चाहिये। अगर ऐसा कहो कि केवलीके अतिशयके प्रभावसे पसेवादि

नहीं होते हैं तो भोजनका अभावरूप अतिशय क्यों नहीं मानते हो ? और अपने देहमें देखते हुएको केवलीके भी मानते हो तो जैसे अपने इन्द्रियजनित ज्ञान है उसी प्रकार केवलीके भी ज्ञान इन्द्रियजन्य ही मानो ? देखना, सुनना स्वाद लेना, सोचना, इन्द्रियोंसे हुआ तो केवल ज्ञानरूप अति इन्द्रिय ज्ञानको जलांजली दे दी ? सर्वज्ञपनाका अभाव हुआ। अगर ऐसा कहो कि ज्ञान द्वारा समानता होने पर भी केवलीके अतीन्द्रिय ज्ञान ही है, तो हम ऐसा कहते हैं कि देहमें स्थिति समान होने पर भी कवलाहारका अभाव ही है। यदि ऐसा कहा जाय कि केवलीके वेदनीय कर्मका सद्भाव है इसलिए उनके भोजनकी इच्छा उत्पन्न होती है इसीसे उनकी प्रवृत्ति कवलाहारमें होती है तो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि मोहनीय कर्मकी सहायता सहित ही वेदनीय कर्ममें भोजनकी इच्छा उत्पन्न करनेकी शक्ति होती है। इच्छा मोहनीयकर्मका कार्य है। जब भगवान केवलीके मोहनीय कर्म ही नष्ट होगया फिर इच्छा कैसे उत्पन्न हो सकती है ? अगर मोहनीय कर्मके विना भी इच्छा उत्पन्न होजाती है, तब तो मनोहर स्त्रीको भोगनेकी इच्छा भी पैदा होजानी चाहिये ? उसी तरह सुन्दर शय्यापर शयन, वस्त्र भूषणादि भोगोपभोगकी इच्छाका प्रसंग आवेगा, ऐसी दशामें वीतरागताका ही अभाव हुआ, नियम

है कि जहां इच्छा वहां वीतरागता रह नहीं सकती।

प्रश्न—तुम्हारे केवली यदि आहार करते हैं तो एक दिनमें एकवार करते हैं या अनेक बार? अथवा एक दिन, दो दिन, चार दिन, पक्ष, महिनेके अंतरालसे करते हैं? जितना अंतर कहोगे उतने प्रमाणही ठहरेगी? यदि शक्ति घटनेपर भोजन करते हैं, तो भोजनके आश्रयसे ही बल रहा फिर भगवानको अनंत वीर्य कहना झूट ठहरेगा? इत्यादि अनेक तर्क वितर्कों द्वारा उचित विचार करनेपर यही सिद्ध होता है कि भगवान केवलीके कवलाहार नहीं होता है। कवलाहार माननेमें अनेक आपत्तियां खडी होती हैं जिनसे जैन सिद्धांत ही उलट जाता है।

आगे ऐसे पुरुषोंके पुण्यका वर्णन करते हैं कि—

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदयिगा।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइगत्ति मदा ॥४५॥

प्रवचनासार ॥

अर्थ—अर्हंत परमात्मा महान उत्कृष्ट पुण्य पुरुष हैं इनके पुण्यकर्मका उदय वंधका कारण नहीं होता। सर्वज्ञ, वीतराग अर्हंतदेवका जो पद है वह अतिशय पुण्यको प्रकट करनेवाली तीर्थंकर प्रकृतिके वंधका फल है। अर्थात् अर्हंत पद तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे होता है। उनके काय तथा

वचनकी क्रिया निश्चयसे कर्मके उदयसे होती है। परन्तु यह क्रिया मोह, राग, द्वेषसे रहित होती है। इसीलिये बंधकी कारण नहीं है क्योंकि यह प्रवृत्ति मोहकर्मके क्षयसे उत्पन्न होती है।

शंका—इस प्रकारके केवली भगवानको सब पदार्थों को जाननेमें बडा खेद होता होगा सो कहो होता है या नहीं ?

उत्तर—केवली भगवानको किसी प्रकारका खेद नहीं होता इसी बातको बतलाते हैं।

जं केवलमिदि णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।
खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा ॥६०॥

प्रवचनसार ॥

अर्थ—जो केवल ऐसा नामवाला ज्ञान है वह अनाकुल सुख रूप है और वही सब प्राणियोंका उपादेय है। केवलज्ञानके होजाने बाद भावोंमें आकुलता नहीं होती है क्योंकि ज्ञानावरणादिक घातिया कर्म ही आकुलता पैदा करते हैं। उनका तो नाश होगया। बिना घातिया कर्मों के नाश किये केवल ज्ञान होता नहीं इसलिये केवलज्ञानके द्वारा संपूर्ण पदार्थोंके जाननेमें भगवान केवलीको कोई खेद होता नहीं ऐसा सिद्धान्तमें बडे २ आचार्योंका कथन है।

शंका–इस गुणस्थानमें जीवके कितने भाव होते हैं?

उत्तर–इस गुणस्थानमें जीवके १४ भाव होते हैं–
९ क्षायिक, ३ औदयिक, २ पारिणामिकके।

९- क्षायिकके क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकदर्शन, क्षायिकज्ञान, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य।

३- औदयिकके- मनुष्यगति, शुक्लेश्या और असिद्धत्व।

२- पारिणामिकके- जीवत्व, भव्यत्व।

प्रश्न- जीवोंके इस गुणस्थानमें आस्रव कितने और वे किस कारणसे होते हैं?

उत्तर- जीवोंके इस गुणस्थानमें ७ आस्रव होते हैं और वे योगसे होते हैं।

२- मनके सत्यमनयोग, अनुभयमनयोग।

२- वचनके- सत्यवचनयोग, अनुभयवचनयोग।

३- कायके- औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्माण।

इस गुणस्थानमें बंध योग्य प्रकृति १ सातावेदनीय ही है।

इस गुणस्थानमें किसी प्रकृतिकी व्युच्छित्ति बंधमें नहीं होती।

इस गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

इस गुणस्थानमें उदय प्रकृतियां ४२ हैं–

४- ऊंचगोत्र १ वेदनीय- साता असाता २ और मनुष्यायु १ ।

३८- नामकर्मकी प्रकृतियां–

५- मनुष्यगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ३- औदारिक, तैजस, कार्माण ।

८- औदारिकांगोपांग १ संस्थान ६ वज्रर्षभ-नाराचसंहनन १

७- स्पर्शादिक ४ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १

६- श्वासोच्छ्वास १ विहायोगति २ त्रस १ बादर १ स्थिर १ ।

६- अस्थिर १ सुभ १ असुभ १ सुभग १ सुस्वर १ दुस्वर १ ।

५- आदेय १ अपर्याप्ति १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ तीर्थंकरप्रकृति १.

शंका- इस गुणस्थानमें उदयमें व्युच्छिति प्रकृतियां कितनी हैं ?

उत्तर-३० हैं–

४- सातावेदनीय १ वज्रऋषभनाराचसंहनन १

निर्माण १ स्थिर।

१०- अस्थिर १ सुभ १ असुभ १ सुस्वर १ दुःस्वर १ विहायोगति २ शरीर ३- औदारिक, तैजस, कार्माण।

११- औदा. आंगो- १ संस्थान ६ स्पर्शादिक ४ ५- अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ श्वासोच्छ्वास १ प्रत्येकशरीर १।

शंका-इस गुणस्थानमें सत्वयोग्य प्रकृतियां कितनी हैं?

उत्तर- सत्वयोग प्रकृतियां ८५ हैं:-

मनुष्यगति १ देवगति १ पंचेन्द्रियजाति १ शरीर ५ आंगोपांग ३ बंधन ५ संघात ५ संहनन ६ स्पर्शादिक २० आनुपूर्वी २ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ विहायोगति २ श्वासोच्छ्वास १ त्रस १ वादर १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ अस्थिर १ सुभ १ असुभ १ सुभग १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुस्वर १ आदेय १ अनादेय १ यशःकीर्ति १ निर्माण १ अयशःकीर्ति १ तीर्थंकरत्व १

शंका- इस गुणस्थानमें सत्वमें व्युच्छिति कितनी प्रकृतियोंकी होती है?

उत्तर- इस गुणस्थानमें किसीभी प्रकृतिकी सत्त्वव्यु-च्छिति नहीं होती है।

इस प्रकार तेरहवें गुणस्थानका कथन समाप्त हुआ।

चौदहवें अयोग केवलिगुणस्थानस्वरूप कथन-

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि ॥६५॥गो.जीव.॥

अर्थः-जो अठारह हजार शीलका स्वामी हो चुका हो। और जिसके कर्मोंके आनेका द्वाररूप आस्रव सर्वथा बंद होगया हो, तथा सत्व और उदय अवस्थाको प्राप्त कर्मरूप रजकी सर्वोत्कृष्ट निर्जरा होनेसे जो उस कर्मसे सर्वथा मुक्त होनेके सन्मुख है, उस काययोगरहित केवलीको चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते हैं। शीलकी पूर्णता यहीं पर होती है इसलिये जो शीलका स्वामी होकर पूर्ण संवर और निर्जरा जो मोक्षका साक्षात् कारण हैं उनका पात्र होनेसे मुक्त अवस्थाके सन्मुख हैं ऐसे काययोगसे भी रहित केवलीको चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते हैं।

शंकाः-शीलके अठारह हजार भेद कौन २ से हैं?

उत्तरः-इसका खुलासा अर्थ नीचेके नकशेसे जानना चाहिये।

अठारह हजार शीलोंके भेदोंका दृश्य।

क्षमा १	मार्दव २	आर्जव ३	सौच ४	सत्य ५	संयम ६	तप ७	त्याग ८	आकिंचन्य ९	ब्रह्मचर्य १०
पृथ्वी ०	अप ०	तेज २०	वायु ३०	प्रत्येक ४०	साधारण ५०	द्वीन्द्रिय ६०	त्रीन्द्रिय ७०	चतुरेंद्रिय ८०	पंचेन्द्रिय ९०
स्पर्शन ०	रसना १००	घ्राण २००	चक्षु ३००	श्रोत्र ४००	०	०	०	०	०
आहार ०	भय ५००	मैथुन १०००	परीग्रह १५००	०	०	०	०	०	०
मन ०	वचन २०००	काय ४०००	०	०	०	०	०	०	०
मनोगुप्ति ०	बचनगुप्ति ६०००	कायगुप्ति १२०००	०	०	०	०	०	०	०
कुल मीजान	१०+९०	+४००+	१५००+	४०००+	१२०००=	१८०००			

दूसरे तरहसे अठारह हजार शीलके भेदोंका दृश्य।

मनोगुप्ति १	वचनगुप्ति २	कायगुप्ति ३	०	०	०	०	०	०	०
मनकृ. ०	वचन कृ. ३	काय कृ. ६	०	०	०	०	०	०	०
आहार ०	भय ६	मैथुन १८	परीग्रह २७	०	०	०	०	०	०
स्पर्शन ०	रसना ३६	घ्राण ७२	चक्षु १०८	श्रोत्र १४४	०	०	०	०	०
पृथ्वी ०	अप १८०	तेज ३६०	वायु ५४०	प्रत्येक ७२०	साधारण ९००	द्विन्द्रिय १०८०	त्रीन्द्रिय १२६०	चतुरिंद्रिय १४४०	पंचेन्द्रिय १६२०
क्षमा ०	मार्दव १८००	आर्जव ३६००	शौच ५४००	सत्य ७२००	संयम ९०००	तप १०८००	त्याग १२६००	आकिंचन्य १४४००	ब्रह्मचर्य १६२००
कुल मीजान	३ + ६ +	२७ + १४४	+ १६२०	+ १६२००	= १८०००				

आगेके नकशेमें ८४ लाख उत्तरगुणोंका वर्णन भी खुलासा लिखा जाता है।

मुनियों के ८४०००००० उत्तरगुण इस तरह होते हैं।

१	आलोचना ०	आकंपित ०	स्त्रीसेवन ०	पृथ्वी ०	अतिक्रम ०
२	प्रतिक्रमण १५१२०००	अनुमानित १५१२००	पुष्टरस १५१२०	जल ८४०	व्यतिक्रम ४२
३	उभय २२६८०००	दृष्ट २२६८००	गंधमाल २२६८०	अग्नि १६८०	अतिचार ६३
४	विवेक ३०२४०००	बादर ३०२४००	कोमल सेज ३०२४०	वायु २५२०	अनाचार ८४
५	व्युत्सर्ग ३७८००००	सूक्ष्म ३७८०००	कटकभूप ३७८००	प्रत्येक ३३६०	इन ८४ को

इन अव्रतादि २१ पदार्थ के फैलाव

१	अव्रत	हिंसा
२		झूठ
३		चोरी
४		अब्रह्म
५		परिग्रह
६	कषाय	क्रोध
७		मान
८		माया
९		लोभ
१०		भय
११		अरति

से साधुओं के उत्तर गुण होते हैं।

१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
नोकषाय		करण			इन्द्रिय				
रति	जुगुप्सा	मन	वचन	काय	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	तेन्द्रिय	चौइन्द्रिय	पंचेन्द्रिय

१० से गुणने से ८४० की संख्या होती है

६	तप ४५३६०००	प्रच्छन्न ४५३६००	गीतवादित्र ४५३६०	साधारण ४२००
७	छेद ५२९२०००	शब्दाकुल ५२९२००	धन संग्रह ५२९२०	द्वीन्द्रिय ५०४०
८	मूल ६०४८०००	बहु ज्ञन ६०४८००	कुशीलसेवन ६०४८०	तीन्द्रिय ५८८०
९	परिहार ६८०४०००	अव्यक्त्व ६८०४००	रात्रिगमन ६८०४०	चतुरिन्द्रिय ६७२०
१०	श्रद्धान ७५६००००	तत्सेवी ७५६०००	७५६००	पंचेन्द्रिय ७५६०

इस गुणस्थानका काल सब गुणस्थानोंकी अपेक्षा कम है। उसका खुलासा इस प्रकार है कि अ इ उ ऋ ऌ इन पांचों ह्रस्व अक्षरोंके बोलनेमें जितना काल लगता उतना समयही इस चौदहवें गुणस्थानका है। इसमें समय के उत्तम, मध्यम, जघन्य भेद नहीं हैं। इस प्रकारके गुणस्थानवर्ती जीव अयोगी होते हुए केवली होते हैं। उनके इस गुणस्थानमें भाव और आस्रव व कर्मोंकी प्रकृतियोंका परिस्पंद होता है वही दिखलाया जाता है।

इस गुणस्थानवर्ती जीवके १३ भाव होते हैं–क्षायिक के ९, औदायिकके २, पारिणामिकके २।

९ क्षायिकके भाव–१ क्षायिक सम्यक्त्व, २ क्षायिक दर्शन, ३ क्षायिक ज्ञान, ४ क्षायिकचारित्रमें यथाख्यात चारित्र, क्षायिक दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य।

२--औदायिकके २-मनुष्यगति १, असिद्धत्व १।

२–पारिणामिकके २--जीवत्व १, भव्यत्व १।

इस गुणस्थानमें योगोंकी क्रियाका अभाव होजाने से किसीभी प्रकृतिका आस्रव नहीं होता है।

इस गुणस्थानमें कोई प्रकृति बंधयोग्य नहीं है और न इस गुणस्थानमें किसी कर्मकी व्युच्छित्तिही होती है।

१२- उदययोग्य प्रकृतियां १२ हैं–

३- सातावेदनीय १ उच्चगोत्र १ मनुष्यायु १

९- नामकर्मकी- मनुष्यगति १ पंचेन्द्रियजाति १ सुभग १ त्रस १ वादर १ पर्याप्त १ आदेय १ यशःकीर्ति १ तीर्थंकर १

१२- उदयसे व्युच्छित्ति योग्य प्रकृतियां जो ऊपर बतलाई हैं उन सबकी व्युच्छित्ति होजाती है इससे कोई बाकी नहीं रहती।

८५- सत्वयोग्य प्रकृतियां ८५ होती हैं--

५- मनुष्यायु १ गोत्र २ ऊंच वा नीच, वेदनीय के २ साता, असाता

८०- नामकर्मकी- मनुष्यगति १ देवगति १ पंचेंद्रियजाति १ शरीर ५ आंगोपांग ३ बंधन ५ संघात ५ संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्शादि २० आनुपूर्वी २ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ विहायोगति २ श्वासोच्छ्वास १ त्रस १ वादर १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ आदेय १ अनादेय १ यशःकीर्ति १ अयशस्कीर्ति १ निर्माण १ तीर्थंकरत्व १

८५- सत्वमें व्युच्छित्ति इस तरह होती है- इस गुण-स्थानके उपान्त्य- (अंतके समयके पासवाले समय को उपान्त्य कहते हैं। इस उपान्त्य) समयमें ७२ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है-

२- नीचगोत्र १ असातावेदनीय १

७०- नामकर्मकी-

देवगति १ शरीर ५ आंगोपांग ३ बंधन ५ संघात ५ संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्शादि २० देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ १उपघात परघात १ विहायोगति २ उच्छ्वास १ अप-र्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ असुभ १ दुर्भग १ दुःस्वर १ अनादेय १ अयशःकीर्ति १ सुस्वर १ निर्माण १

१३- अंत समयमें १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती हैं-

सातावेदनीय १ उच्चगोत्र १ मनुष्यायु १ मनुष्यगति १ मनुष्यगत्यानुपूर्वी १ पंचेन्द्रि-यजाति १ सुभग १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ आदेय १ यशःकीर्ति १ तीर्थंकरत्व १

इस प्रकार ८५ प्रकृतियोंके क्षय होतेही नियमसे

विमुक्ति प्राप्त होती है।

शंका- मोक्षका क्या अर्थ है ? क्या मोहका अभावही मोक्ष है ?

वास्तवमें यह शंका ठीक है। मोह कर्मका अभाव तो दशमगुणस्थानके अंत और बारहवें गुणस्थानके आदिमें हो जाता है और मोहके अभाव होतेही मोक्ष हो जाना चाहिए। यद्यपि बारहवें गुणस्थानमें क्षायिक सम्यक्त्व और इस गुणस्थानके अंतमें ज्ञानवरणी दर्शनावरणी और अंतरायके नाश होजानेसे पूर्ण सम्यग्ज्ञान तथा चारित्रमोहके अभाव होजानेसे सम्यक्चारित्र होजाता है और रत्नत्रयके पूर्ण होतेही मोक्ष होना चाहिये, परंतु मोक्ष होता नहीं है क्योंकि यहां चारित्र तो होजाता है परंतु परम यथाख्यात चारित्र नहीं होता है क्योंकि योगोंकी क्रियाका सद्भाव अबभी मौजूद है और यथाख्यात चारित्रके लक्षणमें बतलाया है कि मोह और योगके अभाव होनेपर यथाख्यात चारित्र होता है। ऐसा यथाख्यातचारित्र पूर्णशील और उत्तरगुणोंकी पूर्णता होनेपर होता है। शीलकी व उत्तरगुणोंकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थानके अंतमें ही होती है और तभी मोक्ष होती है। इसलिये मोहके अभाव होनेपर बारहवेंके अंत तक मोक्ष नहीं होती है, कुछ ऐसी प्रकृतियां हैं जो वहांपर जाग्रत रहती हैं उनके निमित्तसे बहुत समय

तक वह जीव सिद्धालयमें नहीं जा सकता, संसारमेंही ठहरता है, जब उन प्रकृतियोंकी निर्जरा होजाती है तो उसी वक्त मोक्षमें जा विराजता है।

शंका- मोक्ष कितने तरहका है सो कहो?

उत्तर- मोक्ष दो प्रकारका होता है (१) जीवनमुक्त (२) द्रव्यमुक्त।

जीवनमुक्तका स्वरूप इस प्रकार है- यह जीव अनादिकालसे मिथ्यात्वरूप (अतत्वरुचिरूप) प्रवृत्तिका आचरण करता आया है बादमें काललब्धिके बलसे स्वयं या दूसरेके उपदेशादिके निमित्तसे उस मिथ्यात्वको गलाकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति करता है यहांसे इस जीवको सम्यग्दृष्टिपना प्राप्त होता है और तभीसे इसके कर्मोंकी निर्जराका होना शुरू होजाता है। और आगे बढ़ते २ चौदहवें गुणस्थान तक पहुंचजाता है ऐसे जीवको जीवनमुक्त कहते हैं।

द्रव्यमुक्त-बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥ १० ॥

अर्थ- बंधके कारणों (मिथ्यात्व अविरति आदि) का अभाव तथा पूर्वसंचितकर्मोंकी निर्जरा होने पर संपूर्ण कर्मोंका आत्मासे अलग होकर आत्माका स्वातंत्र हो जाना ही द्रव्य मोक्ष है।

मुक्त जीवोंके औपशमिकादिक भाव नहीं रहते तथा पारिणामिक भावमेंसे अभव्यता तो पहिलेसेही नहीं थी परंतु भव्यत्वभावकाभी अभाव होजाता है।

शंका- जो तुमने कहाकि भव्यत्वभावभी नहीं रहता तो क्या अभव्यको मोक्ष होती है?

उत्तर- हे भव्य जो तुमने पूंछा सो ठीक है मोक्ष तो भव्यको ही होती है अभव्यको कदापि मोक्ष नहीं हो सकती। यहां जो भव्यत्व प्रकृतिका अभाव बतलाया है वह इसदृष्टिसे कि भव्यत्व प्रकृतिका कार्य तो जीवको मोक्ष प्राप्त करा देनेका है जब जीवको मोक्ष होजाता है तो भव्यत्व प्रकृति अपने आप दूर होजाती हैं इसीसे मोक्ष हो जाने पर भव्याभव्यका तो अभाव कहा जाता है और केवल एक जीवत्व प्रकृतिका सद्भाव रहजाना बतलाया है।

शंका- तो केवल जीवत्व गुणही रहता है या और कोई दूसरे भावभी रहते हैं?

उत्तर- अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥ १० अ० ॥

अर्थ- सिद्धावस्थामें कर्मोंके उपशम, क्षय, क्षयोपशमकी अपेक्षा न रखने वाला पारिणामिक भावमें तो एक जीवत्व भावही रहता है और बाकीके चार भाव और

होते हैं- केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और २ भावोंका अभाव होजाता है।

शंका- मोक्ष होजाने पर अर्थात् संपूर्ण कर्मोंके अभाव होजाने पर यह जीव जहांसे मोक्ष होती हैं वहीं रह जाता होगा ?

उत्तर- तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥

॥ १० अ० तत्वार्थसूत्र ॥

अर्थ- आत्मासे तमाम कर्मोंके अभाव होतेही यह जीव उर्ध्वगमन कर लोकके अग्रभागमें तनुवात वलयके अंतमें जा विराजता है।

शंका- उससे ऊपर क्यों नहीं जाता ?

उत्तर- धर्मास्तिकायाभावात् अर्थात् जीव और पुद्गल को गमन करनेमें सहायक धर्म द्रव्यका आगे अभाव है इसीसे आगे गमन नहीं कर सकता है।

शंका- यदि जीवका ऊर्ध्वगमनही स्वभाव है तो ये नर्क निगोदि योनियोंमें क्यों जन्म लेता है इसको तो हमेशा ऊर्ध्वगमनही करना चाहिये ?

उत्तर- अभी तुम्हारी समझमें ये बात आई नहीं कि कौन जीव ऊर्ध्वगमन करता है। नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तीने अपने द्रव्यसंग्रहग्रंथमें बतलाया है कि-

पयडीट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छादि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति॥

अर्थ- प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चार प्रकारके बंधोंसे बिलकुल छूटा हुआ जीवही ऊर्ध्वगमन करता है बाकीके कर्मबंध सहित जीव विदिशाको छोड़ दिशा गमन करते हैं। इससे तुम्हारी समझमें आगया होगा कि कौन जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला होता है।

शंका- किस तरह ऊर्ध्वगमन करता है इसको कोई दृष्टांतसे बतलाइये ?

उत्तर- आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥१०॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥

अर्थ—मुक्त जीव कुम्हारके द्वारा घुमाये हुए चक्रकी तरह पूर्व प्रयोगसे अर्थात् जिस तरह कुम्हार अपने चाक को एक वक्त घुमा देता है बादमें वह चाक अपने आप घूमता है उसी तरह मुक्त जीवभी संसारावस्थामें मोक्ष जानेकी इच्छा रखता आया है उसी संस्कारसे ऊर्ध्वगमन करता है। जिस तरह मिट्टीके लेप सहित तूमड़ी डूब जाती है और उसी तूमड़ीपर जलकी लहरोंकी थपेडे लगनेसे मिट्टी अलग होजाने बाद उस तूमड़ीका ऊपरको गमन होजाता है

उसीतरह कर्मरूपी मिट्टीके संबंधसे यह जीव चारों गतियोंमें गमन करता था परंतु जैसेही ये कर्मधूलि दूर होजाती है उसी समय यह जीव अपने आप ऊर्ध्वगमन करता है। तथैव जैसे एरण्डका बीज डोंडेके फूटतेही ऊर्ध्वगमन करता है, उसी तरह यह जीवभी कर्मसंगके अभावसे ऊर्ध्वगमन करता है। एवं जिस प्रकार निर्वात प्रदेशमें अग्नि स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करती है, उसी तरहसे कर्मोंके अभाव होने पर यह जीव स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करता है।

शंका· कर्मोंके नाश होनेसे सिद्धोंके कौन २ से गुण प्रकट होते हैं ?

उत्तर- मुक्त जीवोंके आठ कर्मोंके नाश होने पर आठ गुण व्यक्त होजाते हैं जैसा कि—

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलघुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंदि सिद्धाणम् ॥

अर्थ- आठ कर्मोंके नाश होनेपर सिद्धोंके नीचे लिखे आठ गुण व्यक्त हो जाते हैं—

सम्यक्त्व १ ज्ञान २ दर्शन ३ वीर्य ४ सूक्ष्मत्व ५ अवगाहनत्व ६ अगुरुलघुत्व ७ अव्याबाधत्व ८

मोहनीयके नाश होनेसे क्षायिकसम्यक्त्व

ज्ञानावरणके नाशसे	क्षायिकज्ञान
दर्शनावरणके नाशसे	क्षायिकदर्शन
अंतरायके नाशसे	क्षायिकवीर्य
नामकर्मके नाशसे	सूक्ष्मत्व
आयुकर्मके नाशसे	अवगाहनत्व
गोत्रकर्मके नाशसे	अगुरुलघुत्व
वेदनीयकर्मके नाशसे	अव्यावाधत्व

इस तरह आठ कर्मोंके अभावमें ८ गुण व्यक्त होजाते हैं।

शंका- तो क्या सिद्धोंकी आत्मामें ये आठही गुण होते हैं या और २ भी गुण होते हैं?

उत्तर- ये तो मोटे रूपसे आठ गुण बतलाये गये हैं परंतु एक २ गुणका घातक एक २ कर्मभी भिन्न २ तरह का होता है। कर्म आठही होते हैं सो बात नहीं है, कर्म अनंतानंत होते हैं। इसीलिये सिद्धचक्र विधानके मंत्रमें बतलाया है ॐ ह्रीं अनंतानंतकर्मविध्वंसकाय नमः

अर्थात्- अनंतानंतकर्मोंके नाश करने वालोंको नमस्कार इससे सिद्ध होता है कि सिद्धोंने अनंतानंत कर्म नाश किये और अपनी आत्मामें अनंतानंत गुणोंको व्यक्त किया, कविवर वर्णी दौलतरामजीनेभी सिद्धोंकी पूजाकी जयमालामें बतलाया है कि-

इन कहन मात्र गुण अष्ट जान, इन आदि अनंते गुण प्रमाण।

अर्थात- ऊपर कहे गये इन गुणोंको कहने मात्रही आठ गुण जानो, लेकिन सिद्धोंमें तो इन आठको आदि लेकर अनंते गुण होते हैं। इन गुणोंमें उत्पादव्यय ध्रुवता हमेशा बनी रहती है, इन्हींमें षट्गुणी हानि और वृद्धि होती रहती हैं।

षट्गुणी हानि वृद्धिका स्वरूप इस प्रकार है-

कल्पना करो कि मूलराशिका प्रमाण १००० है, संख्यातका प्रमाण ४, असंख्यातका ५ और अनंतराशिका प्रमाण १० है। मूलराशिमें इन संख्याओंसे हानि वृद्धि हुआ करती है। वही बतलाते हैं-

४ से गुणा करने पर जो संख्यात होता है उसकी व्यवहारमें गिनती होती है।

५ से गुणा करने पर मध्यम असंख्यात होता है इससे लोकगणना होती है।

१० से गुणा करने पर अनंत होता है इससे जीवराशिकी गणना होती है।

अनंत हानि व वृद्धिकी संख्या बतलाते हैं-

मूलराशि १००० है उसमें अनंतकी संख्या १० है

उससे विभाग करनेसे १०० आते हैं तो समझना चाहिये कि जब अनंतभाग वृद्धिहो तब मूलराशि १००० में १०० के मिलानेसे ११०० होते हैं, इसीको अनंतभागवृद्धि कहते हैं। और जब अनंतभाग हानि हो तब मूलराशि १००० में से १०० घटाने पर ९०० रहते हैं इसीको अनंतभाग हानि कहते हैं।

मूलराशि १००० है और असंख्यात ५ हैं उससे विभाग करनेसे २०० होते हैं जब असंख्यातभागवृद्धि हो तब मूलराशिमें २०० को मिलानेसे जो १२०० होते हैं समझना चाहिये इसीको असंख्यातभागवृद्धि कहते हैं। जब असंख्यातभागहानि होती है तब मूलराशि १००० में से विभक्त राशि २०० घटनेसे जो ८०० रहते हैं इसको असंख्यातभाग हानि कहते हैं।

मूलराशि १००० है और संख्यातका प्रमाण ४ है उससे विभाग करने पर जो २५० लब्ध होते हैं उसको मूलराशि १००० में जोड़नेसे जो १२५० होते हैं इसीको संख्यातभागवृद्धि कहते हैं। इसी मूलराशि १००० मेंसे जब लब्धराशि २५० को घटा देते हैं तब ७५० लब्ध आते हैं इसीको संख्यातभागहानि कहते हैं।

अब गुणवृद्धिको कहते हैं-

मूलराशि १००० है और संख्यातका प्रमाण ४ असं-

ख्यातका प्रमाण ५ और अनंतका प्रमाण १० है।

यदि संख्यातगुणवृद्धि हो तो लब्धराशिका प्रमाण ४००० होता है।

यदि असंख्यातगुणवृद्धि हो तो १००० की लब्ध-राशि ५००० होती है।

यदि अनंतगुणवृद्धि हो तो १००० की राशि १०००० होती है।

मूलराशि १००० हो अनंतका प्रमाण १० असंख्यातका ५ और संख्यातका ४ हो। यहां अनंतभाग १०० है इसकी वृद्धिसे राशि १००० में वृद्धि हो तब लब्धराशि ११०० हुई। और २०० असंख्यात है इससे वृद्धि हो तब राशि हजारमें बढनेसे १२०० होते हैं।

२५० संख्यात हैं इससे वृद्धि हो तब राशि १००० में वृद्धि होनेसे १२५० होते हैं। इसी तरह-

४ संख्यातसे हानि हो तो मूलराशि १००० में से २५० रहे।

५ असंख्यातसे हानि हो तब मूलराशि १००० में से २०० रहे।

१० अनंतसे हानि हो तो मूलराशि १००० में से

१०० रहें।

मूलभागवृद्धिराशि १००० में–

४ संख्यातसे वृद्धि हो तब मूलराशि १००० के १२५० हुए।

५ असंख्यातसे वृद्धि हो तब मूलराशि १००० के १२०० हुए।

१० अनंतसे वृद्धि हो तब मूलराशि १००० का ११०० हुए।

मूलराशि १००० में मूलभागहानि–

४ संख्यात है इससे मूलराशि १००० में २५० की हानि होनेपर ७५० रहे।

५ असंख्यात है, इससे मूलराशि १००० में २०० की हानि होनेपर ८०० रहे।

१० अनंतका प्रमाण है इससे मूलराशि १००० में से १०० घटानेपर ९०० रहे।

इस प्रकारकी हानि वृद्धि परिणामोंकी जातिमें हुआ करती है। इसको विशेष समझदार ही समझ सकते हैं। जो मंदमति संसारी जीव इसको नहीं समझ सकते उनको समझानेके लिये ऐसा कहा है कि उन सिद्धोंके ज्ञानमें

संसारी जीवोंकी अपेक्षासे यह समझमें आता है कि हमारी अंगुली इस वक्त सीधी है तब उनके ज्ञानमें वह अंगुली सीधी ही झलकती है, बादमें वही अंगुली जब टेडी हो जाती तो उनके ज्ञानमें भी टेडीही झलकेगी तब सीधेपनका व्यय और टेडेपनका उत्पाद हो जावेगा; परंतु सीधे और टेडे दोनों अवस्थाओंमें अंगुली मौजूद है यही ध्रौव्यपना है। इसीको उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कहते हैं इनके होनेसे ही हरएक द्रव्यकी सिद्धि होती है। अब यहां यह समझना चाहिये कि अंगुलीका सीधापनही उसकी वृद्धि और उसका टेडापनही उसकी हानि है। मूलराशिके स्थानमें अंगुली है ही। इसी प्रकार यहां भी हानि वृद्धि समझना चाहिये।

सिद्धोंका स्वरूप वरणन करनेको कहते हैं-

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजना णिच्चा
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥
॥ ६८ ॥ गो. जी. ॥

अर्थः- जो ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे रहित हैं, अनंतसुखरूपी अमृतके अनुभव करनेसे शांतिमय हैं, नवीन कर्मबंधको कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्मरूपी अन्जनसे रहित हैं, नित्य हैं, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य,

अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्म और अगुरुलघु ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रकट हो चुके हैं, कृतकृत्य (जिनको कोई कार्य करना बाकी न रहा है) हैं, लोकके अग्रभागमें निवास करनेवाले हैं उनको सिद्ध कहते हैं।

ऊपर श्लोकमें दिये हुए सिद्धोंके सात विशेषणोंका प्रयोजन दिखाते हैं-

सदसिव संखो मक्कडि बुद्धो णेयाइयो य वेसेसी।
ईसर मंडलिदंसणविदूसणट्ठं कयं एदं ॥ ६९ ॥ गो. जी. ॥

अर्थः- सदाशिव, सांख्य, मस्करी, बौद्ध, नैयायिक और वैशेषिक, कर्तृत्ववादी (ईश्वरको कर्ता मानने वाले), माण्डलीक इनके मतोंका निराकरण करनेके लिये ये विशेषण दिये गये हैं।

सांख्य- मतवाला मानता है कि " बंध, मोक्ष, सुख, दुख, प्रकृतिको होते हैं, आत्माको नहीं " उसके निराकरणके लिये " सुखस्वरूप " ऐसा विशेषण दिया है।

मस्करी- मतवाला मुक्त जीवोंका लोटना मानता है, उसको दूषित करनेके लियेही कहा है कि " सिद्ध निरंजन " हैं, अर्थात् मिथ्यादर्शन, क्रोध, मानादि भाव कर्मोंसे रहित हैं। क्योंकि बिना भावकर्मोंके नवीन कर्मोंका ग्रहण नहीं हो सकता और बिना कर्म ग्रहणके निर्हेतुक संसारमें लौट

नहीं सकता।

सदाशिव- मतवाला जीवको सदा कर्मसे रहितही मानता है उसके निराकरणके लियेही ऐसा कहा है कि- सिद्ध अवस्था प्राप्त होने पर ही जीव कर्मोंसे रहित होता है। सदा नहीं। सिद्ध अवस्थासे पूर्व संसार अवस्थामें कर्मों सहित रहता है।

बौद्धों- का मत है "संपूर्ण पदार्थ क्षणिक अर्थात्- क्षण २ में नाश होने वाले हैं" उसको दूषित करनेके लिये कहा है कि वे "नित्य" हैं।

नैयायिक तथा वैशेषिक- मतवाले मानते हैं कि "मुक्तिमें बुद्धि आदि विशेष गुणोंका विनाश होजाता है" उसको दूर करनेके लिये "ज्ञानादि आठगुणोंसे सहित हैं" ऐसा कहा है।

ईश्वरको कर्ता मानने वालोंके मतके निराकरण करने के लिये 'कृतकृत्य" विशेषण दिया है, अर्थात् अब (मुक्त होने पर) जीवको सृष्टि आदि बनानेका कार्य शेष नहीं रहा है।

माण्डली- मतवाला मानता है कि "मुक्त जीव सदा ऊपरको गमनही करता रहता है, कभी ठहरता नहीं"

उसके निराकरणके लिये " लोकके अग्रभागमें स्थित हैं " ऐसा कहा है।

तिहुवणसिहरेण महीवित्थारे अट्ठ जोयणुदयथिरे
धवलच्छत्तायारे मणोहरे ईसिपब्भारे । ६४९ । क्षपणासार ।

अर्थ- वह जीव ऊर्ध्वगमन स्वभावसे तीनलोकके शिखर पर ईषत्प्राग्भार है नाम जिसका ऐसी आठवीं धरा (पृथिवी) के ऊपर एक समयमें तनुवात वलयके अंतमें विराजमान होजाते हैं। कैसी है वह पृथिवी मनुष्य लोक प्रमाण पैंतालीस लाख योजन चौड़ी और वलय (गोला· कार) आठ योजन ऊंची तथा स्थिर श्वेत छत्रके आकार सफेद है। बीचमें मोटी और दोनों छोड़ों पर पतली है। ईषत्प्राग्भार नामा पृथ्वी घनोदधिवातवलय पर्यंत है, परंतु यहां उस पृथ्वीके बीचमें पाई जाती है जहां सिद्धशिला है, उसकी अपेक्षाही ऐसा वर्णन है, धर्मास्तिकायके अभावसे वहांसे ऊपर जीवोंका गमन नहीं होता है।

शंका- इस प्रकारके सिद्ध जीव त्रसनालीमें पाये जाते हैं या उसके बाहरभी पाये जाते हैं?

उत्तर- स्थावर जीवोंके सिवा बाकी जीव त्रस कह· लाते हैं सो सब त्रसनालीमें ही पाये जाते हैं उसका स्व- रूप निम्न प्रकार है।

लोयबहुमज्झदेसे तरुम्मिसारं व रज्जुपदरजुदा।
तेरसरज्जुच्छेहा किंचूणा होदि तसणाली ॥
॥ ६ ॥ त्रिलोकप्रज्ञप्ति अ. २ रा. ॥

अर्थः- जिस प्रकार वृक्षके ठीक २ मध्यभागमें सार हुआ करता है उसी प्रकार लोकके बहुमध्यभाग अर्थात् बीचमें एक राजु लंबी चौडी और कुछ कम तेरह राजू ऊंची त्रसनाली अर्थात् त्रस जीवोंके रहनेकी जगह है।

शंका- ऊपरके कथनसे तो ये मालूम होता है कि त्रस नाडीसे बाहर त्रस जीव है ही नहीं?

उत्तर-ऐसा नहीं है। कोई समय ऐसा होता है जिस समय त्रस जीव त्रस नाडीके बाहरभी पाये जाते हैं सो ही बतलाया है-

उववादमारणांतिय परिणदतसमुज्झिऊण सेसतसाः
तसणालि बाहिखेत्ते णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥
॥१८८॥ जीवकांड ॥

अर्थः-उपपाद और मारणांतिक समुद्घातवाले त्रस जीवोंको छोडकर बाकीके त्रस जीव त्रसनालीके बाहर नहीं होते ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है। भावार्थ ये है कि किसी विवक्षित भवके प्रथम समयकी पर्यायको उपपाद कहते हैं। अपनी आयुके अंतिम अंतर्मुहूर्तमें जो समुद्घात

होता है उसको मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। लोकके बिलकुल मध्यमें एक २ राजू चौडी मोटी तथा चौदह राजू ऊंची त्रसनाली है उसको त्रसनाली कहते हैं। क्योंकि त्रस जीव इसके भीतर ही होते हैं बाहर नहीं होते। किंतु उपपाद और मारणांतिक समुद्घात वाले त्रस तथा इस गाथामें च शब्दका ग्रहण किया है इससे केवल समुद्घात वाले भी त्रसनालीके बाहर कदाचित रहते हैं। वह इस प्रकारसे कि—

लोकके अंतिम वातवलयमें स्थित कोई जीव मरण करके विग्रहगति द्वारा त्रसनालीमें त्रसपर्यायसे उत्पन्न होने वाला है; वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोडा लेता है उस समयमें त्रस पर्यायको धारण करने परभी त्रसनालीके बाहर है इसलिये उपपादकी अपेक्षा त्रस जीव त्रसनालीके बाहर रहता है। इसीप्रकार त्रसनालीमें स्थित किसी त्रसने मारणांतिक समुद्घातके द्वारा त्रसनालीके बाहरके प्रदेशोंका स्पर्श किया क्योंकि उसको मरण करके वहीं उत्पन्न होना है तो उस समयमें भी त्रस जीवका अस्तित्व त्रसनालीके बाहर पाया जाता है। इसी तरह जब केवली केवल समुद्घातके द्वारा त्रसनालीके बाह्य प्रदेशोंका स्पर्श करते हैं उस समयमें भी त्रसनालीके बाहर त्रसजीवका सद्भाव पाया जाता है। परंतु इन तीनोंको

छोडकर बाकी त्रस जीव त्रसनालीके बाहर कभी नहीं रहते।

शंका- जैसे ऊपर केवलियोंमें भेद बतलाया गया है। उस तरहसे क्या सिद्धोंमें भी भेद होता है? यदि हां तो किस तरहसे भेद होता है सो बतलाइये?

उत्तर- अर्हंतों व सिद्धोंमें गुणोंकी अपेक्षा तो कोई भेद नहीं है, गुणोंकी अपेक्षा सब समान होते हैं, फिर भी बाह्य दृष्टिसे द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा भेद साध्य होता है।

क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधित-
ज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतःसाध्याः

॥९॥ १० अध्याय तत्वार्थसूत्र॥

अर्थः- क्षेत्र १ काल २ गति ३ लिंग ४ तीर्थ ५ चारित्र ६ प्रत्येक बुद्ध बोधित ७ ज्ञान ८ अवगाहना ९ अन्तर १० संख्या ११ अल्पबहुत्व १२ इन प्रकारोंके अनुयोगोंसे सिद्धोंमें भेद साध्य है। प्रत्युत्पन्ननय और भूतप्रज्ञापननय इन दोनों नयोंकी विवक्षासे क्षेत्रादिक बारह अनुयोगों द्वारा सिद्धोंमें भेद साधने योग्य है। तहां क्षेत्रकी अपेक्षा कौन क्षेत्रमें सिद्ध होते हैं? उत्तर- प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा सिद्धक्षेत्रमें अथवा अपने आत्मप्रदेशोंमें तथा आकाशके प्रदेशोंमें सिद्ध होते हैं।

भूतप्रज्ञापननयकी अपेक्षा जन्मका अपक्षा पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुआ जीवही सिद्ध होता है, तथा इन्हीं पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुए मनुष्यको कोई देव आदि दूसरे क्षेत्रमें लेजावे तो ढाई द्वीपप्रमाण संपूर्ण मनुष्य क्षेत्रसे सिद्ध होते हैं। प्रत्युत्पन्नग्राही नय वर्तमान पदार्थको ग्रहण करता है ऐसा नय ऋजुसूत्रनय है। शब्द समभिरूढ एवंभूत नय भी इसी ऋजुसूत्र नयके परिवार हैं।

कालकी अपेक्षा कौन कालमें सिद्ध होते हैं?

प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा एक समयमें सिद्ध होते हैं। भूतप्रज्ञापननयकी अपेक्षा सामान्यतासे तो उत्सर्पिणी अवसर्पिणी इन दोनों कालोंमें सिद्ध होते हैं। विशेषापेक्षया अवसर्पिणीके तीसरे कालके अंतभागमें और संपूर्ण चौथे कालमें उत्पन्नहुए और चतुर्थ कालमें उत्पन्नहुए जीव पंचम कालमें भी मोक्ष प्राप्त करते हैं। परंतु पंचम और छट्टे काल में उत्पन्न हुए जीव मोक्ष नहीं पाते। विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न हुए मनुष्यको कोई देवादिक हरकर लेजाय तो संपूर्ण उत्सर्पिणीमें सिद्ध होते हैं।

गति- प्रत्युपन्नग्राहीनयकी अपेक्षा सिद्धगतिमें ही सिद्ध होते हैं। भूतविषयकनयकी अपेक्षा मनुष्यगति ही

में सिद्ध होते हैं।

लिंग- वर्तमानग्राहीनयकी अपेक्षा वेदरहित ही सिद्ध होते हैं। भूतग्राहीनयकी अपेक्षा तीनों ही भाववेदसे क्षपकश्रेणि चढि मोक्ष पाते हैं। द्रव्यवेदसे पुरुषवेदसे ही मुक्ति पाते हैं। अथवा निर्ग्रंथ लिंगसे ही मोक्ष पाते हैं।

तीर्थ- कोई तो तीर्थंकर होकर मुक्ति पाते हैं कोई सामान्यकेवली होकर मोक्ष पाते हैं। उनमेंभी कोई तो तीर्थंकर विद्यमान होंय उस समय मोक्ष पाते हैं कोई तीर्थंकरके न रहनेपर मोक्ष पाते हैं।

चारित्र- वर्तमानग्राही नयकी अपेक्षासे चारित्रके अभावमें सिद्ध होते हैं। भूतग्राहीनयकी अपेक्षासे अनंतर अपेक्षा तो यथाख्यात चारित्रसे ही मोक्ष पाते हैं और अंतरकी अपेक्षा सामायिक छेदोपस्थापना सूक्ष्म-सांपराय यथाख्यातचारित्रसे मुक्ति पाते हैं। तथा कोईकें परिहारविशुद्धि होय तब पांचोंही चारित्रसे मोक्ष होता है।

प्रत्येक बुद्ध बोधित- प्रत्येक बुद्ध तो अपनी शक्तिसे अपने आपही ज्ञान पाते हैं और बोधित बुद्ध दूसरेके उपदेशसे पाते हैं। कोई तो प्रत्येक बुद्ध होकर मोक्ष पाते हैं और कोई बोधितबुद्ध होकर मोक्ष पाते हैं।

ज्ञान- वर्तमानग्राही नयकी अपेक्षा केवल ज्ञानसे ही मोक्ष पाते हैं। और भूतग्राही नयकी अपेक्षा- कोई तो मति श्रुत इन दोनों ज्ञानोंसे केवल ज्ञान पाकर मोक्ष पा जाते हैं, कोई मति श्रुत अवधि ज्ञानसे केवलज्ञान उपजाकर मोक्ष पाते हैं। कोई मति श्रुत अवधि, मनःपर्ययसे केवलज्ञान उत्पन्न कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

अवगाहना- उत्कृष्ट अवगाहना पांच सौ पच्चीस धनुषकी होती है और जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ मे कुछ कम होती है। मध्यमके बहुतसे भेद होते हैं। इनमें एक २ अवगाहनामें मोक्ष पाते हैं।

अंतर- सिद्धि प्राप्त करनेवाले जीव अंतररहित भी सिद्ध होते हैं उसमेंसे जो सिद्ध होते हैं उनके अनंतर जघन्य तो दो समय है और उत्कृष्ट आठ वर्ष तक निरंतर सिद्ध होते हैं। और जघन्य अन्तर तो एक समय है और उत्कृष्ट छह महीना है।

शंका- छह मास तक वहिर काल रहे तो मोक्ष कम जाता है ? सो कहो-

उत्तर- त्रिलोकप्रज्ञप्तिनामा ग्रंथमें तो ऐसा कहा है गाथा—

अवसप्पिणि उस्सप्पिणि कालसलायागदे य संखाणि

हुंडावसप्पिणी सा एक्का जाएदि तस्स चिण्हमियं ॥
॥ १६१५ ॥ ४ ॥

अर्थः— असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कालकी शलाकाओंके बीत जानेपर-प्रसिद्ध एक हुंडावसर्पिणी काल आता है इसके पीछे जिसमें छह मास तक मोक्ष बंद रहता है उसको बताते हैं—

एक्कसया अडियाला चौबीसिगया य हुंति हुंडक्कं
वेतिय हुंडगयाइं विरह होदिदु मोक्खस्स ।१। लोगाइणी।

अर्थ· ऊपर बतलायेहुए उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल सरीखे महान काल १४८ जब बीत जाते हैं तब एक हुंडक काल आता है। हुंडक कालमें छह माहतक मोक्ष सर्वथा बंद रहता है। ऐसा वहिर काल भी होता है ।

संख्या- जघन्यरूपसे एक समयमें एकही जीव सिद्धगति पाता है। और उत्कृष्ट रूपसे एक समयमें एक सौ १०८ जीव मोक्ष पाते हैं।

अल्पबहुत- प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा सिद्ध क्षेत्रमें ही सिद्ध होते हैं, इनके अल्पबहुत्व नहीं है। भूतग्राहीनयकी अपेक्षा- सिद्धक्षेत्र दो प्रकारका है (१) जन्मसे (२) संहरणसे। इनमें सहरणसिद्ध थोड़े होते हैं, इनसे संख्यागुणे जन्मसिद्ध हैं। इस प्रकार सिद्धोंमें व्यवहार दृष्टिसे भेद

बतलाया गया है, गुणों और आत्मिक शक्तिकी अपेक्षा सिद्धोंमें कोई भेद नहीं होता है। सिद्धालयमें सभी सिद्ध अपने आत्मिक सुखमें मग्न रहते हैं।

संसारी जीवोंने तो अनादि कालीन मोहवासनासे ऐन्द्रिक विषयोंको ही सुख माना है, उनको उसीका अभ्यास हो रहा है, ज्ञान जन्य सुखका उनको कभी अनुभव नहीं हुवा है, इसीसे सिद्धोंके सुखको सुनकर उनको आश्चर्यसा होता है तथा उनके सुखी होनेमें कौतुक पूर्वक संदेहसा होता है। उनके संदेहको दूर करनेके लिये एक कविके थोड़े छंद यहां पर उद्धृत किये जाते हैं।

कविवर द्यानतरायजीने अपनी सुखबत्तीसीमें सिद्धों के सुखका वर्णन निम्न प्रकार किया है—

चौ. छंद—

जो कोई नर औगुन धार, नख शिख बंध बंध्यो निरधार।
एक शिथिल कीनैं सुख होय, सब टूटैं ता सम नहिं कोय॥
वात पित्त कफ तप सिरवाह, कोढ जलोदर दम अरु दाह।
एक गए कछु साता गहै, सरब गये परमानंद लहै॥
एक शास्त्र जो पढे पुमान, कछु संदेह होय हैरान।
ताकौं संमुझैं हरष अपार, क्यों न सुखी सब जानन हार॥

दोहा—नरक गरम जनमन मरन, अधिक अधिक दुख होय।
जहां एक नहिं पाइये, सुखिया कहिये सोय ॥
रूखा भोजन करज सिर, और कलहिनी नार।
चौथे मैले कापडे, नरक निकासी चार ॥
उद्दिम विन अरु मांगना, बेटी चलनाचार।
सब दुख जिनके मिट गये, तेई सुखी निहार ॥
कान आंख मुख नाक मल, मूत पुरीष पसेव।
सातों मल जाकै नहीं, सोई सुखिया देव ॥

चौ. छंद—

नरक पशू दोनों दुख रूप, बहु नर दुखी सुखी नरभूप।
तातैं सुखी जुगलिये जान, तातैं सुखी फनेस वखान ॥
तातैं सुखी सुरगको ईश, अहमिंदर सुख अति निश दीस।
सब तिहुंकाल अनंत फलाय, सो सुख एक समै शिवराय ॥

इत्यादि रूपसे सिद्धोंके सुखका वर्णन किया है। सिद्ध पदकी प्राप्ति पूर्व संचित कर्मोंकी निर्जरा करनेसे होती है। निर्जरा दो प्रकारकी होती है (१) सविपाक निर्जरा (२) अविपाक निर्जरा।

सविपाक निर्जरा- जो कर्म अपनी स्थिति पूरी करके संबंध छोडते हैं उसको सविपाक निर्जरा कहते हैं।

अविपाक निर्जरा- तप आदि विधानके द्वारा कर्मों

की स्थिति पूर्ण हुए बिना असमयमें ही फल देकर कर्मों का संबंध आत्मासे छूट जानेको अविपाक निर्जरा कहते हैं।

चारों गतिके सभी संसारी जीवोंके सविपाक निर्जरा होती रहती है परंतु साथ २ में आत्माके साथ नवीन कर्मोंका संबंधभी होता रहता है इस रीतिसे आत्मासे कर्मोंका संबंध कभी छूट नहीं सकता है। और आत्मासे कर्मोंके संबंध छूटे बिना मुक्ति होती नहीं है अतएव सविपाक निर्जरा कार्यकारी नहीं मानी जाती है।

सम्यग्दर्शन पूर्वक किये हुए तपश्चरणादि द्वारा जो निर्जरा होती है वह तो सम्यग्ज्ञान पूर्वक परम वैराग्य धारक महान तपस्वियोंके होती है। ऐसी निर्जरा ही मोक्ष दिलाने वाली होती है अतएव उत्तम नर अवतार पाकर ऐसी क्रियायें ही करनी चाहिये जिनसे जीव कर्म बंधनसे छूटकर हमेशाके लिये परम निर्वृत्ति धामको प्राप्त कर सके।

इस प्रकार निर्जराका संक्षेप रूपमें दिग्दर्शन कराने वाला निर्जरासार ग्रंथ

समाप्त

दानदाताओं की नामावली-

इस तरफ की नामावली के नामों में कुछ भ्रम हो जाता है,
इसलिये नीचे लिखी नामावली ही ठीक समझी जावे।

—लक्ष्मीचन्द्र वर्णी.

५००) श्रीमान सेठ पन्नालालजी मिश्रीलालजी गंगवाल इन्दौर
२००) श्रीमान सेठ फूलचन्दजी पाटनी फैन्सी संयोगितागंज
छावनी इन्दौर
२००) श्री दिगम्बर जैन काटन एसोसिएशन बड़ासराफा इन्दौर
२००) श्रीमती सेठानी रत्नप्रभाबाई साहब धर्मपत्नी सेठ
लालचन्दजी सा सेठी उज्जैनवाले
१५८) श्रीमान सेठ परसरामजी दुलीचन्दजी सेठी सराफा इन्दौर
७५) श्रीमान सेठ लूणकरनजी पन्नालालजी पाटनी
संयोगितागंज छावनी इन्दौर
५०) श्रीमती सेठानी गुलाबबाई सा० श्रीमान सेठ समीरमलजी
अजमेरा संयोगितागंज छावनी इन्दौर
५१) श्रीमान सेठ माणकचन्दजी कस्तूरचन्दजी सेठी की माँ सा०
मल्हारगंज इन्दौर
१५) श्रीमती सौ. रत्नबाई सा० धर्मपत्नी चांदमलजी गंगवाल
शीतलामाताबजार, इन्दौर
१०) श्रीमान सेठ सुखलालजी नरसिंगपुरा विनोता मेवाड़वाला
१०) श्रीमती ब्रह्मचारिणी प्यारीबाई सा० हाथरस यू. पी.
५) श्रीमान सेठ फतेलालजी गुलाबचन्दजी बड़जात्या
संयोगितागंज इन्दौर
५) श्रीमान सेठ शंकरलालजी चाकलीवाल मु० काटपाड़ी
(मद्रास)
५) श्रीमान बाबू चिदानंदजी टेलीफोन आफिस वाले इन्दौर

प्रकाशकीय वक्तव्य—

यह आत्महितैषी ग्रंथ श्री महाराजने इन्दौरमें रहते हुए ही लिखा है। श्रावकोंकी प्रेरणासे इसका भी प्रकाशन किया जा रहा है। इसके प्रसिद्ध करनेके लिये निम्नलिखित दानियोंने सहायता प्रदान की है इसलिये वे अत्यन्त धन्यवादके पात्र हैं। इस ग्रंथसे १॥ माह पहिले सद्बोधमार्तंड प्रकाशित हुवा है इसमें जो खर्चकी रकम बतलाई गई है उससे भी करीब २००) ज्यादा खर्च हुए हैं, उनकी पूर्ति इसमेंकी दानकी रकममें से की गई है।

दानियोंकी नामावली—

॥) सेठ फूलचंदजी पाटनी फलसी छोटी बावनी इन्दौर.
दिगंबर जैन काटन एसोशियेशन बडा सराफा इन्दौर.
श्रीमती सेठानी रतनबाई सा. धर्मपत्नी सेठ लालचंदजी सेठी उज्जैन.
श्रीमान सेठ परसरामजी दुलीचंदजी सेठी इन्दौर.
श्रीमान सेठ लूनकरणजी पन्नालालजी पाटनी संयोगितागंज इन्दौर.
श्रीमती सौ. सेठानी गुलाबबाई ध. पत्नी सेठ समीरमलजी अजमेरा मे
श्रीमान सेठ माणकचंदजी कस्तूरचंदजी की मा सा. मल्हारगंज इन्दौर.
श्रीमती सौ. रतनबाई धर्म पत्नी चांदमलजी अजमेरा शीतलामाता बाजार.
श्रीमान सेठ सुखलालजी नरसिंहपुरा बीनोता मेवाड़ वाला-
ब्रह्मचारिणीबाई सा. हाथरस यू. पी.
श्रीमान फतेलालजी गुलाबचंदजी बड़जात्या इन्दौर.
५) सेठ शंकरलालजी वाकलीवाल मु. काठपाड़ी (मद्रास)

१४६५)

वर्णी लक्ष्मीचंद जैन. आ॰ सूर्यसागर संघ.

युनाइटेड प्रिंटर्स इन्दौर